बुन्देलखण्ड के दुर्गों की स्थापत्यकला का सैन्य इतिहास पर प्रभाव

(झाँसी एवं कालिंजर दुर्ग का सैन्य विश्लेषणात्मक अध्ययन के विशेष संदर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
को
रक्षा अध्ययन विषय में
'डाक्टर ऑफ फिलॉसफी'
उपाधि के लिये प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध

2004

निर्देशक–

डा0 अभय करन सक्सेना
(एम0एस–सी0,पी–एच0 डी0)
रीडर एवं प्रभारी, रक्षा अध्ययन विभाग
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय,उरई

अनुसंधानकर्ता–

अरविन्द कुमार तिवारी (M.Sc.)
प्रवक्ता, रक्षा अध्ययन विभाग
श्रीमती अमृत कुंवर महाविद्यालय
अटरा कला, (जालौन)

शोधकेन्द्र :– रक्षा अध्ययन विभाग, दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई (उ0प्र0)
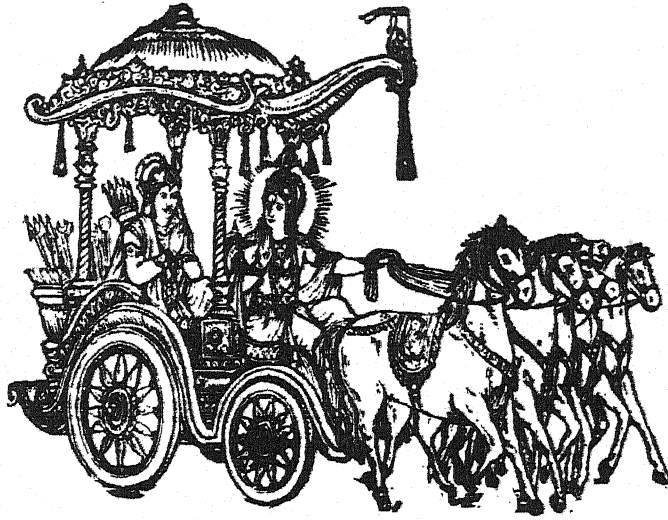
"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

समर्पण
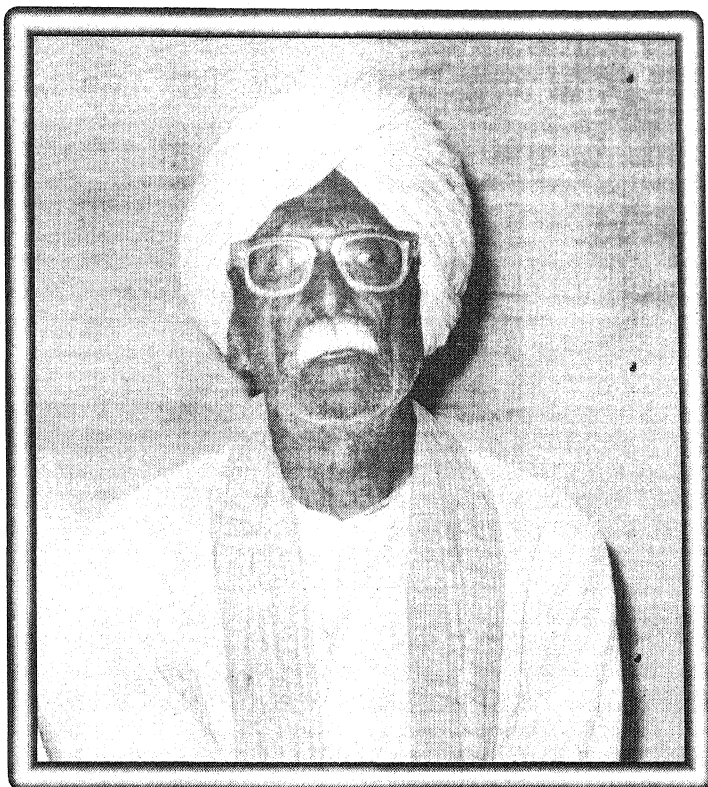
पूजनीय बाबा जी

स्व. श्री पंडित जगन्नाथ चौधरी

के चरणों में सादर समर्पित

- अरविन्द

"प्रेरणा शहीदों से अगर हम नहीं लेंगे,
आजादी ढलती हुई, सांझ हो जायेगी।
यदि पूजा वीरों की, हम नहीं करेंगे,तो
यह सच मानो, वीरता बाँझ हो जायेगी।।"
–(अज्ञात)

"सैनिक, जो अपना कर्तव्य समझ कर अपने देश के लिये
अपनी भेंट देने और अपनी जान तक बलिदान करने
में संकोच नहीं करता, मानव जाति का सर्वोच्च रूप है"
–(जनरल मैकारथर)

डा0 अभय करन सक्सेना
रीडर एवं प्रभारी
रक्षा अध्ययन विभाग
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय
उरई, उ0प्र0

दूरभाष : 05162– 252653
मोबाइल: 9415169870
निवास : 'भाग्यवती स्मृति'
25,सुभाष नगर,
उरई– 285001
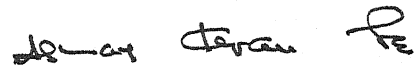
प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री अरविन्द कुमार तिवारी पुत्र श्री श्रीधर तिवारी द्वारा रक्षा अध्ययन विषय के अन्तर्गत **"बुन्देलखण्ड के दुर्गों की स्थापत्यकला का सैन्य इतिहास पर प्रभाव (झाँसी एवं कालिंजर दुर्ग का सैन्य विश्लेषणात्मक अध्ययन के विशेष संदर्भ में)"** शीर्षक पर पी–एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत यह शोध प्रबन्ध विश्वविद्यालय के अध्यादेश ग्यारह की समस्त शर्तों को पूर्ण करते हुये मेरे मार्गदर्शन में पूर्ण किया है, यह उनके स्वयं का मौलिक प्रयास है। अध्यादेश 11–8 में उल्लिखित प्रावधान अनुसार इन्होंने उपस्थिति भी पूर्ण की है।

विषय सामग्री, लेखन, भाषादि की दृष्टि से यह प्रबन्ध पी–एच0डी0 उपाधि के स्तर का है एवं परीक्षकों के मूल्यांकन हेतु भेजने योग्य है।

दिनाँक– 28.8.04
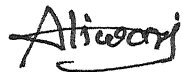
डा0 अभय करन सक्सेना
शोध निदेशक

घोषणा–पत्र

मैं, अरविन्द कुमार तिवारी यह घोषित करता हूँ कि रक्षा अध्ययन विषय के अन्तर्गत **"बुन्देलखण्ड के दुर्गों की स्थापत्यकला का सैन्य इतिहास पर प्रभाव (झाँसी एवं कालिंजर दुर्ग का सैन्य विश्लेषणात्मक अध्ययन के विशेष संदर्भ में)"** शीर्षक पर पी–एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत यह शोध प्रबन्ध मेरे स्वयं का मौलिक प्रयास है।

मेरी जानकारी में उक्त विषय पर किसी भी अन्य शैक्षणिक संस्था में शोधकार्य नहीं किया गया है।

Atiwari

दिनाँक–27-08-2004

अरविन्द कुमार तिवारी

प्राक्कथन

भारत वर्ष का प्राचीन इतिहास अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा है। भारतीय इतिहास के साम्राज्यों अथवा सम्राटों के उत्थान या पतन की गाथा समस्त मूल्यों का संकलन मात्र है। इसके अतिरिक्त उसका सम्बन्ध मानव जीवन पर आधारित है। भारत के अपने आप में एक विशिष्ट भौगोलिक इकाई होने के कारण भारतीय शासकों एवं सम्राटों ने क्रमवद्ध तरीके से विभिन्न दुर्गों एवं गढ़ियों का निर्माण किया।

प्राचीन कवियों, लेखकों तथा विचारकों ने विभिन्न दुर्गों एवं गढ़ियों की महत्ता का वर्णन किया जिनका कि वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में काफी उतार–चढ़ाव हुये। आज भी बुन्देलखण्ड के ग्रामों, कस्वों, नगरों एवं उपनगरों में बनाये गये विभिन्न प्रकार के दुर्ग एवं गढ़ियाँ अपनी प्राचीन इतिहास की दास्तान बयां कर रहे हैं।

इतिहासकार, पुरातत्वविद्, वास्तुकला शास्त्री, सैन्य शास्त्री एवं शोधार्थियों के समक्ष बुन्देलखण्ड की सैन्य संचालन गतिविधियों का दुर्गों एवं गढ़ियों से सम्बन्धित विश्लेषणात्मक अध्ययन करना एक विचारणीय प्रश्न है कि आखिर बुन्देलखण्ड का सैन्य इतिहास कितना कसौटी एवं चुनौतियों से भरा पड़ा है।

इस शोध प्रबन्ध की भूमिका "बुन्देलखण्ड में दुर्गों की परम्परा क्यों व कैसे" विषय को स्पष्ट करने के साथ दुर्गों के प्रति सैन्य व्यवस्था की आलोचनात्मक समीक्षा करती है और सैन्य इतिहास की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

प्रथम अध्याय बुन्देलखण्ड की भौगोलिक सीमायें व स्थिति से सम्बन्धित है। इसी अध्याय में बुन्देलखण्ड के मध्यकालीन इतिहास के स्वरूप को भी दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के इतिहास में चन्देला एवं बुन्देला वंशों के द्वारा विकासात्मक एवं विवेचनात्मक पक्ष को दर्शाया गया है।

द्वितीय अध्याय में सैन्य दृष्टि से दुर्गों की महत्ता एवं आवश्यकता, दुर्गों के प्रकार, बुन्देलखण्ड के दुर्गो का स्थापत्य कला की दृष्टि से वर्गीकरण, बुन्देलखण्ड के दुर्गो की स्थापत्यकला एवं सैन्य दृष्टि से उनके समन्वय का अध्ययन किया गया है।

तृतीय अध्याय में बुन्देलखण्ड में विभिन्न दुर्गों की स्थिति एवं उनके विकासात्मक पक्ष लेकर दुर्गों एवं गढ़ियों का मूल्यांकन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय जिला झाँसी, झाँसी दुर्ग का भौगोलिक वर्णन, झाँसी दुर्ग का स्थापत्य, झाँसी दुर्ग का इतिहास एवं झाँसी दुर्ग के सैनिक महत्व के अध्ययन से सम्बन्धित है।

पंचम अध्याय में कालिंजर एवं कालिंजर दुर्ग का भौगोलिक वर्णन, कालिंजर दुर्ग का स्थापत्य, कालिंजर दुर्ग का इतिहास एवं कालिंजर दुर्ग के सैनिक महत्व का अध्ययन किया गया है।

छठवें अध्याय में झाँसी दुर्ग का सैन्य दृष्टि से मूल्यांकन किया गया है।

सातवें अध्याय में कालिंजर दुर्ग का सैन्य दृष्टि से मूल्यांकन एवं उसकी विवेचना की गई है।

आठवें अध्याय में उपसंहार को दो भागों में विभाजित किया गया, प्रथम भाग में उपलब्ध ज्ञान के संदर्भ में सैन्य दृष्टि से दुर्गों की स्थापत्यकला का महत्व एवं द्वितीय भाग में शोध कार्य में आयीं कठिनाइयाँ एवं उनके निराकरण हेतु सुझाव दिये गये हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लेखन में मुझे जिन विद्वानों, गुरूजनों, मित्रों, सहयोगियों एवं परिजनों का सहयोग मिला उनका आभार प्रदर्शन मेरे लिये मात्र औपचारिकता नहीं है। शब्दों में चाहे इसे आभार कहा जाये परन्तु वास्तविकता यह है कि मेरे जैसे नवयुवक शोधार्थी को हर स्तर पर जिन विद्वानों का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है उनका स्मरण करना मेरा परमकर्तव्य है।

मैं सर्वप्रथम डा0 अभयकरन सक्सेना, रीडर एवं प्रभारी रक्षा अध्ययन विभाग, दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई का विशेष आभारी हूँ जिनके अमूल्य निर्देशन में इस शोध प्रबन्ध की रचना सम्भव हुई। उनकी प्रेरणा, रुचि एवं सहयोग के बिना इसका शीघ्र लेखन सर्वथा कठिन था।

मैं अपने सहनिर्देशक परम आदरणीय डा0 हरिमोहन पुरवार (निदेशक–बुन्देलखण्ड संग्रहालय,उरई) के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। यह मेरा परम सौभाग्य है कि आदरणीय पुरवार जी के निर्देशन में शोधकार्य करने का अवसर मिला तथा समय–समय पर व्यस्तताओं में गुरूवर का वात्सल्य पूर्ण स्नेहासिक्त मार्गदर्शन पा सका हूँ।

डा0 सतीश चन्द्र शर्मा प्राचार्य, श्रीमती अमृत कुंवर महाविद्यालय, अटराकलां तथा डा0 सोम प्रकाश शर्मा, प्राध्यापक, मथुरा प्रसाद महाविद्यालय, कोंच (जालौन) का मैं ह्रदय से आभारी हूँ। यह उनके ही प्रयत्नों का परिणाम है कि मुझे शोध करने का प्रोत्साहन मिला।

मैं आभारी हूँ डा0 अरविन्द कुमार शर्मा, डा0 राजेन्द्र कुमार निगम, डा0 दुर्गेश कुमार सिंह ,डा0 अरुण कुमार श्रीवास्तव, डा0 (श्रीमती) वीणा श्रीवास्तव, प्राध्यापकगण, दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई एवं डा0 वी0के0 द्विवेदी प्राध्यापक, गांधी महाविद्यालय,उरई का जिन्होंने मुझे पुस्तकीय सहायता प्रदान करके शोध कार्य को आगे बढ़ाने के लिये सहायता दी।

श्री आर0 एस0 खंगार डी0डी0एम0, नाबार्ड, उरई का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने अपने निजी पुस्तकालय से अनेक महत्वूपर्ण पुस्तकें प्रदान की तथा अपने अमूल्य सुझाव भी मुझे दिये।

मैं अपने पूज्यनीय बाबा जी स्व0 श्री मुन्ना लाल चौधरी का आदर करता हूँ जिन्होंने मुझे शोधकार्य के दौरान आने वाली विषम परिस्थितियों से जूझने के लिये प्रोत्साहित किया तथा मुझे काव्यलोकोक्ति के द्वारा संसार की सच्चाई से अवगत कराया :–

शत्रु की उर वाघ की दिल चीती जो होय।
तुलसी जा संसार में जियत न छोड़े कोय।।

मुझे अपने परिवारजनों माता–पिता की ओर से शोधकार्य में समय–समय पर मनोबल मिलता रहा, मैं अपने परम आदरणीय पिता श्री पं0 श्रीधर चौधरी (वैद्य) के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ कि उन्होंने मुझे जीवन में आगे बढ़ने के लिये मार्गदर्शन और सुझाव दिये। इनके अतिरिक्त मेरे अग्रज श्री प्रमोद कुमार तिवारी व श्री अखिलेश कुमार तिवारी ने भी मुझे प्रेरणा एवं आशीर्वाद देकर मुझे सहारा दिया तथा उचित राह दिखाकर मेरा मार्ग प्रशस्त किया।

मैं अपनी धर्म पत्नी श्रीमती सपना तिवारी को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने पारिवारिक दायित्वों से मुक्त करके शोधकार्य हेतु सदा प्रोत्साहित किया।

समस्त शुभचिन्तकों तथा वे सब जिनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहयोग मुझे विभिन्न स्तर पर मिला है इसके लिये मैं उनका आभारी हूँ विशेषकर श्री सुशील कुमार द्विवेदी, श्री छोटे लाल खरे (सेवा नि0 पशुधन वि0 अधि0), कु0 श्रृद्धा खरे, कु0 शालू एवं श्री अवधेश स्वर्णकार आदि।

अन्त में, विशेषरूप से आभारी हूँ श्री सुरेश चतुर्वेदी, उरई का जिन्होंने सारगर्भित एवं परिष्कृत शब्दों से मेरे इस शोधप्रबन्ध को सुबोध भाषा में सम्पादित कर आकार प्रदान किया तथा अपना बहुमूल्य समय प्रदत्त कर पूर्ण आहुति के रूप में शोधकार्य को पूर्णता प्रदान कर बोधगम्य बनाया।

दिनाँक–

अरविन्द कुमार तिवारी

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
भूमिका – बुन्देलखण्ड में दुर्गों की परम्परा क्यों व कैसे ?	01–07
प्रथम अध्याय	08–56
1. बुन्देलखण्ड की भौगोलिक सीमायें व स्थिति	
2. बुन्देलखण्ड का मध्यकालीन इतिहास	
द्वितीय अध्याय	57–102
1. सैन्य दृष्टि से दुर्गों की महत्ता एवं आवश्यकता	
2. दुर्गों के प्रकार	
3. बुन्देलखण्ड के दुर्गों की स्थापत्यकला की दृष्टि से वर्गीकरण	
4. बुन्देलखण्ड के दुर्गों की स्थापत्यकला एवं सैन्य दृष्टि से उनका समन्वय	
तृतीय अध्याय	103–155
बुन्देलखण्ड में विभिन्न दुर्गों की स्थिति	
चौथा अध्याय	156–186
जिला झाँसी एवं झाँसी दुर्ग का भौगोलिक वर्णन :–	
(1) झाँसी दुर्ग का स्थापत्य	
(2) झाँसी दुर्ग का इतिहास	
(3) झाँसी दुर्ग का सैनिक महत्व	
पाँचवां अध्याय	187–215
कालिंजर एवं कालिंजर दुर्ग का भौगोलिक वर्णन :–	
(1) कालिंजर दुर्ग का स्थापत्य	
(2) कालिंजर दुर्ग का इतिहास	
(3) कालिंजर दुर्ग का सैनिक महत्व	

छठवां अध्याय 216–226

झाँसी दुर्ग का सैनिक दृष्टि से मूल्यांकन

सातवां अध्याय 227–237

कालिंजर दुर्ग का सैनिक दृष्टि से मूल्यांकन

आठवां अध्याय 238–246

उपसंहार ::

(1) उपलबध ज्ञान के संदर्भ में सैन्य दृष्टि से स्थापत्यकला का महत्व

(2) शोधकार्य में आई कठिनाइयाँ एवं उनका निराकरण

संदर्भ सूची– 247–254

भूमिका

बुन्देलखण्ड में दुर्गों की परम्परा क्यों व कैसे ?

बुन्देलखण्ड में दुर्गों की परम्परा क्यों व कैसे ? :—

"मनुष्य सृष्टि के विकास के साथ—साथ एक लड़ाकू और जिज्ञासु प्राणी है।" यह हौब्बेशियन कहावत एक मौलिक सत्य है। मनुष्य के अन्दर स्वयं को सुरक्षित रखने एवं प्रगतिशील बनाने की दो प्रवृत्तियां आदिकाल से ही पायी जाती रही हैं और इन्हीं प्रवृत्तियों की पूर्ति के लिये वह प्रत्येक काल में संघर्षरत रहा है। युद्ध की शुरूआत "मानव से मानव का युद्ध" से हुई, फिर "जाति का जाति से युद्ध" और आगे चलकर इसने बड़ा रूप "राज्य का राज्य से युद्ध" ले लिया। वर्तमान समय में "राष्ट्र का राष्ट्र से युद्ध" का रूप बन गया। आज भी यही नियम निरन्तर चला आ रहा है।

भारतवर्ष भी इस नियम का अपवाद नहीं रहा। ऋग्वेद में वर्णित महाराज वेददास के समय से लेकर 12वीं शताब्दी में उत्तर भारत में तुर्क आक्रमणों के समय तक भारत देश में अंतहीन क्रम से लड़ाइयों, युद्धों, सन्धियों, क्रान्तियों और राज्यों के बीच विवाद का समय व्यतीत होता रहा। राज्यों का उत्थान एवं पतन का क्रम चलता रहा। शक्तिशाली राजाओं, महाराजाओं, छत्रपतियों, सम्राटों एवं विभिन्न बाहुवलियों ने सम्पत्ति, भूमि, ख्याति, धन, साहस एवं शौर्य का गौरव प्राप्त करने के लिये देश को एक कोने से दूसरे कोने तक रोंद डाला। दिग्विजय की आदर्शवादी महत्वाकांक्षा एवं भावना को लेकर प्राचीनकाल में विभिन्न राष्ट्रों का निर्माण होता रहा। समय परिवर्तन के अनुसार राष्ट्रों के विकास के साथ—साथ खूनी क्रान्ति योजना एवं कूटनीति का सहारा लेकर विभिन्न राजाओं ने अपना वर्चस्व कायम रखा।

भारत वर्ष ने पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व के बाद में विदेशी सेनाओं एवं अन्य निष्कासित जातियों को देश के बाहर खदेड़ने हेतु विभिन्न प्रकार के युद्ध एवं लड़ाइयां लड़ीं। भारतवर्ष के विभिन्न शासक जैसे पोरस, पुष्यमित्र, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, आनन्दपाल, पृथ्वीराज आदि उन पराक्रमी एवं वीर शासकों में से हैं जिन्हौंने सेनापति एरियस एवं चार्ल्स मार्सल की तरह विदेशी आक्रमणों को रोकने के लिये देश की रक्षा की जिस कारण से इन सभी शासकों को सैन्य विज्ञान और

प्राचीन इतिहास में महान शासकों के रूप में यश और कीर्ति की श्रेणी में रखा गया। ये शासक सैनिकत्व और रक्षकत्व की सभी विधाओं में दक्ष थे। परिस्थितियाँ प्रतिकूल और अनुकूल होने के कारण कभी ये निराश हुये तो कभी आशातीत। भाग्य ने सदैव उनके प्रयासों का बदला सफलता से नहीं दिया, लेकिन युद्ध की देवी ने इन वीरों में अदम्य साहस, शौर्य, दृढ़ता, पराक्रमता एवं वीरता का दर्शन किया है।

बाल्मीकि रामायण जिसे संस्कृत भाषा में लिखा गया है, जिसके रचयिता महान ऋषि बाल्मीकि थे जोकि राम के समकालीन थे, में भी दुर्ग की रचना का वर्णन किया है:–

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका । तहां रह रावण सहज असंका[1] ।।

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मंझारी। विधि निर्मित दुर्गम अति भारी[2] ।।

तिन्हते अधिक रम्य अति बंका। जग विख्यात नाम तेहि लंका[3] ।।

चौपाइयों का वर्णन तुलसीकृत रामचरित मानस में है इन चौपाइयों के द्वारा भी विभिन्न प्रकार के दुर्गों के महत्व का वर्णन मिलता है। तुलसीकृत रामचरित मानस में रावण की लंका का तुलसीदास जी ने जो वर्णन किया है वह दुर्ग के समान थी।

"श्रीमद्भागवत महापुराण में भी श्री कृष्ण और जरासन्ध के युद्ध का वर्णन मिलता है। श्रीकृष्ण ने यदुवंशियों की रक्षार्थ समुद्र के भीतर एक ऐसा दुर्ग नगर निर्मित करवाया था जिसकी रचना दुर्ग के समान थी, जिसकी वस्तुयें अद्भुत और आश्चर्यचकित करने वाली थीं। उस नगर की लम्बाई व चौंड़ाई 48 कोस की थी। उस नगर की प्रत्येक वस्तु में विश्वकर्मा का विज्ञान, वास्तु विज्ञान, कसीदाकारी, मीनाकारी, नक्काशी, शिल्पकारी और स्थापत्य कला की निपुणता प्रगट होती थी[4]।" इस नगर का वर्तमान में कोई प्रमाणिक तथ्य नहीं है फिर भी समुद्र वैज्ञानिकों ने खोज करके

---

1. रामचरित मानस, किष्कन्धाकाण्ड, दोहा सं0 27 व 28।

2. रामचरित मानस, बालकाण्ड, दोहा सं0 177–178।

3. वही।

4. श्रीमद्भागवत सुधासागर (श्रीमद् भागवत महापुराण), दशम स्कन्ध (उत्तराद्ध), पेज सं0 728, पांचवां अध्याय, गीताप्रेस, गोरखपुर।

बताया कि द्वारिकापुरी के अवशेष विभिन्न रूपों में गुजरात के खम्बात की खाड़ी में मिलते हैं।

मध्यकालीन दुर्ग व्यवस्था में दुर्गों की परम्परा का प्रतिरक्षात्मक महत्व था। भारत वर्ष में नहीं, अपितु विदेशों में भी बड़े कलात्मक व अजेय और अभेद्य दुर्गों का निर्माण मध्यकाल में हुआ। दुर्ग निर्माण कला के इतिहास में भारतीय दुर्ग व्यवस्था का एक विशिष्ट स्थान है। जहां एक ओर विश्व के अन्य राष्ट्रों में सुरक्षा को ही प्रमुखता दी गई है वहीं दूसरी ओर भारतीय दुर्गों में सुरक्षा के साथ–2 सजावट पर भी ध्यान दिया गया। इस प्रकार कला व सुरक्षा का समन्वय देखने को मिलता है। ये विशेषतायें भारतीय दुर्गों में अन्य राष्ट्रों के दुर्गों से भिन्न हैं। बुन्देलखण्ड के दुर्ग भी इस विशिष्टता से अछूते नहीं हैं।

मनुस्मृति में दुर्गों की प्रशंसा करते हुये बतलाया गया है कि सभी राजाओं को प्रयत्नपूर्वक दुर्गों का आश्रय ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि अधिक गुण सम्पन्न होने के कारण यह सर्वश्रेष्ठ है। शुक्रनीति में गिरिदुर्ग को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इस प्रकार मध्यकाल में दुर्गों के सामरिक महत्व को देखते हुये इनकी संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई, परन्तु इस परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुय बुन्देलखण्ड में सत्रहवीं–अठारवीं शती ई0 तक दुर्गों का निर्वाध निर्माण क्रम चलता रहा। इस परम्परा शैली में बने हुये बुन्देलखण्ड के दुर्ग विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

बुन्देलखण्ड में कई प्रकार के दुर्ग एवं गढ़ियों का निर्माण हुआ जिनमें कला और सुरक्षा का समन्वयीकरण दृष्टव्य है।

दुर्भाग्यवश बुन्देलखण्ड क्षेत्र के दुर्गों की स्थापत्यकला का सैन्य दृष्टिकोंण से उपेक्षित अध्ययन अभी तक प्रतीक्षित है जबकि प्राचीनकाल व मध्यकाल में वह अखिलभारत का हृदय क्षेत्र रहा है तथा हिन्दुस्तान की भूमि में होने वाली समस्त हलचलों में तटस्थ न रहकर सदैव आन्दोलित हुआ है। हिन्दोस्तां का इतिहास भी इस बात का साक्षी है।

भारतीय इतिहास में बहुत से शूर्यवीर हुये जो अपनी वीरता के कारण इतिहास में जाने जाते हैं। इन शूर्यवीरों के द्वारा बहुत से प्रान्तों में विशाल एवं भव्य इमारतों, महलों, दुर्ग एवं गढ़ियों का निर्माण हुआ। वास्तव में हमारे देश को इन महान भव्य इमारतों पर अभिमान करना चाहिये। ये किसी भी महत्वपूर्ण सूत्र के अभाव में भुलाये नहीं जा सकते। वर्तमान समय में बढ़ते हुये

आधुनिकवाद और भौतिकवाद के कारण ये दुर्ग और गढियां आज उपेक्षा की शिकार हैं। इतिहासकारों एवं सैन्यशास्त्रियों के पास प्रमाणित साहित्य न होने के कारण आज भारतीय संस्कृति की धरोहर नगण्यता एवं तुक्षता के शिकार बन चुके हैं।

भारतवर्ष को इतिहास की दृष्टि से विभिन्न प्रान्तों में बांटा है जिसका कि सम्बन्ध प्राचीन मध्यकालीन इतिहास से है। बुन्देलखण्ड के दो दुर्ग जिनका सम्बन्ध मेरे शोधकार्य से है झाँसी एवं कालिंजर का किला मध्यकालीन किले की श्रेणी में आते हैं।

झाँसी एवं कालिंजर के दुर्ग भी इसी परम्परा में एक महत्वूपर्ण स्थान रखते हैं। इनका निर्माण यहां के तत्कालीन शासकों द्वारा पड़ोसी राजाओं के आक्रमण से सुरक्षा को दृष्टिमेव रखकर किया गया था।इनका निर्माण स्थापत्यकला और सैन्य रूपरेखा की दृष्टि से किया गया था जिससे कि वाहरी आक्रमणों को रोका जा सके।

झाँसी व कालिंजर दुर्ग की स्थापत्यकला और सुरक्षा व्यवस्था भारत के अन्य दुर्गों के समान थी। यह दोनों दुर्ग अपनी कहानी क्विंदन्तियों, ऐतिहासिक जनश्रुतियों के लिये प्रसिद्ध हैं। इन दुर्गों में सजावट पर विशेष ध्यान दिया गया। कालिंजर और झाँसी दुर्ग की अपनी एक ऐतिहासिक जनश्रुति और बहुत से ऐतिहासिक तथ्य हैं।

बुन्देलखण्ड में ऐसे तो बहुत से दुर्ग एवं गढ़ियां हैं परन्तु शोध की दृष्टि से झाँसी एवं कालिंजर दुर्ग का सैन्य इतिहास अन्य दुर्गों से भिन्न है।

" 1485 में राजा भीमसेन के निःसन्तान मरने पर कालिंजर के स्वामी उनके भतीजे रुद्रप्रताप कालिंजर के महाराजाधिराज बन गये। 1486 में जब उन्होंने कालिंजर प्रशस्ति लिखवाई तो स्वाभाविक रूप से उन्हें महाराजाधिराज कहा गया। 1501 से मलखान की मृत्यु के पश्चात वे ओरछा के भी राजा हो गये। रुद्रप्रताप एक महात्वाकांक्षी सम्राट था। उन्होंने राजनैतिक स्थिति का लाभ उठाते हुये अपने साम्राज्य का विकास किया। उनकी महात्वाकांक्षा को दबाने के लिये ही हुमायूं न 1530–31 में कालिंजर पर आक्रमण किया पर असफल होकर लौट गया।"[1]

---

1. दैनिक समाचार पत्र "राष्ट्रवोध" शुक्रवार 28 मई, 2004, पेज सं0 12 प्रकाशन– ।

"कालिंजर प्रशस्ति से ज्ञात होता है (श्लोक 360) कि उसने कोटितीर्थ सरोवर के तटपर नवनिर्मित मन्दिर में भगवान श्री बल्लभ की प्रतिमा स्थापित की और स्वर्णवर्षा की। उसने नव निर्मित मन्दिर में भगवान लक्ष्मी नारायण की प्रतिमा स्थापित की। प्रभाकर नामक ब्राह्मण को देवार्चना के लिये भूमि दान की। उसने कोटितीर्थ के घाटों और चारों ओर की वीथियों का उद्धार किया वह विद्वान था और काव्य कला में प्रवीण था। श्लोक 31 के अनुसार वैदर्मी पांचाली और गौड़ीय विधि में काव्य रचना करता था। यह कालिंजर में सुन्दर रमणियों सहित राजप्रासाद में रमण करता था। (श्लोक 36) उसके चन्देलों की तरह प्रशस्ति लिखवाने, चन्देलों की तरह महाराजाधिराज की पदवी ग्रहण करने से ऐसा लगता है कि उसने कुछ समय अवश्य ही कालिंजर में राजधानी बनाई होगी।[1]"

कालिंजर दुर्ग का सम्बन्ध चन्देला वंश से रहा है। चन्देलों ने अपने राजवंश की रक्षा हेतु इस दुर्ग का निर्माण कराया। यह दुर्ग भारतवर्ष के अन्य दुर्गों से भिन्न और जटिल हैं इसका निर्माण करते समय सैन्य इतिहास की सभी विधाओं का पालन किया गया है जिससे कि शत्रु आक्रमण से सुरक्षा हो सके। कालिंजर दुर्ग बुन्देलखण्ड के सभी दुर्गों एवं गढ़ियों का मुकुट एवं शिरोमणि है इसे द्वितीय चित्तौड़गढ़ कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं।

आल्हाखण्ड में एक किंवदन्ति भी हैः–

किला कलिंजर का मांगत हैं, बैठक मांगे ग्वालियर क्यार।

बुन्देलखण्ड के इतिहास में झाँसी दुर्ग भी शोध की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। यह दुर्ग बुन्देला (क्षत्रिय) ने बनवाया था। झाँसी दुर्ग में समयानुसार तीनबार परिवर्तन हुये :– अपनी सुरक्षा करने लिये बुन्देलाओं ने नींव डाली, मराठा शासक बने और इसके पश्चात अंग्रेजों ने भी इस किले में अपनी सुविधानुसार परिवर्तन किये। अंग्रेजों की नीतियां भारतीय शासकों से हटकर थीं। झाँसी दुर्ग सैन्य दृष्टि से भी अधिक सुरक्षित एवं टिकाऊ था। झाँसी दुर्ग ने 1857 के बिद्रोह के कारण अत्यधिक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की।

---

1. दैनिक समाचार पत्र "राष्ट्रवोध" शुक्रवार 28 मई, 2004, पेज सं0 12 प्रकाशन– ।

कालिंजर और झाँसी दुर्ग का सैन्य दृष्टि से मूल्यांकन करने पर ज्ञात होता है कि यह दोनों दुर्ग मध्यकालीन दुर्गों में अपनी एक विशेष छवि, राष्ट्रीय एवं अर्न्राष्ट्रीय गरिमा गौरव को प्राप्त करते हैं। झाँसी मण्डल के समस्त किले एवं गढ़ियों का ताज झाँसी दुर्ग है।

झाँसी दुर्ग का सैन्य अवलोकन करने पर ज्ञात हुआ कि ये दुर्ग सैन्य गतिविधियों को संचालित करने के लिये बंगरा पहाड़ी पर निर्मित किया गया। झाँसी दुर्ग इस क्षेत्र के लिये प्रबोधन का कार्य करता है। इस दुर्ग की अपनी एक प्रभावशीलता है, सौम्यता एवं गम्भीरता को धारण किये हुये सैन्य इतिहासकारों और सैन्य शोधार्थियों के लिये एक प्रभंजन का कार्य कर रहा है। दुर्ग हमेशा सुरक्षा के साथ–2 वीरत्व, रक्षकत्व एवं पुरुषत्व की कहानी को दोहराते हैं।

दुर्ग एक राजा के लिये चिनौती और कसौटी होता है क्योंकि उसे दुर्ग के समक्ष अपनी पराक्रमता और उद्यमता का प्रस्तुतीकरण करना होता है "दुर्ग तो निर्जीव हैं परन्तु योद्धा सजीव होता है"। सजीव और निर्जीव की टक्कर में किसकी जीत व किसकी हार होती है इससे योद्धा की सैन्य गुणवत्ता का मूल्यांकन होता है। प्रत्येक शासक के लिये दुर्ग उसकी शान और वैभव है। दुर्ग की विशालता देखने पर कुछ हद तक शासक की सम्पन्नता और विशालता का मूल्यांकन किया जा सकता है।

वर्तमान समय में झाँसी एवं कालिंजर दुर्ग उपेक्षित पड़े हुये हैं। दुर्ग मौन हो चुके हैं, दुर्ग निर्माता और दुर्ग निवासी भी धीरे–2 मौन हो चुके हैं परन्तु दुर्गों की भव्यता, विशालता एवं गौरवता आज भी पुराने सैन्य इतिहास को दोहरा रही है। दुर्ग जीर्ण–शीर्ण हैं प्रत्येक बुर्ज, दीवारें, प्राचीरें धीरे–2 अंगड़ाइयां लेती हुई टूटती जा रही हैं फिर भी सैन्य शास्त्रियों व शोध छात्र–छात्राओं के लिये चिन्तन का विषय है। प्रत्येक दुर्ग भारतीय संस्कृति के अतीत का स्तम्भ है।

दुर्ग विभिन्न शताब्दियों में अलग अलग समय में बने हैं। प्रत्येक दुर्ग निर्माता ने अपने विवेक के अनुसार दुर्ग का निर्माण कराया जिससे कि राज्य की रक्षा की जा सके।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि "प्रत्येक राजा का यह फर्ज होता है कि अपने राज्य की रक्षा करे"।

बुन्देलखण्ड के दो जनपदों झाँसी एवं बांदा में निर्मित झाँसी एवं कालिंजर के दुर्गों का सैन्य विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुये सैन्य इतिहास पर इनके अमिट प्रभाव को खोजने का प्रयास किया है। इस शोध प्रबन्ध में प्राचीन एवं मध्यकालीन दुर्ग कला की समन्वयात्मक झाँकी दिखाने का प्रयास किया है। झाँसी और कालिंजर दुर्गों की अपनी एक विशेष छाप है जो समस्त बुन्देलखण्ड एवं भारतवासियों को सूर्योदय की प्रकाशपुंज की तरह शोभायमान कर रहे हैं। यह दोनों दुर्ग शोधार्थियों के लिये प्रेरणाश्रोत हैं, क्योंकि जहां कालिंजर दुर्ग में प्राचीन स्थापत्यकला के दर्शन होते हैं, वहीं झाँसी दुर्ग में मध्यकालीन स्थापत्यकला के।

प्रथम अध्याय

(1) बुन्देलखण्ड की भौगोलिक सीमायें व स्थिति

(2) बुन्देलखण्ड का मध्यकालीन इतिहास

1. बुन्देलखण्ड की भौगोलिक सीमायें व स्थिति

क्षेत्रगत विस्तारः भौगोलिक सीमा

भौगोलिक विस्तार एवं भौगोलिक सीमायें हर स्थान की भिन्न–2 होती हैं। हमारे भारत वर्ष में भौगोलिक भिन्नताओं में बहुत से उतार चढ़ाव देखने को मिलते हैं। बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र विभिन्न नगरों, कस्वों एवं ग्रामों में विभाजित हैं परन्तु भौगोलिक स्थिति सबकी अलग–अलग है। भौगोलिक स्थिति का पर्यावरण, वातावरण, जलवायु एवं प्राकृतिक अवधारणाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

भौगोलिक सीमाओं एवं भौगोलिक स्थिति का अर्थ "भू" एवं भूमि, वसुन्धरा एवं GEO से होता है। भूगोल का सम्बन्ध पृथ्वी की भौगोलिक संरचनाओं जैसे पहाड़, नदियों, प्राकृतिक सौन्दर्यता, वनस्पति, घाटियाँ, पशु पक्षी, जंगल, दर्रा, चट्टानी पर्तें, चारागाह से है।

प्रान्त बुन्देलखण्ड में बहुत सारी भौगोलिक भिन्नतायें स्पष्ट दिखाई पड़ती है। जिनका सम्बन्ध वहाँ की जलवायु से है। बुन्देलखण्ड का कुछ क्षेत्र पहाड़ी, पठारी, समतलीय है एवं कुछ क्षेत्र में उतार चढ़ाव वाले स्थान पाये जाते हैं। वनस्पति में भी कई प्रकार की भिन्नतायें मिलती हैं। बुन्देलखण्ड की प्रमुख नदियों में यमुना, पहूज, वेतवा एवं नर्मदा हैं।

बुन्देलखण्ड प्रान्त में ऋतुओं के आधार पर तापमानीय परिवर्तन, नमी में भिन्नता, आद्रता में भिन्नता पायी जाती है। शीत, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म एवं वर्षा जैसी ऋतुओं का समागम देखा जा सकता है। तापमान 48^0 से 50^0 तक पहुँच जाता है तथा सर्दियों में तापमान -2^0 या -1^0 तक पाया जाता है।

वनस्पतियों में महुआ, टेसू (पलास) शीशम, नीम, बबूल, बेर, चिलविल, पीपल, बरगद, यूकीलिप्टस (सफेदा) जैसे पौधे पाये जाते हैं।

भौगोलिक परिस्थितियों, भौगोलिक सीमाओं, भौगोलिक स्थितियों के आधार पर भू–संरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। जैजा भुक्ति का सीमा विस्तार श्री केशव चन्द्र

मिश्र ने बताया है। उत्तर में गंगा और यमुना के महानद इसकी सीमा बनाते थे। दक्षिण में नर्मदा नदी, जिसमें मालवा भी सम्मिलित था और पश्चिम में इसकी सीमा सामान्य रूप से चम्बल नदी थी जो विंध्यमेखला तक फैली हुई है। दक्षिणी भाग में, चन्देल साम्राज्य में जैजा भुक्ति का कुछ अंश प्रवेश कर गया था।

जैजा भुक्ति की स्थिति मानचित्र पर 22^0 और 27^0 उत्तरीय अक्षांश तथा 75^0 और 84^0 पूर्वीय भू–रेखाओं के मध्य में है। इस पूरे क्षेत्र का क्षेत्रफल लगभग 51 हजार वर्गमील है।

जनरल कनिंघम के अनुसार जैजा भुक्ति साम्राज्य सीमा में वह समस्त क्षेत्र आ जाता है जो गंगा और यमुना के दक्षिण में नर्मदा महानद तक फैला है। आधुनिक सागर और वैलारी जिले की सीमायें भी इसमें आ जाती है। इस अवधारणा की भौगोलिक सीमा को बी0ए0 स्मिथ भी मानते हैं। भौगोलिक सीमायें समय के अनुसार परिवर्तित भी होती रहती है। परिवर्तन तीन प्रकार का होता है। 1. प्राकृतिक 2. सामाजिक 3. राजनैतिक परन्तु प्राकृतिक परिवर्तन असहनीय और अनियमित होता है।

पुराणों के अनुसार भी पूर्व बुन्देलखण्ड की स्थिति की जानकारी मिलती है। वैवस्वत मनु की वंश परम्परा में युद्ध का राज्य विभाजन में चर्मण्यवती, वेत्रवती तथा शान्तिमती नदियों से अभिसिंचित प्रदेश का जन्म हुआ। मनु वंश में महाराज चेदि हुये जिससे इस प्रान्त का नाम चेदि पड़ा। इस प्रकार चेदि नाम प्रारम्भ में चम्बल और केन के बीच यमुना के दक्षिणी प्रदेश अर्थात केवल उत्तरी बुन्देलखण्ड बना।

पौराणिक कथाओं में मतभेद अधिक मिलते हैं परन्तु धर्मशास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार पुराणों की आख्या एवं व्याख्या सर्वमानित होती है क्योंकि इन मान्यताओं को भूगोल शास्त्रीय, धर्मशास्त्रीय एवं समाज शास्त्रीय चुनौती नहीं दे सकते हैं परन्तु अपने विचारों को व्यक्त कर सकते हैं क्योंकि विद्वत्ता के आधार पर "स्कन्दपुराण में जहाँहुति क्षेत्र का परिचय इस प्रकार मिलता है। इस देश की ग्राम संख्या 42 हजार थी। इसके आस–पास का क्षेत्र कान्तीपुर (कुढ़वार) चेदि और मालव कहलाये गये हैं। इसकी ग्राम संख्या क्रमानुसार 9 लाख और 1,18,022 बतलायी गई है।[1]" प्राचीन जहाँहुति ही आधुनिक बुन्देलखण्ड है। स्कन्द पुराण भारतीय संस्कृति का एक उच्च ग्रन्थ है जिसमें

---

1. डा0 रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेह" बुन्देली लोक साहित्य" पेज सं0 4 रंजना प्रकाशन, आगरा।

बुन्देलखण्ड की उद्गम स्थिति का वर्णन है जिसको कि इतिहासकार, भूगोल शास्त्रीय एवं शिक्षाविद् भी मानते हैं परन्तु शोध विद्यार्थियों के लिये एक रोचक विषय भी है।

दीवान प्रतिपाल सिंह ने बुन्देलखण्ड के इतिहास में राजा छत्रसाल के समय के बुन्देलखण्ड की सीमा निम्नलिखित छन्द में निर्धारित की है–

"इत यमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस ।
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस ।।
उत्तर समतल भूमि गंगा जमुना सुवहति है।
प्राची दिसि कैमूर सोन काशी सुलगति है।।
दक्खिन देवा विंध्याचल तन शीतल करनी।
पच्छिम में चम्बल, चंचल, सोहति मन हरनी।।
तिन मधि राजे गिरि, वन सरिता सहित मनोहर।
कीर्ति स्थल बुन्देलन को बुन्देलखण्ड वर।।"[1]

एवं बुन्देलखण्डी कहावत में सीमा का निर्धारण किया गया है–

भैंस बंधी है ओरछा, पड़ा होसंगाबाद ।
लगवैया है सागरे, चपिया रेवा पार ।।[2]

यह लोकोक्ति अधिक प्राचीन नहीं है क्योंकि मध्य प्रदेश का होशंगाबाद जिला 15वीं शताब्दी में बसाया गया था तथा ओरछा को 16वीं शताब्दी में बसाया गया था जोकि वर्तमान में टीकमगढ़ जिले के अन्तर्गत आता है। ओरछा गजेटियर से पता चलता है कि महाराजा रुद्रप्रताप ने सं0 1588 के वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को ओरछा के किले की नींव रखी थी। सं0 1596 में गढ़कुंडार से ओरछा राजधानी को स्थानान्तरित किया गया। वर्तमान समय में होशंगाबाद, गढ़कुण्डार तथा ओरछा तीनों ही मध्य प्रदेश प्रान्त के अन्तर्गत आते हैं जिसमें ओरछा एवं गढ़कुण्डार ऐतिहासिक, भौगोलिक और साहित्यिक दृष्टि से अधिक महत्व रखते हैं क्योंकि ओरछा का सम्बन्ध राजपरिवार से अधिक रहा है।

---

1. डा0 रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेह" बुन्देली लोक साहित्य" पेज सं0 4 रंजना प्रकाशन, आगरा।

2. डा0 रामस्वरूप श्रीवास्तव "स्नेह" बुन्देली लोक साहित्य" पेज सं0 4 रंजना प्रकाशन, आगरा।

जनरल कनिंघम का मत है कि गंगा, यमुना के दक्षिण वेतवा नदी से लेकर मिर्जापुर की विंध्यवासिनी देवी के मन्दिर तक का भू–भाग बुन्देलखण्ड में शामिल था। नर्मदा से उत्पत्ति के कारण निकटवर्ती सागर, चन्देरी तथा बिलहरी के जिले बुन्देलखण्ड में शामिल किये जाते हैं। यही सीमायें जुझौतिया अथवा यजुहोत्र ब्राह्मणों के प्राचीन दशा की भी थी। इसके सम्बन्ध में बुचमैन का मत है कि जुझौतिया ब्राह्मण उत्तर में यमुना से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक और पश्चिम में वेतवा तटवर्ती ओरछा से लेकर पूर्व में बुन्देला नाले तक फैले हुये थे।

पर्वतों तथा पठारों की बुन्देलखण्ड में बाहुल्यता है। इसका सम्बन्ध समतल मैदान की पट्टी से भी है जो दक्षिण से उत्तर की ओर फैली हुई है जिससे जालौन तथा झाँसी जिलों में बीहड़ जंगलों की कमी नहीं है। ये बीहड़ 5–7 मील तक पाये जाते हैं। यमुना, पहूज, वेतवा और धसान नदियों के कारण बीहड़ता अधिक है तथा इसी के कारण बहुत सी जमीन गैर उपजाऊ है तथा उसमें उत्पादक क्षमता कम है। भौगोलिक सीमाओं का सम्बन्ध कृषि, बागवानी और फलदार वृक्षों से अधिक होता है। भूगोल वेत्ता और कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार बीहड़ता ऊसरपन और बंजरपन का प्रतीक है।

पहाड़ियों के अनुसार इस क्षेत्र को 3 श्रेणियों में बांट सकते हैं। 1. विंध्य श्रेणी 2. पन्ना श्रेणी 3. भाण्डेर श्रेणी। विंध्य श्रेणी का सम्बन्ध सिंध तटवर्ती सीहोण नामक स्थान से शुरू होकर दक्षिण–पश्चिम की ओर नरवर तक जाती है। वर्तमान समय में सिहौण (स्योंढ़ा) दतिया जिले में आता है जोकि सिंध के किनारे वसा हुआ है तथा स्वयं एक तहसील भी है। नरवर ग्वालियर जिले में आता है तथा इसका एक विशिष्ट धार्मिक महत्व है। भू–गर्भ वेत्ताओं की धारणा है कि इस श्रेणी का आधार या निचला हिस्सा कठोर तथा ऊपरी भाग बालू की चट्टानों से बना है।

"पन्ना श्रेणी का विस्तार दक्षिणी विंध्याचल से शुरू होकर बांदा जिले की कर्वी तहसील तक फैला हुआ है तथा कटरा दर्रा तथा लाहौर ग्राम के बीच में इसकी औसत ऊँचाई 1050 फीट है। यह लगभग 10 मील चौड़ी तथा बालू की चट्टानों से बनीं हुई है। पन्ना श्रेणी तथा विंध्य श्रेणी में काफी असमानता है।[1]"

"भाण्डेर श्रेणी की शुरूआत पन्ना के दक्षिण पश्चिम से होती है तथा इस क्षेत्र में चूने की चट्टानें हैं। इसकी औसत चौड़ाई 15 से 20 मील तक है और समुद्र सतह से इसकी ऊँचाई 1700 फीट है।[2]"

---

1. अब्दुल क्यूम मदनी "बुन्देलखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास पेज सं0 8

2. अब्दुल क्यूम मदनी "बुन्देलखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास पेज सं0 8

विंध्य, पन्ना और भाण्डेर श्रेणी का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि यहाँ पर पाई जाने वाली चट्टानों, मिट्टी, वनस्पति, पशु, पक्षी, झाड़ियों एवं जंगली प्राणियों में काफी भिन्नतायें पायी जाती हैं क्योंकि इनका सम्बन्ध वहाँ की भौगोलिक, वातावरणीय एवं जलवायु सम्बन्धी भिन्नताओं से है जोकि विभिन्न प्राणियों और वनस्पतियों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालती हैं। बुन्देलखण्ड में पायी जाने वाली नदियाँ, पहाड़ियाँ, पठार, बीहड़ कटाव आदि के आधार पर भौगोलिक संरचनायें अन्य क्षेत्रों से भिन्नता और असमानता को प्रदर्शित करती है क्योंकि ये उनकी विशिष्टता और प्रतिबिम्बता को समेटे हुये है। यह वैज्ञानिक, भौगोलिक, साहित्यिक, धार्मिक, मौसम विज्ञान, जलवायु विज्ञान, पक्षी विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान को भी प्रदर्शित करती है। समूची विंध्य मेखला के पश्चिम से पूरब, गुजरात के अतिरिक्त पाँच टुकड़े हैं–

1. राजपुताना
2. मालवा का पठार
3. बुन्देलखण्ड
4. वघेलखण्ड–छत्तीसगढ़
5. झारखण्ड

बुन्देलखण्ड में वेतवा (वेत्रवती), धसान (दशार्ण) और केन (शुक्तिमती) के कांठे, नर्मदा की उपरीली घाटी और पंचमढ़ी से अमरकंटक तक ऋक्ष पर्वत का हिस्सा सम्मिलित है। उसकी पूर्वी सीमा टौंस (तमसा) नदी है। इस प्रकार वेतवा और केन कोठी तथा नर्मदा उपरेले कांठे वाला प्रदेश बुन्देलखण्ड है। वस्तुतः यह भौगोलिक सीमा आधुनिक बुन्देलखण्ड की यथार्थ सीमा है।[1]

बुन्देलखण्ड में कुल मिलाकर 33 छोटे बड़े राज्य थे जो अब उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश राज्य में मिला लिये गये हैं। सम्पूर्ण भू–भाग का क्षेत्रफल 70–80 हजार वर्गमील है।

इण्डियन गजेटियर्स में भी बुन्देलखण्ड की वही सीमायें दी गई हैं जो छत्रसाल के राज्य विस्तार के लिये पूर्व में उद्धृत की जा चुकी है। राजनैतिक विभाजन के अनुसार इस भू–भाग के अन्तर्गत निम्नलिखित जिलों को ले सकते हैं–

उत्तर प्रदेश– 1. जालौन 2. हमीरपुर 3. झाँसी 4. बाँदा 5. महोबा 6. ललितपुर 7. चित्रकूट धाम कर्वी।

---

1. भारत भूमि और उसके निवासी– जयचन्द्र विद्यालंकार, पृ0 65

मध्य प्रदेश— 8. टीकमगढ़ 9. छतरपुर 10. पन्ना 11. दमोह 12. सागर

13. नरसिंहपुर 14. भिण्ड 15. दतिया 16. ग्वालियर

17. शिवपुरी 18. मुरैना 19. गुना 20. विदिशा 21. राजगढ़

22. रायसेन 23. होशंगाबाद

बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पूर्व में टौंस (तमसा) और पश्चिम में चम्बल नदियाँ स्थित हैं। वह प्रदेश जो इन चारों नदियों के बीच में आया है, बुन्देलखण्ड माना जाता है।

इस प्रकार यह निश्चित होता है कि बुन्देली भाषा यमुना से नर्मदा की घाटी तक बोली जाती है। शुद्ध रूप से यह झाँसी, जालौन,हमीरपुर, ग्वालियर का पूर्वी भाग, नरसिंहपुर जिले का उत्तरी भाग होशंगाबाद तथा भोपाल तथा विदिशा जिले का पूर्वी भाग, ओरछा, सागर सिवनी, दतिया, टीकमगढ़, उरई, ललितपुर, कालपी, महोबा, दमोह आदि स्थानों में बोली जाती है। इलाहाबाद—कटनी रेलवे लाइन का पश्चिमी भाग का क्षेत्र बुन्देली भाषा का है तथा इसका पूर्वी भाग बघेली क्षेत्र है। पाटन, सिहोरा तथा कटनी तहसील के ग्रामों की भाषा बघेली है परन्तु नगर के क्षेत्र बुन्देली प्रभावित हिन्दी बोलते हैं। नर्मदा के दक्षिण में स्थित छिंदवाड़ा, सिवनी और वैतूल के जिले बुन्देली भाषी ही कहे जाते हैं, यद्यपि बोली मराठी से प्रभावित है। बाँदा जिले की भाषा बुन्देली तो है पर कुछ बुन्देली भाषा से भिन्न है। बुन्देली के कई मिश्रित रूप दतिया, बाँदा, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा छिंदवाड़ा के कुछ भागों में पाये जाते हैं।

बुन्देली भाषा—भाषियों की संख्या डा0 ग्रियसेन के सर्वेक्षण के अनुसार 68,69201 है।[1] श्री रामाज्ञा द्विवेदी ''समीर'' ने उक्त सं0 67 लाख ही दी है।[2] कृष्णा नन्दन गुप्त ने बुन्देली की जनसंख्या (1951) 86,69,893 दी है।[3] इसमें कठिनाई यह है कि गुप्त जी ने रायसेन जिले को इसमें शामिल नहीं किया है तथा उत्तर प्रदेश के 4 जिलों 1. जालौन 2. हमीरपुर 3. बाँदा 4. झाँसी को छोड़ दिया गया है जो बुन्देली के खास केन्द्र हैं। इस प्रकार गुप्त जी की जनगणना सही आंकड़े प्रस्तुत नहीं करती।

---

1. देखिये— भारत का भाषा सर्वेक्षण खण्ड 1, भाग 1 — डा0 ग्रियसेन पृ0 299

2. देखिये— पंचदश लोकभाषा खण्ड 1, भाग 1— निबंधावली, लेखक—रामाज्ञा द्विवेदी ''समीर'' पृ0 171

3. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास षोडस भाग, पृष्ठ 321

इसमें संदेह नहीं कि बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुपात में बुन्देली बोलने बालों की संख्या अब एक करोड़ से अधिक बढ़ गई है।

आजकल चम्बल और नर्मदा के आस–पास के प्रान्तों को बुन्देलखण्ड में मानने पर मतभेद हो सकता है किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से उपर्युक्त सीमायें ही मानना उचित है। इस भू–भाग की भाषा भी प्रायः एक ही है, इसमें कहीं कहीं थोड़ा हेरफेर पाया जाता है परन्तु विशेष नहीं। सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकता तो उपर्युक्त सीमा में पाई ही जाती है। व्रत, त्योहार तथा तत्सम्बन्धी लोकगीतों का प्रचलन सर्वत्र एकसा पाया जाता है।[1]

---

1. डॉ0 रामस्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही' ''बुन्देली लोक साहित्य'' पेज सं0 5, रंजना प्रकाशन, आगरा।

प्राकृतिक विशेषता

बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक विशेषतायों में विचित्रतायें, विशेषतायें और विसंगतियाँ हैं जिनका सम्बन्ध भौगोलिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, दार्शनिक, लोककथाओं, लोक परम्पराओं एवं लोक नीतियों से भी है। इस प्रान्त के अन्तर्गत ऐतिहासिक और भौगोलिक समानतायें और असमानतायें अधिकांशतः पायी जाती हैं। प्राकृतिक संरचना और भू संरचना के आधार पर अधिक असमानतायें पायी जाती हैं। पर्वत श्रेणियाँ, नदियों की स्थिति, प्राकृतिक दृश्य, प्राकृतिक सुन्दरता, चारागाह, वन, पठार, पहाड़, नदियाँ अतुलनीय एवं अनुपमीय स्थिति को समेटे हुये है।

बुन्देलखण्ड में विंध्याचल, पन्ना तथा भांडेर पर्वत श्रेणयाँ पायी जाती हैं जिनकी अधिकतम ऊँचाई 2000 फीट तक है। ये पर्वत श्रेणियाँ कई मीलों तक फैली हुयी है जोकि अपनी आभा और सुन्दरता के लिये प्राकृतिक छटा को विखेरती है। इन पर्वतों पर पायी जाने वाली वनस्पति, साख, झाड़ी और वृक्ष तथा कटीली झाड़ियाँ अपनी सुन्दरता को विखेरती हैं। इन पर्वत श्रेणियों में गुफाओं तथा कन्दराओं का अपना एक विशेष प्राकृतिक, ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व है।

पर्वत श्रेणियों पर पाये जाने वाले जंगली पशु जैसे शेर, तेंदुआ, भालू , गीदड़, जंगली सुअर, सेही, बारह सिंगा, भेड़िया, हिरन, नीलगाय, सांभर, चीतल, लंगूर, बन्दर, खरगोश एवं लोमड़ी आदि शाकाहारी एवं मांसाहारी जंगली जानवरों से इन वनों की शोभा बढ़ती है।[1]

बुन्देलखण्ड में अधिकतर गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड़ इत्यादि पालतू जानवर हैं जिनका सम्बन्ध किसी व्यवसाय और पशुधन से है। अधिकांशतः परिवारों में गाय के प्रति लोगों की श्रद्धा है। कृषि के अतिरिक्त पशुओं का पालन पोषण जीवकोपार्जन का एक साधन है। बुन्देलखण्ड के झाँसी, जालौन, बाँदा तथा ललितपुर जैसे जनपदों में गौवत्स के स्थान पर ट्रेक्टर ने अपना स्थान बना लिया है जोकि कृषि के आधुनिकीकरण को प्रदर्शित करता है।

बुन्देलखण्ड में नदियों का भी विशेष महत्व है जिसकी मुख्य नदियों में सिंध, बेतवा, केन, बागैन, पैसुनि टौंस, पहूज और धसान है। वेतवा और पहूज नदियाँ बुन्देलखण्ड प्रान्त की बड़ी नदियाँ हैं जिसमें कि बेतवा नदी के किनारे पर ओरछा ऐतिहासिक नगर बसा हुआ है तथा पहूज नदी पर उन्नाव बालाजी धार्मिक नगर बसा हुआ है। बेतवा नदी पर माताटीला जैसा विशाल बाँध स्थित है जिसमें कि प्रतिदिन 8 किलो मेगावाट विद्युत का उत्पादन किया जाता है। इन नदियों पर कई प्रकार

---

1. डॉ० रामस्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही' "बुन्देली लोक साहित्य" पेज सं० 6, रंजना प्रकाशन, आगरा।

के बाँध, बैराज और छोटे–बड़े तालाबों का निर्माण किया गया है। ललितपुर जिला अपने सात बाँधों के लिये विश्व प्रसिद्ध है जो है राजघाट बाँध, माताटीला बाँध, सुकवा, ढुकुवा बाँध, शहनाज, शबनम और गोबिन्द सागर बाँध। बुन्देलखण्ड की सिंचाई के लिये बाँध पूर्णतः और अपूर्णतः को प्रदर्शित करते हैं। बेतवा का पानी बाँधा गया है फिर भी सिंचाई के साधन अच्छे नहीं हैं। वेतवा के तटवर्ती स्थान भू–आवृति, भू–संरचना, प्राकृतिक दृश्यों के लिये अनुपमीय और अतुलनीय है।

वर्तमान समय में बाँधों, जलाशयों तथा तालाबों में मत्स्य पालन परियोजना चलाई जा रही है। मत्स्य पालन एक व्यापार और व्यवसाय है जो रायकवार, ढीमर, बाथम जैसी जातियों का जीविका चलाने का साधन है।

यहाँ के मैदानों में बवूल, नीम, पीपल, वरगद, शीशम, गुलमोहर तथा सुगन्धित पौधों में गेंदा, गुलाव, चमेली, मोंगरा, केवड़ा जैसे पुष्पीय पौधे भी पाये जाते हैं जोकि सुन्दरता के प्रतीक हैं। पर्वतीय भागों में साल, सागोन, तेंदू, आंवला के वृक्ष पाये जाते हैं। फलदार वृक्षों में चिरोंजी, सीताफल, रामफल, खजूर, बेर, आम, जामुन, महुआ इत्यादि हैं। जामुन की दो प्रकार की प्रजातियाँ पायी जाती हैं– राय जामुन और कट जामुन। आमों में लंगड़ा, सफेदा, तोतापरी और दशहरी जैसे आम की प्रजातियाँ विभिन्न बागों, उपवन और कुन्जों में पायी जाती हैं। महुआ के वृक्ष मऊरानीपुर तहसील में अधिक मात्रा में पाये जाते हैं जिनसे कि पुष्पों को एकत्रित करके आयुर्वेदिक औषधियाँ बनाई जाती हैं तथा उसके फल से शराब बनाई जाती है जोकि बुन्देलखण्ड की कंजर जाति के लिये जीविका का साधन है। सिहारू, स्पासा, चिल्ल इत्यादि के पौधों की लकड़याँ इमारत बनाने के काम आती हैं तथा ग्रामीण क्षेत्र में खपरैल के मकानों में इन लकड़ियों का प्रयोग करके उनकी छत और आवरण बनाये जाते हैं परन्तु आधनिकीकरण के कारण और सभ्यता और संस्कृति में परिवर्तन होने के कारण खपरैल और कच्चे मकानों का अस्तित्व समाप्त होता जा रहा है। यहाँ की उपज में गेंहू, कौदों, ज्वार, मूंग, सठिया, चावल, रमजिला, तिली, सरसों, अलसी, अंडी, महुआ का फल (गुली) आदि होते हैं।

बुन्देलखण्ड प्रान्त में पायी जाने वाली सब्जियों में ऋतुओं के अनुसार पैदावार होती है। कुछ सब्जियाँ वर्षा ऋतु में होती हैं। जैसे पड़ोरा (ककोरा), वन ककोरा, कचहरिया, कद्दू, लौकी, करेला, भिण्डी, अरबी (घुइया) सेम एवं शीत ऋतु की सब्जियों में मटर, गोभी, पत्ता गोभी, बेंगर (भटा) मूली, शलगम तथा ग्रीष्म ऋतु की सब्जियों में कद्दू एवं ककड़ी, खीरा। नदियों के किनारे ग्रीष्म ऋतु

में तरबूज खरबूजा इत्यादि पैदा होते हैं। झाँसी जनपद के बरूआसागर क्षेत्र तथा ललितपुर जनपद की तालबेहट तहसील में अदरख का अधिक उत्पादन है। यहाँ का अदरख महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं दक्षिण भारत के प्रांतों तक भेजा जाता है।

कुछ ऐसे पौधे भी पाये जाते हैं जिनका उपयोग अचार बनाने के लिये किया जाता है जैसे– करोंदा, लसोंड़ा, चकोथरा, टेंटी आदि। बुन्देलखण्ड में फलों का उत्पादन कम है। यहाँ की मृदा में अन्वेषणें के आधार पर ऐसे तत्वों की कमी है जो कि फलों को उत्पादित करने में समर्थ है। भारतीय कृषि अनुसंधान चारागाह के अनुसंधारकों के आधार पर बुन्देलखण्ड की मिट्टी में आयरन , कैल्शियम तथा जिंक का अभाव है। महुआ का वृक्ष बुन्देलखण्ड के लिये कल्पवृक्ष है। महुआ के सम्बन्ध में बहुत सी लोक कथायें, लोक परम्परायें एवं बुन्देलखण्डी कहावतें प्रचलित हैं जोकि महुआ वृक्ष की विशेषता को शोभायमान करती हैं क्योंकि महुआ वृक्ष मध्यम और गरीब परिवारों का भोजन भी है और अर्थ की दृष्टि से जीविकोपार्जन का साधन है। महुआ बुन्देलखण्ड की मेवा है। गरीब परिवारों में पैसे का अभाव होने के कारण किशमिश और काजू के स्थान पर महुआ का भोजन और कलेऊ के रूप में उपयोग किया जाता है।

महुआ मेवा वेर कलेवा, गुलगट बनी मिठाई।
इतनी चीजें खान चाहो तो, घटिया खाले करो सगाई।।

अकाल एवं सूखा पड़ने पर महुआ लोगों को जीवन दान देता है। विज्ञान की दृष्टि से महुआ में कार्वोहाइड्रेट की मात्रा 35 प्रतिशत होती है जोकि भोजन की पूर्ति करता है।

जनपद टीकमगढ़ के कुण्डेश्वर और जतारा अमरूद व केलों के लिये प्रसिद्ध हैं परन्तु इतनी अधिक मात्रा में उत्पादन नहीं है कि अन्य शहरों में उनको भेजा जायें। शिशुपाल की नगरी चन्देरी, जोकि वर्तमान में गुना जिले में आती हैं, की रेशमी साड़ियाँ विश्वप्रसिद्ध हैं। भारतीय महिलायें ही नहीं विदेशी महिलायें भी अर्थात यूरोपियन देशों की महिलायें इन साड़ियों को पसन्द करती हैं। चन्देरी का व्यवसाय उसको गौरवता एवं महानता दिलाता है। चन्देरी की 25 प्रतिशत जनसंख्या साड़ी उद्योग में लगी हुई हैं। चन्देरी एक ऐतिहासिक नगरी है परन्तु समय के परिवर्तन से ऐतिहासिक नगरी अपना अस्तित्व खोती जा रही है।

जनपद जालौन की कोंच तहसील मांस व्यापार के लिये काफी प्रसिद्ध रही है परन्तु गौ वध पर प्रतिबन्ध हो जाने से ये व्यवसाय मन्द व धूमिल पड़ चुका है।

गड़रिया (पाल) जाति के लोग भेड़ एवं बकरी पालते हैं जिनका कि मुख्य व्यवसाय ऊन का है। इस ऊन के द्वारा शीत ऋतु में काम आने वाले पहनने और ओढ़ने वाले वस्त्रों को तैयार किया जाता है।

उरई जनपद जालौन का मुख्यालय एवं प्रमुख नगर है जिसको उद्दालक ऋषि ने वसाया था। इस नगर का नाम इतिहास से भी जुड़ा हुआ है क्योंकि यहाँ का माहिल तालाब, ठड़ेश्वरी मंदिर प्राचीनतमता के प्रतीक है। माहिल तालाब ऐतिहासिक तालाब है जो अतीत के गौरव की कहानी बताता है। उरई नगर व्यापारिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है जिसका कि सम्बन्ध रेलमार्ग द्वारा कानपुर एवं झाँसी से है। यह नगर राष्ट्रीय राजमार्ग 23 नम्बर पर स्थित है।

कालपी जनपद जालौन की प्रमुख तहसील है जिसको कि ऋषि कल्पनाथ ने वसाया था। इसका वर्णन पुराणों एवं शास्त्रों में है। "कालपी को बुन्देलखण्ड की काशी एवं प्रवेश द्वार कहा जाता है" यह नगर यमुना तट पर बसा हुआ है। ऋषि व्यास इसी नगर के थे। इस कारण से इसको तपोभूमि कहते हैं।

एतिहासिक दृष्टि से कालपी को बीरवल का जन्म स्थान कहा जाता है तथा इस नगर में लंका, बारह खम्भा आदि ऐतिहासिक व पर्यटन दृष्टि से प्रसिद्ध हैं। कालपी का सूर्य मन्दिर भी ऐतिहासिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक आस्था का केन्द्र है। कालपी हस्तनिर्मित कागज उद्योग और पावर लूम (कपड़ा उद्योग) आदि के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ का हस्तनिर्मित कागज कानपुर, कलकत्ता, बम्बई तक आपूर्ति किया जाता है।

जालौन, जनपद की तहसील है जिसको कि जाल्वन ऋषि ने वसाया था। यह तहसील राष्ट्रीय मार्ग व रेल मार्ग से अछूती रही जिस कारण से इसका पूर्ण विकास नहीं हो पाया। जालौन का सम्बन्ध झाँसी रियासत से रहा है। यहाँ के कई मराठा प्रतिष्ठित परिवार इस तहसील की गौरवगाथा को बताया करते हैं।

जनपद हमीरपुर प्राकृतिक सुन्दरता के लिये एक मशहूर जनपद है। यह जनपद दो नदियों वेतवा और यमुना से घिरा हुआ है। इस जनपद की राठ तहसील काफी विकसित है। इस जिले के व्यापारिक बाजार का सम्बन्ध कानपुर से है। जनपद में 60 प्रतिशत लोधी (राजपूत) पिछड़ी

जाति है। जनपद का साहित्यिक व सांस्कृतिक दृष्टि से विशिष्ट योगदान है जो अपने जिले की गौरवगाथाओं एवं वीर कथाओं को समेटे हुये है। जीवकोपार्जन का साधन कृषि है।

जनपद ललितपुर का 75 प्रतिशत हिस्सा मध्य प्रदेश प्रान्त की सीमा को छूता है। इसके इर्द–गिर्द सागर, टीकमगढ़ जिले सम्बन्धित हैं। ललितपुर की बरूआसागर तहसील काफी सम्पन्न है। बरूआ सागर के किले को राजा मर्दन सिंह ने बनवाया था । इस कारण से इस कस्वे का ऐतिहासिक महत्व है। देवगढ़ ललितपुर जिले में आता है जो कि दशावतार के लिये प्रसिद्ध है परन्तु वर्तमान समय में सभी मूर्तियाँ खण्डित हो चुकी हैं पर उस युग के अवशेष हैं। देवगढ़ में जैन मन्दिर अपनी प्राचीन भव्यता को समेटे हुये है जोकि जैन पंथ की साहित्यिक, धार्मिक, ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक महत्व को बताती है। ललितपुर जनपद की प्राकृतिक छटा और सुन्दरता अपने आप में अनोखी एवं अनूठी है। जैन समाज 40 प्रतिशत ललितपुर जिले में बसा हुआ है जिनका कि मुख्य धन्धा व्यापार और कृषि है। ललितपुर की महरौनी तहसील टीकमगढ़ जिले को छूती है। ललितपुर से 22 कि0मी0 की दूरी पर काला पहाड़ लाल रंग के ग्रेनाइट के लिये प्रसिद्ध है।

झाँसी सम्भाग के अन्तर्गत तीन जिले आते हैं– झाँसी, जालौन एवं ललितपुर। जनपद झाँसी म0प्र0 प्रान्त की सीमाओं को छूता है– दतिया, शिवपुरी एवं टीकमगढ़। इस नगर का मुख्य रोजगार रेलवे है तथा बवीना को नव झाँसी के नाम से जाना जाजा है जो सैन्य छावनी के लिये प्रसिद्ध है। इस नगर के तीन प्रतिष्ठान काफी प्रसिद्ध हैं, भारत हैवी इलैक्ट्रीकल्स लि0, डायमंड सीमेंट फैक्ट्री तथा पारीछा तापीय विद्युत निगम। इस नगर के चारों ओर पठारी क्षेत्र है। झाँसी नगर का ऐतिहासिक, साहित्यिक और धार्मिक क्षेत्र में विशेष महत्व है। साहित्यिक दृष्टि से केशवदास, मैथलीशरण गुप्त, वृन्दावन लाल वर्मा और महावीर प्रसाद द्विवेदी अपना विशेष महत्व रखते हैं। मैथली शरण गुप्त की रचनायें– पंचवटी, यशोधरा ख्याति प्राप्त रचनायें हैं तथा वृन्दावन लाल वर्मा की रचनायें– मृगनयनी, गढ़गुण्डार और झाँसी की रानी हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासों में से जाने जाते हैं।

झाँसी नगर का ऐतिहासिक महत्व भी है और 1857 के विद्रोह में झाँसी की रानी का विशेष योगदान रहा जो अमिट है। झाँसी की रानी का योगदान चिरस्मरणी है। झाँसी की रानी एक ऐतिहासिक नायिका थीं जिनका नाम भारत के इतिहास में, संस्कृति में, साहित्य में, प्रेरणाओं में

गाथाओं में, कथाओं में हमेशा आता है। भारत के लोग उस वीरांगना का हृदय से हमेशा सम्मान करते रहेंगे जिनके क्रियाकलाप एक सामान्य नारी की तरह नहीं थे बल्कि एक आदर्श ऐतिहासिक नायिका के रूप में थे।

जिला बांदा मुख्यरूप से दो बातों में प्रसिद्ध है। पहली बात तो ये है कि राजा राम ने अपने वनवास का अधिक समय चित्रकूट में व्यतीत किया इसलिये चित्रकूट विश्व प्रसिद्ध स्थल है। दूसरी ये है कि सामरिक महत्व का कालिंजर किला प्राचीन समय में बांदा जिले में आता था जिस पर मुगलों ने कई आक्रमण किये तथा शेरशाह सूरी भी बारूद से झुलस कर मर गया था।

नरैनी के दक्षिण में सामरिक महत्व का किला जो ईसा के 250 वर्ष पूर्व राजा करम ने बनवाया था तथा प्रथम शताब्दी में शकुन्तला, दुष्यन्त पुत्र भरत का राज्य, गुप्तकाल, चन्देल तथा बुन्देलों का अधिपत्य रहा था। सन् 1688 में बुन्देलों ने कालिंजर किले पर अधिकार कर लिया था तथा मान्धाता चौबे किलेदार नियुक्त किये गये थे।

बांदा जिले का मुख्यालय केन नदी पर बसा हुआ है जो फतेहपुर–नौगांव सड़क पर 216 कि0मी0 है। अलीबहादुर ने भी बांदा को ही मुख्यालय बनाया था।

बांदा जिले की मुख्य तहसील करबी वर्तमान में चित्रकूट जिले में है। यहां बुन्देलों का किला है जिसका कि पुराना नाम कल्यानगढ़ है। बांदा जिले की तहसील नरैनी जो बांदा से 24 कि0मी0 पर स्थित है जो राजा पिथौरा ने बसाया था। यहां 700 मस्जिद व 900 कुयें थे परन्तु वर्तमान में सभी खण्डहर और अवशेष बनकर रह गये हैं जो प्राचीन इतिहास की गौरवमयी गाथा को बताते है।

चित्रकूट बांदा सम्भाग का जिला है जो हिन्दू धर्म की पवित्र एवं धार्मिक नगरी है। चित्रकूट मन्दाकिनी नदी के किनारे वसा हुआ है। इस नगर का वर्णन भारतीय धार्मिक ग्रन्थों, बाल्मीक, रामायण और तुलसीकृत रामचरित मानस से मिलता है। चित्रकूट का सम्बन्ध साधु सन्यासियों, महन्तों से है। यहाँ का कामतानाथ मन्दिर (कामदगिरी) प्रसिद्ध है तथा सतीअनुसूइया आश्रम भी धर्म का विशेष आस्था केन्द्र है। चित्रकूट के चारों ओर प्राकृतिक सौन्दर्यता है जो अपनी प्राकृतिक सुरम्यता को लिये हुये हैं और प्रकृति का अनोखा समागम और सामंजस्य चित्रकूट में देखने को मिलता है।

महोबा भी बाँदा सम्भाग का एक जिला है जो ऐतिहासिक व धार्मिक नगर है। महोबा जिले की सीमा मध्य प्रदेश प्रान्त को छूती है। महोबा के पान भारत में काफी लोकप्रिय हैं तथा वहां के तालाब अपनी एक विशेष छवि को लिये हुये प्राचीन इतिहास को दोहराते हैं। महोबा नगर वाणिज्य एवं व्यापार में कानपुर महानगर से सम्बन्ध रखता है। इस नगर ने अपने जीवन में कई उतार चढ़ाव देखे हैं। शिलालेखों के अनुसार महोबा नगर का एक विशेष महत्व है।

झाँसी सम्भाग के समस्त जिलों का एक विशेष गौरव है जिनकी अपनी परम्परायें, संस्कार, सभ्यता, रीति रिवाज, तौरतरीके, व्रत–त्योहार, पारम्परिक मेले, ग्रामीण मेले, सांस्कृतिक मेले एक विशेष महत्व रखते हैं। किले एवं गढ़ियाँ, मन्दिर, मस्जिद, कब्रिस्तान, छतरियों, मजारों, समाधियों का विशेष स्थान है जो प्राचीनतम इतिहास को दोहराते है और उनका इतिहास वृतांत, लोकवृतांत एवं पारम्परिक वृतांत की कहानियाँ प्रतिबिंवित करते हैं। भारत वर्ष में झाँसी सम्भाग की एक विशेष अमिट छाप है जिससे लोग बड़े गौरव के साथ इसका नाम लेते है।

बुन्देलखण्ड अपनी गौरव गाथाओं, परम्पराओं और प्रसिद्ध गढ़ियों, किलों के लिये भारत वर्ष में ही नहीं अपितु विश्व में विख्यात है। इतिहासकार ईविलियम्स के अनुसार बुन्देलखण्ड का अनोखापन और अनूठापन भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में सर्वोपरि है। बुन्देलखण्ड की संस्कृति और सभ्यता भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों से भिन्नता को प्रदर्शित करती हैं। बुन्देलखण्ड के लोग सादगी, सरल और सहजता का जीवन व्यतीत करते हैं। अधिकतम लोग शिक्षा का अभाव होने से प्राचीन परम्पराओं, रूढ़िवादी परम्पराओं और अंध विश्वास की जिन्दगी जीते हैं। बुन्देलखण्ड के ग्रामों में ग्रामीण संस्कृति और क्षेत्रीय देवी देवताओं की पूजा अर्चना और उपासना की जाती है। लोगों की सोच में उच्चता और निम्नता दोनों पायी जाती हैं। बुन्देलखण्ड की ग्रहणियों में ममत्व, पुत्रत्व, मातृत्व, वीरत्व, पतित्व, सतित्व और ईश्वर भक्ति जैसे आचरण स्पष्ट रूप से झलकते हैं और दिखाई पड़ते हैं।

बुन्देलखण्ड प्रान्त की जीवन पद्धति में सहजता, सरलता, शिष्टता और लोक परम्पराओं के आचरण झलकते हैं। ग्रामीण परिवारों में स्वच्छता दिखलाई पड़ती है। शिक्षा का अभाव है परन्तु महिलाओं के तौर तरीके, आचरण, खाना बनाने की पद्धति में स्वच्छता और साफ सुथरापन स्पष्ट झलकता है। महिलायें धर्मपरायण हैं, पुरूषों का साथ देती हैं तथा वैदिक, पौराणिक एवं शास्त्रीय आचरण का पालन करती हैं। उनके हृदय में पति और पुत्र के लिये विशिष्ट स्थान है और वे बुजुर्गो का भी सम्मान करती हैं। ग्रहणियों में अपनत्व की भावना है। उनके हृदय में पतिभक्ति, ईश्वर भक्ति तथा वृद्ध लोगों के लिये समर्पण की भावना दृष्टिगोचर होती है।

संस्कृति

यह भूमि आर्य सभ्यता के आगमन के पूर्व अनार्य कालीन संस्कृति के प्राचीनतम रूपों की क्रीडा भूमि रही है। भारद्वाज, याज्ञवलक्य आदि स्मृतिकारों के आश्रम बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत थे। रामायण के वर्णन के अनुसार बाल्मीकि, अत्रि, शरभंग, सुतीक्षण, एवं अगस्त ऋषियों के आश्रम इसी प्रदेश में थे। बुन्देखण्ड भगवान राम के समय में दण्डकारण्य का भाग था। महाराज रामचन्द्र सरजू को पार करके चित्रकूट में आकर रहे जो एक प्रसिद्ध पर्वत है। महाभारत में कालिंजर अगस्त मुनि का स्थान बताया गया है। भवभूति के उत्तर रामचरित में बाल्मीकि आश्रम के निकट सुरला (नर्मदा) और तमसा (टौंस) नदियों का नाम आया है। बुन्देलखण्ड की तपस्थली में ऋषि मुनियों ने अपार ज्ञान कोष संग्रह कर सारे देश को प्रकाशित किया। आर्य और अनार्यों की संस्कृति का संगम–स्थल यही बुन्देलखण्ड रहा है। निषाद गुह, केवट आदि जातियों तथा ताड़का, खरदूषण, मारीच आदि राक्षसों का निवास स्थल यहीं था। आज भी द्राविण संस्कृति के संरक्षक कोल भील, वैगा, गोंड तो अपने को रावण वंशीय मानते हैं। ये जातियाँ स्वयं को कमरवंशी, वानर वंशी और रघुवंशी कहती हैं। ये लोग रावण की पूजा भी करते हैं।

अठारह पुराणों और महाभारत के रचयिता कृष्णद्वैपायन वेदव्यास की जन्म भूमि कालपी थी, जिसका पौराणिक नाम कालप्रिय था। महाभारत काल में पांडवों के नाना कुन्तलपुर के अधीश्वर थे, जो वर्तमान में 'कुन्तवार' के नाम से प्रसिद्ध है। महर्षि संदीपन का आश्रम इसी भू भाग में था। निषिध देश के राजा नल की राजधानी नलपुर में थी, जो अब नरवर कहलाता है। शिशुपाल की राजधानी चंदेरी प्रदेश के मध्य भाग में स्थित है। विद्याओं के भण्डार तपोनिधि पाराशर जी, वीर मित्रोदय, वृहद कोष के रचयिता मित्रमिश्र, प्रवोध चन्द्रोदय के रचयिता पं0 कृष्णमिश्र एवं शीघ्रबोध के पं0 काशीनाथ मिश्र ने इसी भूमि को अलंकृत किया है। कौशाम्बी में भगवान बुद्ध ने बहुत समय तक निवास किया था। मौर्यकाल में सागर जिले के एरन नगर को समुद्रगुप्त ने अपना स्वमेगनगर बनाया था।

इस भू–भाग के अन्तर्गत नगरों तथा ग्रामों की नामोत्पत्ति का परिचय देना अनुपयुक्त न होगा क्योंकि इन पुण्य स्थलों ने लोगों के धार्मिक जीवन को प्रभावित किया है। इससे

बुन्देलखण्ड की प्राचीन सांस्कृतिक एवं राजनैतिक गतिविधियों का पता चलता है। दतिया जिले में स्थित सेंवड़ा का प्राचीन नाम "किन्नरगढ़" है। सेंवढ़ा में सनकादिक ऋषियों ने तपस्या की है। पांडवों के अश्वमेघ यज्ञ हेतु श्याम वर्ण घोड़ा भांडेर से गया था। इन ऋषियों की तपस्थली होने के कारण सिंध नदी में स्थित कुआ का नाम "सनकुआ" पड़ा है। सोनागिरि पहले श्रमणगिरि था क्योंकि यहां 77 शिखर सहित जैन मन्दिर है। श्रमण जैन मुनियों को कहते हैं इसलिये श्रमणगिरि नाम पड़ा था। झाँसी का पूर्व नाम 'बलवंतपुर' था। यह दतिया और औरछा से देखने पर झाँई सा लगता दिखता था। अतः झाँसी कहलाने लगा। पांडवों की हत्या हेतु जो लाक्षागृह कौरवों ने बनाया था, वह लहार में बना था। दतिया का प्रचीन नाम दिलीप नगर था, जो दिलीप सिंह अथवा दलपति राव से बना प्रतीत होता है। यह भी कहा जाता है कि दन्तवक्र के राज्य करने से दतिया नाम पड़ा है। ग्वालियर पहले बुन्देलखण्ड में ही था,जिसका नाम गालव ऋषि की तपोभूमि होने से ग्वालियर पड़ा है।कुंति आज कल का कोतवार प्रदेश है जिसमें ग्वालियर दतिया का इलाका है, जो चम्बल, क्वांरी, कालीसिंध और पहूज नदियों के कच्छ का प्रदेश था। यही क्वाँरी नदी के किनारे कौमारावस्था में कुन्ती ने कर्ण को जन्म दिया।[1]

स्थापत्यक्ता

यहाँ का कला–कौशल उच्च कोटि का रहा है। एरन स्थित जय स्तम्भ तथा बराह मूर्ति में प्राचीन शिलालेख खुदे हुये हैं। जबलपुर की रूपनाथ की चट्टानों पर अशोक की प्रशस्ति अंकित है। देवगढ़ और खजुराहो के मन्दिरों में शिल्प कला का उत्कृष्ट नमूना दिखाया गया है। बिक्रम की चौदहवीं शताब्दी से इस प्रदेश पर बुन्देलों का आधिपत्य हुआ है। बुन्देलकालीन किले, मन्दिर, महल, तालाब तथा स्मारक ग्वालियर से रीवा तक स्थान स्थान पर मिलते हैं। भरहुत, नंचना, बाधोगढ़, अजयगढ़, मंडखेरा, सिलहरा आदि स्थान शिल्प शास्त्र के कीर्ति स्थल हैं। ओरछा और दतिया के महलों के भित्ति चित्र कश्मीरी शैली की कला के उदाहरण हैं। पुरानी चित्रकारी में मुखछवि, रंगों का मिश्रण, पोशाक की चमक, वर्ण की सुन्दरता और भावों की स्वाभाविकता मिलती है। बुन्देलखण्ड–बावनी में बुन्देलखण्ड के बावन प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों, मन्दिरों, महलों, किला, गढ़ी, बांधी, कुन्ड, प्रपात, स्मारक, गुफाऐं, कुटी, मूर्तियाँ, घाट, वन, टौरिया आदि स्थानों का रोचक वर्णन किया गया है। कण्डेश्वर महादेव जो टीकमगढ़ से 4 मील दूरी पर है, की पूजा हेतु वाणासुर की पुत्री ऊषा वानपुर ग्राम से आती थी।[2]

---

1. डॉ० रामस्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही', " बुन्देली लोक साहित्य" पृष्ठ 8, रंजना प्रकाशन बांके विलास सिटी, स्टेशन मार्ग, आगरा–282003

2. वही–पृष्ठ 8।

ललितकला और साहित्य

महाराज रघुराज सिंह के काल में संगीत कला भारत में चरम सीमा पर थी। तानसेन और मधुरअली जैसे संगीतज्ञों ने इस प्रदेश को गौरव प्रदान किया है। स्व0 भवानी सिंह दतिया नरेश के समय में गुल्ला प्रसिद्ध नर्तक था और कुदौ सिंह पखावजी। किवदंती है कि कुदौसिंह ने एक ऐसे मस्त हाथी को, जो उस पर छोड़ा गया था, गजाकर्ण पखावज बजाकर अपने वश में कर लिया था। यहाँ के लोकगीतों में भी राग पीलू, आदि सब प्रकार के राग गाये जाते हैं।

यह पुण्यस्थली विद्वान कवियों एवं साहित्यकों की लीलाभूमि रही है, जिसकी गोद में पलकर आचार्यों एवं कवियों ने साहित्य सृजन किया है। चारण कवि चन्द्रवरदाई, जगनिक को यहाँ से प्रतिभा प्राप्त हुई। अकबर के विनोदप्रिय दरवारी बीरवल, प्रसिद्ध अर्थशास्त्री राजा टोडरमल यहीं के थे। कवि कुलगुरू कालिदास ने यहीं से प्रेरणा पाई है। आचार्य केशवदास ने ओरछा की राजसभा में रहकर साहित्य निर्माण किया है। कविकुल चूड़ामणि तुलसीदास क़ी जन्मभूमि राजापुर रही है। छतरपुर के ठाकुर कवि, पन्ना के लाल, करन, पजनेस कवि, दतिया के गदाधर कवि इसी भूमि के हैं। मिश्र बन्धु पद्माकर ने यहीं साहित्य सेवा की है। यहाँ के राजा साहित्य प्रेमी रहे हैं। पन्ना, छतरपुर, विजावरा अजयगढ़, चरखारी, दतिया, समथर के राजा कवियों के आश्रयदाता रहे हैं। राजा छत्रसाल कविता प्रेमी रहे हैं। वे स्वयं कवि थे और पत्र व्यवहार कविता में करते थे। केशवदास, बलभद्र मिश्र, भूषण, चिन्तामणि आदि यहाँ के प्रसिद्ध कवि हुये हैं। भूषण की 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल दशक' प्रसिद्ध है। मतिराम बूंदी के महाराज भाव सिंह के आश्रित थे, परन्तु ये बुन्देलखण्ड में रहे हैं। गोरेलाल पुरोहित उपनाम 'लालकवि' ने वीर रस का काव्य क्षत्रप्रकाश दोहे, चौपाइयों में लिखा है। नेवाज कवि, पुरूषोत्तम, पंचम आदि कवि रहे हैं। लालमणि के कवित्त 'छत्रसाल' की प्रशंसा में लिखे हैं। अनन्य कवि ने ज्ञान पचासा, राजयोग, विज्ञान योग, ग्रंथ लिखे। छत्रसाल ने स्वयं कृष्ण चरित्र नामक काव्य ग्रन्थ लिखा है। कवि रसनिधि ने 'रतन हजारा' लिखा है। स्वामी ऐतानन्द उपनाम 'ऐनसाई' ने सम्बत 1849 में कुंडलियाँ लिखीं । राजकीय पुस्तकालय दतिया में पांडुलिपियाँ प्राप्त हैं जो लेखनकला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

बुन्देलखण्ड के आधुनिक कवि एवं लेखकों ने बड़ी ख्याति प्राप्त की है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, डा0 वृन्दावन लाल वर्मा,[1] पं0 वनारसीदास चतुर्वेदी इसी तपोभूमि में पलकर साहित्य की अभिवृद्धि करने में जुटे रहे।

---

1. अब सभी स्वर्गीय।

शौर्य स्थली

यह प्रदेश प्रारम्भकाल से वीरभूमि रहा है। भारत के पुरातत्व विभाग के महानिदेशक का यह कथनः– कि 'बुन्देलखण्ड का प्रत्येक पत्थर इतिहास से भरा है' अक्षरशः सत्य है। यहाँ के निवासियों को दिल्ली, फर्रूखाबाद और मालवा के मुसलमान शासकों से अधिक समय तक युद्ध करना पड़ा है। यह लोग मराठों, अंग्रेजों और पिंडारियों से भी जूझते रहे हैं। बुन्देली वीर वीराणियों के वीरतापूर्ण कार्य भारत में ही नहीं सारे संसार में प्रसिद्ध हो गये हैं। यहाँ के वीर पुरूषों आल्हा,ऊदल, मलखे–सुलखे, परमाल आदि के पराक्रमों से 'आल्हखण्ड' भरा हुआ है जिससे प्रत्येक अनपढ़ ग्रामीण भी भलीभाँति परिचित है। वीर रानी दुर्गावती ने अकबर के सेनापति अशफाक खां के दांत खट्टे कर दिये थे। रानी सारंधा के वीरोचित आत्म बलिदान की कहानी घर–घर में व्याप्त है। महारानी विजयकुंवरि ने नबाव बंगश को हराकर भगा दिया था। झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई की वीरगाथा सारे भारत की प्रसिद्ध कहानी बन चुकी है, जिसने सन् 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में अंग्रेजों की अपार सत्ता की नींव हिला दी थी। क्रान्तिकारी नेताओं तात्याटोपे, नाना साहब की वीरता किसी से छिपी नहीं है। बानपुर के महाराज मर्दान सिंह, बांदा जिले के गुंवर हर प्रसाद सिंह की शौर्यगाथा बुन्देलों के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगी। लाला हरदौल का आत्म त्याग, लोकवाणी में फूटा पड़ता है। ओरछा के राजा मधुकरशाह के पराक्रम के आगे न्यामतकुली खां, अलीकुली खां आदि खानों को मुंह की खानी पड़ी थी। छत्रसाल की वीरता के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है–

इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उस टौंस।
छत्रसाल सौं लरन की, रही न काहू हौंस ।।

सजनाम, शहजाद, नारायण, चन्द्रशेखर आजाद, पं० परमानन्द आदि देशभक्तों की क्रीडा भूमि यही रही है। इस प्रकार इस भू–भाग को अतीतकाल से उज्ज्वल गौरवस्थली बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

जन–जातियाँ

इस क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या कृषि कार्य पर निर्भर है। यहाँ कई जातियां निवास करती हैं, जो खेती करके अपना निर्वाह करती हैं। ब्राह्मणों में जुझौतिया, कन्नौजिया, सनाढ्य, सरवरिया ब्राह्मण हैं। क्षत्रियों में सूर्य, चन्द्र और नागवंशी राजपूत बुन्देला क्षत्रिय हैं। राजपूतों की 65 जातियां पाई जाती हैं। वैश्यों में अग्रवाल, अग्रहारी, गहोई, केसरवानी, मारवाड़ी आदि हैं। वैश्य लोग वाणिज्य व्यापार करते हैं और पंडित पंडिताई करते हैं।

कृषि के अतिरिक्त कुछ जातियां अपने परम्परागत उद्योग धंधों को अपनाये हुये हैं। शिल्पी जातियों में कुम्हार, मिट्टी के घड़े, वर्तन बनाकर अपना आजीविका चलाता है और ग्राम की घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। बसोर बांस की चटाइयां, टोकरी, डलियां बनाता है, माली खजूर के पत्तों से विवाह के मौर (मुकुट), फूलों के गजरे, मालायें तथा पान के बीड़े बनाकर बेचते हैं, काछी अपनी बाड़ियों में साग–भाजी तथा फलदार वृक्ष लगाकर ग्रामीणों की मांग पूरी करते हैं और बाहर भी भेजते हैं। बढ़ई खेती के उपकरण हल, बखर, बैलगाड़ी तथा अन्य लकड़ी का सामान बनाकर कृषि कार्य में सहायक बनता है। लुहार लोहे के औजार हसिया, हल का फाल, कुल्हाड़ी, गंडासा आदि बनाता है तो सुनार सोने चाँदी, कांसे, गिलट के आभूषण बनाकर देता है। ठठेरे पीतल के वर्तनों की मांग पूरी करते हैं। कड़ेरा रूई धुनकर, नाई बाल काटकर और विवाह आदि कार्यो में किसानों का काम करके पारिश्रमिक पाता है। कोरी कपड़ा बुनता , तेली तेल पेरता और मोची जूते सींता–गांठता है। रंगरेज कपड़ों की रंगाई छपाई करके धंधा करता है। गड़रिया भेड़ बकरियों को पालता और उनकी ऊन निकालकर देशी मोटे कम्बल बनाता है। अन्य उद्योगों में केवट, धोबी, भाट, खटीक, भरभूजा, कहार, गुसांई और योगी जातियां हैं। काल, गोंड, सहरिया नामक जातियां, ताड़, खजूर की चटाइयाँ, झाडू, पंखा, डलियाँ आदि बनाकर पेट पालते हैं। अपराधी जातियों में नट, कंजड़ और बेड़िया हैं जो झाँसी जिले में बहुत हैं। झाँसी और ललितपुर के सनौढिया अथवा उठाईगीरे कुख्यात हैं। खंगार, बेड़नी और सौर भी हैं। अन्य शूद्र, जातियों में आरख, खंगार, दांगी, सेजबारी, बलरिया, दौवा, डुमार, चडोर, गुरंदा, कलार, खाती आदि हैं। मुसलमान जातियों में धूनियां, शेख , बेहना हैं, पठान कम हैं ।

इस प्रकार यहां के निवासी उद्योग धंधों, कृषि कार्य, मजदूरी, नौकरी आदि विभिन्न व्यवसायों में लगे हुये हैं। यहां की हिन्दू जातियों में कई विदेशी जातियां, यूनानी, पार्थी, शक, कुशाण आदि विलीन हो गई । यहां के हिन्दुओं ने मलेच्छों (तुर्कों) को वहिष्कृत किया, जो उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाते थे। अलबरूनी ने लिखा है–

"हिन्दुओं के पूर्वज उतने संकीर्ण विचार के नहीं थे जितने कि वर्तमान पीढ़ी के हैं।"[1]

प्राचीन वर्णाश्रम धर्म की व्यवसाय परम्परा बहुत समय पूर्व से ही लुप्त हो गई थी। पराशर स्मृति से विदित होता है कि बहुत से ब्राह्मण तथा क्षत्रिय खेती करने लग गये थे। "सचमुच प्राचीन युग में जहां केवल वैश्य ही कृषक थे यहाँ मध्य युग में वैश्य कृषि कार्य से एकमात्र विरत हो गये और शूद्रों के साथ ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने इसे हस्तगत कर लिया और वे ही आज प्रमुख कृषक हैं।[2]

लोग साधारणतः सीधे–सादे हैं। पूँजीपति, साहूकार रईस आदि उनके श्रम का शोषण रकते रहते हैं। खेती कम होने से निर्धनता अधिक हैं, अधिकांश ग्रामीण मजदूरी कर पेट पालते हैं। कहीं–कहीं तो लोग अर्द्धनग्न और अधभूखे रहते हैं। लोग अधिकतर सेना और पुलिस में भरती होकर राष्ट्र की सेवा कर रहे हैं। अपने पूर्वजों की यश गाथायें आज भी उनका मस्तक गर्वोन्नत किये हैं परन्तु भयंकर गरीबी का अभिशाप उन पर बुरी तरह छाया हुआ है।

रहन–सहन

यहाँ का पहनावा साधारण है। बड़े बूढ़े लोग आधी बाहों वाली बंडी फतुही पहनते हैं, कंधे पर पिछौरा, सिर पर अंगोछा। राज दरबार में जाने की पोशाक– अंगरखा मिरजाई पांव में सराई और सिर पर पगड़ी धारण करने का रिवाज था। वीर बुन्देलों का सैनिक वेश बड़ा आकर्षक तथा प्रभावशाली था। वे कमर में कटार, हाथ में गेंड़ा की ढाल धारण कर अंग में सुरसी का बागा (अंगरखा

---

1. अलबरूनी का भारत – अनु० (संतराव), पृष्ठ 201

2. हिस्ट्री ऑफ हिन्दू मेडिकल इंडिया भाग–2, पृष्ठ 182

या अंगरक्षक) ओर सिर पर निमोक्ता पाग से विभूषित हो रण यात्रा पर प्रस्थान करते थे। एक लोकगीत में यह बात कही गई है–

कहां धरी है करहा कटरिया, कहां धरी गेंडा की ढाल।

कौनन टगी– टगी करहा कटरिया, धुल्लन टंगी गेंडा की ढाल।।

कहां धरो सुरसी को बागौ, कहां निरमौला पाग।

जामधाने में धरो सुरसी को बागौ, ऊपर धरी निरमौला पाग।।[1]

वीर बुन्देले जीते जी आत्म समर्पण करना लज्जाजनक मानते थे। रणक्षेत्र में जूझ कर प्राणों की बलि चढ़ाना उनके बायें हाथ का खेल था । राजपूत वीरांगनायें सतीत्व पर ऑच आती देखकर शत्रुओं के हाथ में न पड़कर जौहर करना श्रेष्ठ समझती थीं और हंसते हंसते चिताग्नि में भस्म हो जाती थीं। ऐसी घटनाओं का संकेत गीतों में मिलता है।

भारी फौजें आन गिरीं, नैन भगना होय तो भाग लियो

भगत न लियो पहार।

हाथ काऊ कों पकराइयो नहीं, नहिं लग जे है

कुल को दाग ।।[2]

बुन्देले राजपूतों की आर्थिक दशा आजकल शोचनीय है। वे निर्धनता तथा ऋण के भार से दबे हैं, फिर भी उनकी रंगों में अपने पूर्वजों के शौर्य का रक्त आज भी बह रहा है। आज भी वीर बुन्देला खाली म्यान वाली तलवार, ढाल और मध्ययुगीन अस्त्र–शस्त्र धारण करने में गौरव का अनुभव करता है। वह जंगली पशुओं शेर, चीता, लकड़बग्घा, नीलगाय, जंगली सुअर और मृगों के शिकार का बड़ा शौकीन है।

गरीबी का चित्रण एक बुन्देली लोकोक्ति में कितना सुन्दर मिलता है–

ऐंठ दतिया में, पैठ दतिया में

विरचन[3] घोर खायें पथरौटिया में।[4]

दतिया के लोगों में भारी अकड़ है, वहाँ पैठ (हाट, बाजार) भी लगते हैं, परन्तु गरीबी इतनी अधिक है कि विरचन (बेर का कूटा हुआ चूर्ण) पथरौटिया (पत्थर की बड़ी प्याली) में

---

1. बुन्देली लोकगीत भाग 2 (निजी संग्रह) अप्रकाशित, पृष्ठ 336, क्र0 143

2. बुन्देली लोकगीत भाग 2 (निजी संग्रह) अप्रकाशित, पृष्ठ 336, क्र0 143

3. बेर का कुटा हुआ चूर्ण।

4. बुन्देली कहावतें तथा पहेलियाँ पृष्ठ 46, क्र 261

घोलकर खाते हैं। स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन उन्हें नहीं मिलता। रियासती सैनिकों की जीर्ण–शीर्ण दशा का ज्ञान इस लोकोक्ति से हो जाता है–

फटी पन्हैया, टूटे म्यान।

जे देखो, दतिया के ज्वान ।।

कुछ भी हो बुन्देली जनता के कानों में पुराने वीर गीत अभी भी गूंज रहे हैं, जब वह गाने लगता है–

सदा न फूले तोरई, सदा न सावन होय।

सदा न राजा रन चढ़ै, सदा न जीवन होय।।

'अमान सिंह को राछरौ' की ये प्रारम्भिक पंक्तियां आज भी बुन्देलखण्ड के नरसिंहों को नवीन प्रेरणा दे रही हैं।

यहां की स्त्रियों की वेश–भूषा कम आकर्षक नहीं हैं।स्त्रियां लंहगा–लुंगरा पहनती हैं,अब धोती साड़ी का चलन बढ़ चला है। साधारण घर की स्त्रियां हिरमिजी या लाल रंग की धोती का कछोटा मारे हुये काम करती हैं। आभूषणों में वे गले में चांदी की खंगोरिया, हमेल, मूंगा की कंठियां, लल्लरी, बिचौली, तबिजिया, कंठाहार आदि पहनती हैं। हाथों में खग्गा, बरा, ककना, दोहरी, चूरा, बेंगुआ, कांच और चांदी की चूड़ियां उंगलियों में अंगूठी, कानों में कर्णफूल, तहकियां, बालियां, झुमके, बाहों में बिजुल्ला, बाजूबन्द, सिर पर शीशफूल, बीज, सांकर आदि पहनती हैं। कमर में करधौनी, पैरों में बिछुआ, अनौटा, सांकर, छल्ली, मोरवार, बिछिया धारण करतीं हैं। पैरों में भारी–भारी कड़े, गूजरी और पेंजना पहने जाते हैं, जो कभी–कभी 2500 ग्राम बजन तक के होते हैं। स्त्रियां दातों में सोने की कीलें जड़वाती हैं और दातों को मिस्सी लगाकर सजाती हैं। हाथ पांव और ठुड्डी पर गुदना गुदवाती हैं। राजघराने की स्त्रियां तीनखाप (कीमखाव) का रेशमी लंहगा, रेशमी ओढ़नी, रंगीन पिछौरा, अलंकारों में गले में सोने की लल्लरी तिदान्नो या ठुसी, हाथों में सोने के पटेला या चूरा और पैरों में टीकमगढी पैजना पहनती हैं।

प्रातःकाल ही बुन्देली स्त्रियाँ कुआ, बावड़ी पर जल भरने चल देती हैं। उस समय का मनोरम दृश्य एक गीत में अंकित किया गया है:–

डिवीजन रेल का निराला।

किला बना बुन्देलखण्ड वाला।

किले के नीचे हैं पचकुइयां।

जाती जल भरने को गुइयां।

भोर जब नभ में रह तरइयां।

छोड़कर प्रीतम की गलवइयां।

एक से एक चन्द्र सी मुइयां।

बोली बोलें मैना, टुइयां।

गूजरी पायजेब है पइयां।

माथे पै बेंदा सरकइयां।

पास है देवी का निवाला।

शहर झांसी है जहां आला।[1]

इस गीत में बुन्देली रमणीकी वेश–भूषा, उसके रूप सौंदर्य एवं उसके वाणी माधुर्य का संश्लिष्ट चित्र खिंचकर नेत्रों के सामने आ जाता है।

रीति रिवाज एवं धार्मिक भावनाएं

यहां बाल विवाह की अधिक प्रथा है। 9वीं एवं 11वीं सदी के बीच बाल–विवाह प्रचलित हो गया था। पराशर स्मृति में कन्या के विवाह के लिये आठ वर्ष की अवस्था का विधान किया गया है।[2] मुसलमानों द्वारा बालिकाओं के अपहरण की घटनाओं एवं भिक्षुणियां बनने देने से वाल्यावस्था में ही विवाह किया जाने लगा। इसलिये कन्याओं का जन्म अभिशाप रूप माना जाने लगा, फलतः कन्या वध का प्रचलन बढ़ा। मध्य युग में स्त्रियों को उतनी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी, जितनी आज है फिर भी बुन्देलखण्ड में परदे का रिवाज अधिक है। दहेज प्रथा भी चालू है, यहाँ के हिन्दू मुसलमान

---

1. बुन्देली लोकगीत भाग 3 (निजी संग्रह) अप्रकाशित, पृष्ठ 620, क्र0 108 ।

2. अष्टवर्षामुद्वहते (अप्रकाशित)

आपस में मैत्रीपूर्ण/एकता से रहते हैं और एक दूसरे के धर्मोत्सवों को मिलजुल कर मनाते हैं। मुसलमान स्त्रियां भी अठवाई, नारियल से देवी की पूजा करती हैं। लोगों में अंधविश्वास मूलक प्रवृतियां घर किये हुये हैं। वे प्रत्येक बीमारी को देवी–देवताओं का प्रकोप समझ कर देवी–देवताओं की मान्यता करते हैं। साधू, सन्यासी, पीर, मौलवी, औलिया और सिद्ध पुरूषों की दुआ और भभूत (भस्म) में संतान प्रदायनी शक्ति मानते हैं। सवर्ण हिन्दुओं में स्त्री का विवाह एक बार ही होता हैं। पति की मृत्यु होने पर पुनर्विवाह का कोई विधान नहीं हैं विधवा को अपशकुन सूचक माना जाता है। पुरूष, स्त्री की मृत्यु होने पर दूसरा विवाह कर सकता है। निम्न जाति में बहुपत्नीत्व का रिवाज है। उनके यहां स्त्रियां भी एक पति को तलाक देकर दूसरा वरण कर लेती हैं। स्त्रियां घरीचा कर लेती हैं और विधिपूर्वक विवाह सम्पन्न होने की आवश्यकता नहीं रहती।

बुन्देलखण्ड के स्त्री–पुरूष धर्मपरायण हैं। घर पर तुलसी घेरा बने हुये हैं। लोग विशेष पर्वों पर नर्मदा स्नान करते हैं। अधिकांश लोग शक्ति उपासक हैं। भारतीय संस्कृति में परम शक्ति के दोनों ही रूप माने गये हैं। ऋग्वेद में पुरूष रूप माना गया है तो उसी के बागाम्भणी सूक्त में उस परम शक्ति को नारी रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। विद्वानों ने इसीलिये पुरुष प्रकृति, ईश्वर माया, माता–पिता आदि संज्ञाओं के रूप में उस परम शक्ति को माना है। शक्ति पूजा का मूल स्त्रोत प्राग–ऐतिहासिक है। यह वैदिक धर्म से भी पुराना है। मध्य एशिया, असीरिया और सिंध घाटी में सभी जगह मातृ शक्ति की महत्ता प्रस्थापित की गई। शाक्तों का धर्म स्थल कामाख्या पर्वत बना रहा। आज भी बुन्देल खण्ड में घर–घर में देवी माता की पूजा प्रमुख स्थान रखती है। कोई बीमार दुःखी होने पर स्त्रियां घर से देवी की मढ़िया तक सरैं भरती हुई जाती हैं। लोग नवदुर्गा में शतचंडी, सहस्त्रचंडी का पाठ करते कराते हैं। रामायण, महाभारत, भागवत में विशेष आस्था रखते हैं। चारों धाम बद्री नारायण, जगन्नाथपुरी, द्वारकापुरी और रामेश्वरम् की यात्रा करते हैं।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र ही क्या लगभग समस्त भारत प्रवृति धर्म से प्रभावित है। बुन्देलखण्ड का धार्मिक इतिहास धर्म की विभिन्नताओं से भरा हुआ है। यहां लोगों की धर्म भावना, भूतवाद, वहुदेववाद, एकेश्वरवाद और सर्वेश्वरवाद तक विकसित हुई। एक ओर तो लोकजीवन में धर्म की दार्शनिकता को अपनाकर जीवन के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित किया, दूसरी ओर आध्यात्मिकता की भावना का उदय हुआ। वैदिक कर्मकाण्ड में दोष आने लगे और धर्म की कट्टरता बढ़ने लगी, तब आचार और नैतिकता की प्रधानता लेकर नये विचार प्रादुर्भूत हुये। पौराणिक धर्म की

प्रतिष्ठा बढ़ गई और ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, गणेश, देवी–देवताओं की पूजा होने लगी तथा अवतारवाद की प्रतिष्ठा सारे जनमानस पर छा गई।

इस प्रकार यहां मूर्ति के साकार रूप में राम, लक्ष्मण, सीता, शिव, हनुमान, देवी आदि की पूजा होने लगी। साथ ही सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित मृतात्माओं की पूजा देवी–देवताओं में प्रतिष्ठित हुई है। दूल्हा देव और हरदौल की पूजा विवाह के अवसर पर की जाती है। बुन्देल बाबा भी पूजे जाते हैं। अनाज देवता, मिड़ोहिया खेत की मेंड़ के देवता हैं। पौरिया बाबा की पूजा राजपूत योद्धा की स्मृति के रूप में होती है। यहां लोग कई देवों के उपासक हैं। अघोरी, वाममार्गी, नाथपंथी, कबीरपंथी, नानकपंथी, धामी, सतमुन, जैन, सनातनधर्मी, वैष्णव, बल्लभ, सम्प्रदायी, हरदौल के पूजक, पांचों वीर के उपासक आदि विभिन्न धर्मावलम्बी हैं। तीर्थ, मन्दिरों, नदियों, पर्वतों आदि पुण्य स्थानों के दर्शन आदि से मोक्ष साधन माना जाता है। बुन्देलखण्ड में खजुराहो में तीस मन्दिर बने हुये हैं। चित्रकूट में कामतानाथ या कामदगिरि, संघर्षण पर्वत पर सीता रसोई और हनुमानधारा है। स्फटिकशिला है जहां जयन्त ने सीता जी को चोंच मारी थी। भरत कूप, गुप्तगोदावरी आदि तीर्थ स्थल हैं। सोनागिरि में जैन मन्दिर निर्मित है। यहाँ के लोग पत्थरों, पेड़ों, नदियों एवं पहाड़ों को दैव रूप मानकर उनकी पूजा करते हैं। विंध्याचल पर्वत को पुराणों में समस्त पर्वतों का मान्य माना गया है और उसकी गणना सात कुल पर्वतों में की गई है।

मेहेन्दो मलयः साम्य–शक्तिमान ऋक्षवानपि,
विंध्यश्च, परियात्रश्च, सप्तैते कुल पर्वतः।[1]

यह सम्पूर्ण पुण्यभूमि लोगों की धार्मिक आस्थाओं का इतिहास प्रस्तुत करती हैं। यहां के लोगों का अटल विश्वास है कि "सुकृतियां दूसरे जन्म में सहायता देती हैं"[2]। विधर्मियों ने इस भूमि के धार्मिक स्थलों, मंदिरों, देवों की मूर्तियों को नष्ट भृष्ट करने में कसर नहीं छोड़ी है फिर भी आज की खंडित मूर्तियां एवं मन्दिरों के ध्वंसावशेष बुन्देलियों की धर्मप्रियता के साक्षी रहे हैं। विदेशी आक्रान्ता मंदिरों में सुरक्षित हस्तलिखित धर्म ग्रन्थों को या तो नष्ट भ्रष्ट कर गये अथवा अपने साथ ले गये हैं। यवन शासकों ने महत्वपूर्ण ग्रन्थों को जला डाला और मंदिरों को धराशायी किया, फिर भी वे इस्लाम धर्म का विशेष प्रचार न कर सके।यह ध्रुव सत्य है कि लोगों के जन–मन में धार्मिक भावनायें

---

1. महाभारत भ0 प0 अध्याय 9, श्लोक 11

2. प्रायः सुकृतिनामर्थे देवामान्ति सहायताम्– प्रबोध चन्द्रोदाय, पृ0 141 ।

बहुत गहरी जड़ें जमा चुकी हैं, जिनका उन्मूलन सहज सम्भव नहीं। सरल मानव की धार्मिकता उनके लौकिक और परलौकिक जीवन में छा गई है, जिससे उन्हें जीने का दृढ़ आधार मिला है।

भूमि और जन का भाषा पर प्रभाव

बुन्देलखण्ड की भाषा का नाम बुन्देली दिया गया है। सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने यहां की बोली के लिये 'बुन्देलखण्डी' नाम का प्रयोग किया है जबकि सन् 1843 ई० में मेजर आर० लीच० सी०बी० (Major R. Leech, C.B.) ने इसे बुन्देलखण्ड की हिन्दुवी बोली (Hinduvee dialect of Bundelkhand) कहा है[1]। बुन्देलखण्डी शब्द स्थानवाची होने पर भी कर्णप्रिय है, पर संक्षिप्त रूप 'बुन्देली' शब्द अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है और विद्वान बुन्देली बोली या भाषा के नाम का प्रयोग करते हैं।

विंध्याचल की श्रेंणियां मीलों लम्बी होकर सारे प्रदेश को घेरे हुये हैं। गहन वन में निवास करने वाली आदिवासियों की बोली बुन्देली से भिन्न है। यहां का साधारण कृषक बड़ा भोला–भाला है। जैसा यहां का ग्रामीण का सरल स्वभाव है, वैसी ही यहां की बोली भी मधुर और सरल है। शब्दों के उच्चारण में तनिक भी श्रम नहीं करना पड़ता है।

प्राकृतिक रमणीक दृश्यों की बहुलता होने से काव्य प्रेरणा के श्रोत रहे हैं। कवि और लेखकों ने विंध्य की प्राकृतिक सुषमा पर सशक्त लेखनी चलाई है। जंगल से भेड़ बकरी चराते हुये गड़रिये अपनी सुरीली तान से वन को गुंजायमान करते हैं। माधुर्य भाव की प्रधान श्रंगार रस पूर्ण भाषा में कन्हैया, विरहा, फाग गाते हुये कृषक अनित्य संसार में सरलता ला देते हैं। एक नमूना देखिये–

मोहि लये भरमाई लये, राधा ने कन्हैया मोहि लये।
ताती जलेवी दूध के लाडू जेवन में जादू डार गये।।
'राधा ने कन्हैया मोहि लये।[2]

जब इस होली गीत को स्त्रियाँ मिलकर समवेत स्वर में गाती हैं तो सहज सौंदर्य और कोमलता का सागर उमड़ पड़ता है।

---

1. J.A.S.B. Val XII-'A Hinduvee dialect of Bundelkhand'

2. बुन्देली लोकगीत भाग–2, पृ0 402 (3) क्र 348 ।

वीरों की क्रीडा स्थली होने से उत्साह भाव की कमी नहीं। अनेक कवियों ने इस प्रदेश के वीर विभूतियों के यशोगान में वीर—गाथात्मक प्रबन्ध काव्यों का निर्माण किया है। वीर रस पूर्ण काव्य में प्रायः संयुक्त व्यंजनों एवं ट वर्ग की प्रधानता रहती है परन्तु लोक कवि ने उत्साह व्यंजक पदों में द्वित्व शब्द बहुत कम मात्रा में अपनाये हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि रस व्यंजना में परिपक्वता न आई हो। वीर एवं श्रंगार दोनों रसों का परिपाक पूर्ण रूप से हुआ है। वीर व्यंजक भाषा का उदाहरण देखिये जिसमें पुरुषावृत्ति का प्रयोग हुआ है। आज गुण सहज ही आ गया है—

तोपन के कुदुआ लगे, मूंडन के लगे पहार।
बसती लड़े इड़ियन,छिड़ियन, मंगादा लड़े मैदान।
मारत—मारत भुज्जें रै गई, ललकारत गई भांस।[1]

'प्रसाद' बुन्देली लोक भाषा का स्वाभाविक गुण है। शब्द उच्चारण में दुरूहता नहीं पाई जाती। बुन्देली के सहज बोधगम्य शब्द हृदय को सीधा स्पर्श करने वाले हैं। लोक भाषा वैसे ही सहज सरल होती है,क्योंकि उसमें व्याकरण के नियमों का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता जिसमें शब्दों के तत्सम रूपों के उच्चारण में मुखजिह्वा को अधिक श्रम करना पड़े। तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग आता है।

प्रदेश के सुदूर कोनों में आवागमन के साधन सीमित होने एवं घोर दरिद्रता तथा अशिक्षा की बाधा होने से यहाँ के लोग नागरिक सभ्यता से दूर जा पड़े हैं। बुन्देलखण्ड में बड़े—2 शहर बहुत कम हैं। संस्कृति, भाषा और साहित्य तथा जाति की दृष्टि से पूर्व में केन से लेकर मध्य में वेतवा और सिंध, पश्चिम में चम्बल तथा इनकी सहायक नदियों से यह प्रान्त विभाजित होता है। इधर दक्षिणी भू—भागों में पूर्वोत्तर तक पर्वतों का समूह फैला है। इस कारण यहां की सभ्यता संकुचित रह गई है। नगरों से निकट सम्पर्क न रहने के कारण लोक भाषा या बोली में स्वाभाविकता पाई जाती है। शहरी वातावरण की कृत्रिमता, भाषा की बाग्विदग्धता का अभाव पाया जाता है। बड़े नगरों से वहिष्कृत से रहकर लोक भाषा विशुद्ध बुन्देली है, जिसमें देशी, विदेशी भाषाओं का सम्मिश्रण या खिचड़ी नहीं है। यहां की सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक अवस्था सुखद नहीं है। इस प्रदेश में शिक्षा प्रसार एवं उद्योग धंधों की वृद्धि की अधिक आवश्यकता है, तभी इस भूमि की उन्नति सम्भव है।

भिण्ड, मुरैना जिलों की बोली में अधिक लोच नहीं है। उनकी वाणी में शरीर से सुपुष्ट एवं शक्तिशाली होने के कारण अधिकारिक आदेशों का शब्द समूह सहज ही पाया जाता है।

---

1. बुन्देली लोकगीत (अप्रकाशित) निजी संग्रह पृ0 337 (81) क्र0 143 ।

यही कारण है कि उक्त क्षेत्रवासियों को अपना अपमान सहन नहीं और तनिक सी बात पर तलवारें खिंच जाती है और लोग प्राणों का मोह भूल जाते हैं। सेना और पुलिस में भर्ती होकर देश सेवा करना उन्हें अधिक प्रिय है। लोग संघर्षप्रिय होने के कारण कोमल वृत्ति से उनका परिचय नहीं। लोग डाके और राहजनी करने लगते हैं जिससे जनसाधारण की जानमाल की रक्षा की आशंका प्रतिक्षण बनी रहती है। डाकू उन्मूलन हेतु शासन की चेष्टा के बाबजूद डाकू समस्या हल नहीं हो सकी है। इसकी भूमिका में अन्य आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक कारण हो सकते हैं, परन्तु प्रमुख कारण यहाँ की वीरप्रसू भूमि का प्रभाव माना जाता है जो उनके ऊष्ण रक्त को उबाल देने में सहायक रही है। परिश्रमी जीवन की कठोरता ने लोगों की वाणी में ओज प्रदान किया है। क्षेत्रीय बोली में पुरुषावृत्ति अधिक पाई जाती है। उदाहरणार्थ 'बे कहा कहात' (वे क्या कहते हैं) वाक्य में शब्द के मध्य अथवा अन्त्य वर्ण के उच्चारण पर बालाघात होता है, जबकि झाँसी, जालौन आदि स्थानों में इसे 'बे का कात' बोलेंगे। इसी प्रकार यहां द्वित्व वर्णो का प्रयोग अधिक होता है। उदाहरण के लिये– तरकारी में हद्द डाद्देव, जासें जद्द पीरी हो जाई अर्थात तरकारी (शाक भाजी) में हल्दी डाल दो जिससे जर्द पीरी हो जावे। वाक्यावली में ट वर्ग, रेफ तथा संयुक्त वर्ण अधिक बोले जाते हैं। इसके विपरीत झाँसी, ओरछा, सागर आदि स्थानों की बोली मधुर एवं श्रुतिप्रिय रही है, जो वहां की कोमल भावनाओं की परिचायक है। उदाहरण के लिये– 'तुम बोलत काइ नइयां'। वाक्य माधुर्यगुण युक्त तथा सानुनासिकता लिये है। इसे उपनागरिकता वृत्ति कहा जा सकता है।

इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भूमि विशेष की प्राकृतिक स्थिति, जलवायु, उपज तथा रहन सहन आदि का प्रभाव वहां के निवासियों पर पड़ता है और तदनुरूप लोगों की बोलचाल में अंतर आ जाता है। भाषा की अभिव्यक्ति में शारीरिक बनावट, भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का पूर्ण प्रभाव रहता है। यही कारण है कि एक प्राणी की भाषा से दूसरे की भाषा में विशेष अन्तर पाया जाता है। फिर भी स्थान विशेष के लोगों की बोली में भिन्नता होते हुये भी ध्वनि–साम्य अवश्य पाया जाता है। विशेष समुदाय एवं व्यवसाय के लोग अपनी नवीन सांकेतिक भाषा गढ़ लेते हैं– जैसे नट, जोगी, आदि सिपाही को कैला, राजा को गिरइया और लकड़ी को खिल्टी कहते हैं। सुनार 'पीतल' के लिये 'कूट' बोलते हैं। सांसी 'दो' के लिये 'घोर' कहते हैं। अन्य देशों में भी ऐसी गुप्त भाषायें बना ली गई हैं।

(II) बुन्देलखण्ड का मध्यकालीन इतिहास

(Genealogy of Chandelas)

1. अब्दुल क्यूम मदनी ''बु0 का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास'',निर्दे0 डा0 एस0एम0एल0 श्रीवास्तव (इतिहास), डी0वी0सी0,उरई।

(Genealogy of Bundelas)

वंशावली
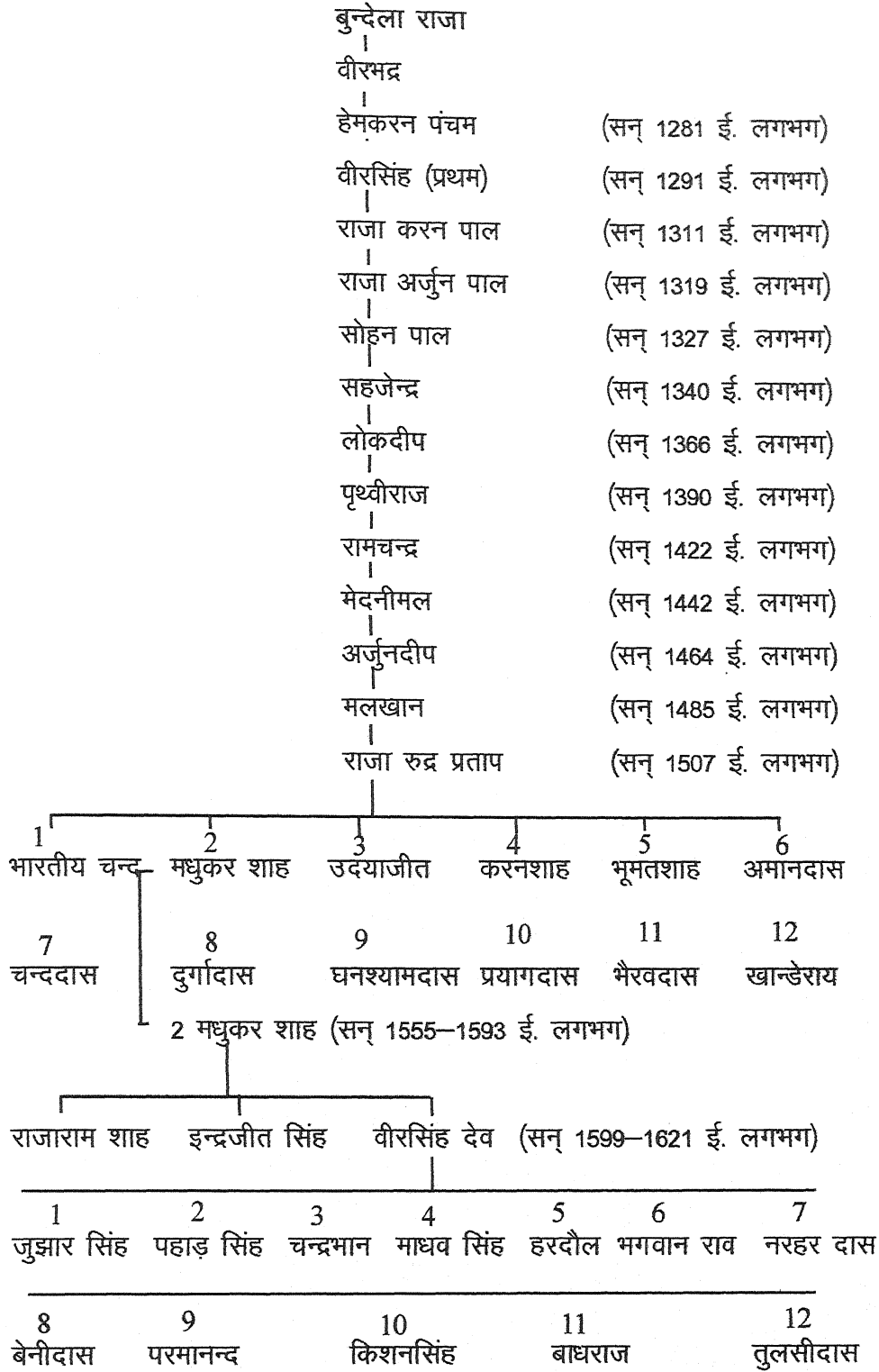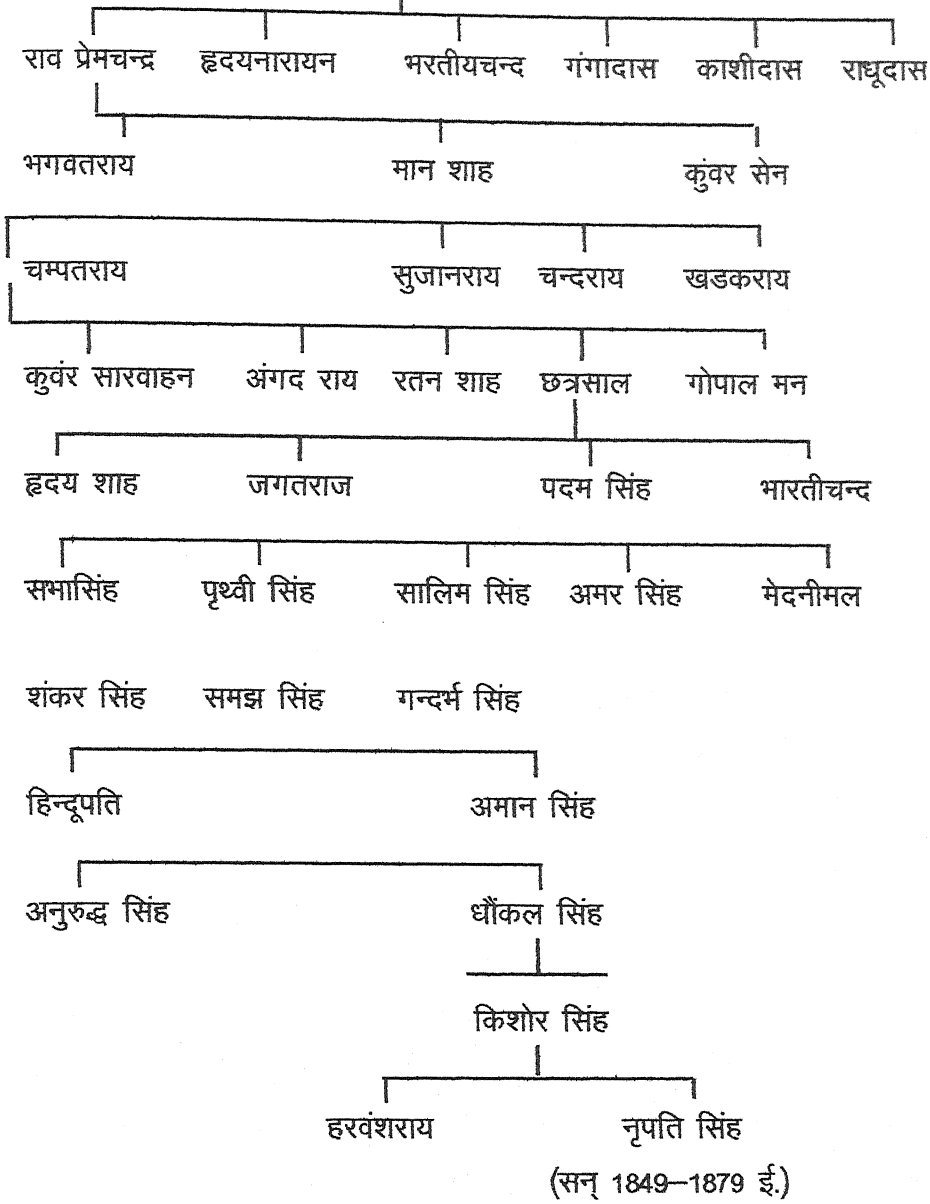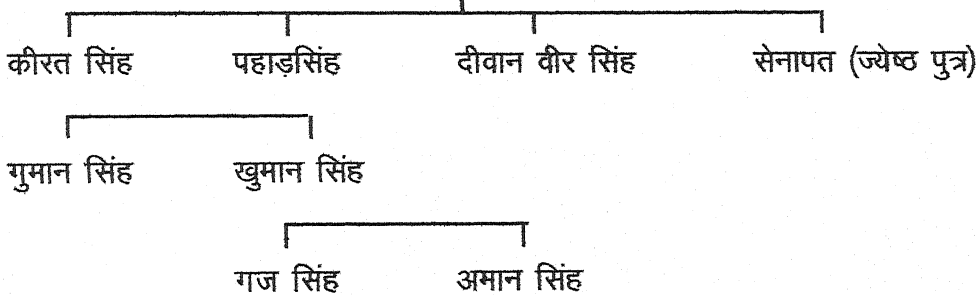
बुन्देला राजा
|
वीरभद्र
|
हेमकरन पंचम (सन् 1281 ई. लगभग)
|
वीरसिंह (प्रथम) (सन् 1291 ई. लगभग)
|
राजा करन पाल (सन् 1311 ई. लगभग)
|
राजा अर्जुन पाल (सन् 1319 ई. लगभग)
|
सोहन पाल (सन् 1327 ई. लगभग)
|
सहजेन्द्र (सन् 1340 ई. लगभग)
|
लोकदीप (सन् 1366 ई. लगभग)
|
पृथ्वीराज (सन् 1390 ई. लगभग)
|
रामचन्द्र (सन् 1422 ई. लगभग)
|
मेदनीमल (सन् 1442 ई. लगभग)
|
अर्जुनदीप (सन् 1464 ई. लगभग)
|
मलखान (सन् 1485 ई. लगभग)
|
राजा रुद्र प्रताप (सन् 1507 ई. लगभग)

1	2	3	4	5	6
भारतीय चन्द	मधुकर शाह	उदयाजीत	करनशाह	भूमतशाह	अमानदास
7	8	9	10	11	12
चन्ददास	दुर्गादास	घनश्यामदास	प्रयागदास	भैरवदास	खान्डेराय

2 मधुकर शाह (सन् 1555—1593 ई. लगभग)

राजाराम शाह — इन्द्रजीत सिंह — वीरसिंह देव (सन् 1599—1621 ई. लगभग)

1	2	3	4	5	6	7
जुझार सिंह	पहाड़ सिंह	चन्द्रभान	माधव सिंह	हरदौल	भगवान राव	नरहर दास

8	9	10	11	12
बेनीदास	परमानन्द	किशनसिंह	बाधराज	तुलसीदास

1. अब्दुल क्यूम मदनी ''बु0 का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास'',निर्दे0 डा0 एस0एम0एल0 श्रीवास्तव (इतिहास), डी0वी0सी0,उरई।

बुन्देलखण्ड का मध्यकालीन इतिहास एक उत्कृष्ट एवं उच्चकोटि का है। विश्व में बहुत से इतिहास हैं जिनका वर्णन विभिन्न पुस्तकों में, शिला लेखों में, धार्मिक ग्रन्थों में तथा पुराणों और शास्त्रों में, वेदों और उपनिषदों में मिलता है परन्तु बुन्देलखण्ड का इतिहास एक अनौखा, अतुलनीय, और अनुपमीय है जिसका कि सम्बन्ध अन्य इतिहासों से है।

जब से सृष्टि का सृजन हुआ, पृथ्वी ने अपना बर्चस्व कायम किया, अम्बर ने सारे विश्व में वर्चस्व जमाया, वनस्पतियों ने अपनी विधाओं के द्वारा प्रकृति को रंगीन बनाया, चाँद और सितारों ने रात्रि को सजाया, सूर्य ने दिन को प्रकाशित किया, ऊषाकाल और संध्याकाल का निर्माण हुआ जिसका कि सम्बन्ध मनुष्य के कृत्य और कर्मो से है, प्रकृति में विभिन्न प्रकार के अंग जैसे पहाड़, झीलें, नदियां, घाटियां, पठार, गुफायें, पर्वत श्रंखलायें, पर्वत चोटियों आदि ने अपने वर्चस्व को प्रदर्शित कर संसार में अपने साम्राज्य को स्थापित किया।

भारत अपनी आर्य संस्कृति और सभ्यता के लिये विश्व को आलोकित करता रहा है। भारत विश्व के देशों के समक्ष अपना सिर ऊँचा कर चुका है। इसलिये नहीं कि वह धन धान्य से सम्पन्न है या तकनीकी दृष्टि से ऊँचा और विशाल है वरन उसके पास प्राचीन संस्कृति और आध यात्मिक धरोहर है जोकि विश्वभर में किसी भी देश के पास नहीं है। मिश्र के पिरामिड, चीन की दीवार, मेसापोटामियाँ, वेवीलोंन (ददला फराद की संस्कृति और सभ्यता) उससे अधिक पुरानी भारत की संस्कृति हजारों वर्षों से अविरल और अमरधारा के रूप में बह रही है।

"बुन्देलखण्ड भारत वर्ष का हृदय है तथा इसने अपनी भावनात्मक एकता तथा वैभवशाली गाथाओं से भारत को गौरवान्वित किया। गौरवशाली बुन्देलखण्ड अपनी वीरता, पराक्रम, शौर्यकला, तपस्या, साधना, संस्कृति, सभ्यता, लोकरीतियां, लोककथायें, लोकआचरण एवं लोक–परम्पराओं के कारण विश्वविख्यात हैं।"[1]

"बुन्देलखण्ड भारत का भू–भाग है इसे मध्यस्थ होने का गर्व प्राप्त है। मोटे तौर से भारत की दो पवित्र नदियों गंगा और यमुना की घाटियों के बीच सेतु स्वरूप है। यह क्षेत्र आद्यैतिहासिक काल से ही नहीं अपितु प्रागैतिहासिक काल में भी मानव की क्रीडा स्थली रही है। झाँसी

---

1. श्री मोतीलाल त्रिपाठी "अशान्त", खजुराहो दर्शन", पेज सं0 21, लक्ष्मी प्रकाशन, झाँसी।

सम्भाग के ललितपुर जिले के उत्खनन से प्राप्त पुरा–पाषाण काल के मुष्ठीकुठार तथा उत्पादक इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।"[1]

बुन्देल खण्ड का इतिहास ऐतिहासिक घटनाओं, परम्पराओं व सांस्कृतिक योजनाओं के कारण मस्तिष्क को उच्च शिखर पर आसीन किये हुये है। बुन्देलखण्ड का संगीत, राग, सुर, ताल, कला भी अनौखी और अनूठी है। बुन्देलखण्ड का प्राचीन नाम दशार्ण रहा है। पुराणों में लिखा है– वैदिक काल से यह देश, जहाँ बुन्देलखण्ड है, ऊषर पुनीत कहा गया है जिसमें तुंगारण्य से लेकर कालिंजर एवं दशार्ण देश सम्मिलित हैं।

रेणुकः शूकरः काशी कालीकाल बटेश्वरी।
कालिंजरः महाकाल ऊषर नव मोक्षदाः।।[2]

बुन्देलखण्ड का नाम विन्ध्य इलाखण्ड है। उसका यह नाम विंध्याचल की तराई में बसने के कारण पड़ा है। ईशा से पूर्व कात्यानन, कौटिल्य तथा कालिदास आदि ने दशार्ण शब्द का उल्लेख किया है। पुराणकारों ने विंध्याचल के महत्व का वर्णन किया है जिसकी महानता श्रेष्ठ और पवित्र है। यह पर्वत पूज्यनीय तथा पवित्रता की दृष्टि से श्रेष्ठ एवं उच्चकोटि का माना जाता है। इस पर्वत का महत्व विभिन्न प्रकार के धार्मिक ग्रन्थों में और प्रकृति पूजक पुस्तकों में भी मिलता है। इसकी गणना सात कुल पर्वतों में भी की गई है।

'मेहन्द्रो भलयः सह्यः शक्तिमान ऋक्षवानपि।
विन्ध्याश्च पारिया त्रश्च सप्तै ते कुल पर्वतः।।[3]

"पौराणिक काल में इस भूमि का नाम जैजाक भुक्ति और चेदि था। चन्देलों के शौर्य के अस्त होने के पश्चात काशी से सूर्य कुलावन्त शील गहरवार वंशीय क्षत्रियों की एक शाखा ने इस भूमि पर अपना प्रभुत्व कायम किया और गहरवार हेमकरण पंचम ने अपना नाम बुन्देला रखा और इन्हीं की पीढ़ियों द्वारा एक छोटा सा बुन्देला राज्य संवत 1288 विक्रमी के लगभग स्थापित किया गया।"[4]

---

1. श्री मोतीलाल त्रिपाठी "अशान्त", खजुराहो दर्शन", पेज सं0 22, लक्ष्मी प्रकाशन, झाँसी।

2. वही।

3. वही।

4. वही पेज सं0 21।

नवीं शताब्दी के आरम्भ में चन्देल राज्य की स्थापना सर्व प्रथम नन्नुक ने की जो स्वयं प्रतिहारों का सामन्त था। प्रतिहार नरेश नागभट्ट द्वितीय के निधन के पश्चात उसके उत्तराधिकारी रामचन्द्र को अयोग्य और अक्षम समझ कर नन्नुक ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इसके पश्चात उत्तराधिकारी के रूप में उसका पुत्र वाक्पति (850—70 ई) शासक बना। उसके पुत्र जयशक्ति अथवा जेजा के नाम पर इस राज्य का नाम जैजाभुक्ति पड़ा। जयशक्ति का छोटा भाई विजय शक्ति कुछ वर्षो के लिये अधिपति बना और उसके बाद उसके पुत्र राहिल (लगभग 890—910) ने चन्देल शक्ति को संगठित किया।[1]

नन्नुक से लेकर राहिल तक शासन पद्धति में कई प्रकार के उतार—चढ़ाव आये, जिनके कारण से आरोहण और अवरोहण होता रहा। राज्य करने की शासन पद्धति नन्नुक और वाक्पति की न तो प्रशंसनीय और न ही श्रेष्ठ थी परन्तु ऐतिहासिक तत्वों के आधार पर नन्नुक से लेकर वाक्पति तक का शासन काल उत्तरोत्तर और क्रमोत्तर बढ़ता घटता रहा।

हर्षदेव (लगभग 910—30ई0) ने चन्देल सत्ता की जड़ें और भी मजबूत की थीं। उसने प्रतिहारों की गृह कलह में दखल देकर महिपाल को गद्दी पर बिठलाने में सहायता की और चन्देल वंश की प्रतिष्ठा, मान सम्मान और राज्य की शक्ति का प्रचार प्रसार किया। उसका उत्तराधिकारी महत्वाकांक्षी राजा यशोवर्मन (930—50 ई0) था जिसने अनेक राजाओं को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया जिसमें कालिंजर विजय विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। हर्षदेव एक शक्तिशाली तथा श्रेष्ठ चन्देल वंश का शासक था। उनकी रीतियां विभिन्न इतिहासकारों के अनुसार श्रेष्ठ और उच्चकोटि की थीं। इन्होंने अपने जीवन में कई प्रकार के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं राजनीतिक उथल पुथल देखे थे।[2]

अभिलेख से ज्ञात होता है कि कलचुरि राजाओं में गंगदेव और लक्ष्मीकर्ण ने चन्देलों पर आक्रमण करके उनके राज्य का कुछ भाग अपने साम्राज्य में मिला लिया था। इस कारण से चन्देल वंश और कलचुरि वंश में मतभेद और विरोधाभास हो गया था। कलचुरि वंश के राजाओं ने समय अनुसार कई प्रकार के राजनीतिक, सामाजिक और प्राकृतिक उतार—चढ़ाव देखे। डा0 एच0सी0 रे0 के अनुसार 940 ई0 के पूर्व कालिंजर मण्डल पर राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।[3]

---

1. डा0 एस0डी0 त्रिवेदी 'बुनदेलखण्ड का पुरातत्व', पृ0 16, सन्तोष प्रिंटिंग प्रेस, झाँसी।

2. वही।

3. वही।

यशोवर्मन का पुत्र धंग उसका उत्तराधिकारी बना। उसने अपनी शक्ति के द्वारा अपने साम्राज्य का और विस्तारकिया। यशोवर्मन और धंग को अपने शासनकाल में कई प्रकार की प्राकृतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विसंगतियों और अन्य राजाओं की दोषपूर्ण नीतियों तथा आलोचनाओं का भी सामना करना पड़ा था[1]। राजसी पद्धतियों को कई प्रकार की समानताओं और असमानताओं का भी सामना करना पड़ता है। धंग के पुत्र गंड के समय में मुस्लिम आक्रमणों की शुरूआत हो चुकी थी। 1023 ई0 में महमूद ने कालिंजर पर अपनी पताका फैला दी थी और कालिंजर को फतह कर लिया था। बहुत सा धन लूट करके अपने साथ ले गया था।

यशोवर्मन को धंग और गंड के शासनकाल में राजनीतिक विसंगतियों का भी सामना करना पड़ा था परन्तु गंड की असमर्थता के कारण मुस्लिम शासकों ने आक्रमण किया और उसकी छवि को धूमिल कर दिया क्योंकि मुस्लिम शासकों का चन्देलवंश पर आक्रमण करना एक कमजोरी और दुर्बलता को प्रदर्शित करता है। मुस्लिम शासक (महमूद) की नीतियां गंड की नीतियों से बिल्कुल विरोधाभास को प्रदर्शित करती है। चन्देलों के उत्कर्ष काल के राजाओं में कीर्तिवर्मनदेव (लगभग 1060–1100 ई0) तथा मदनवर्मन (लगभग 1125–63 ई0) के नाम उल्लेखनीय हैं[2]। इन दोनों राजाओं ने अपने शासनकाल में चन्देल सत्ता को पुनर्जीवित करने में विशेष प्रयास किये। दोनों राजाओं ने अपने प्रयासों के द्वारा अन्य समकालीन राजाओं पर अपनी सत्ता को स्थापित किया तथा सभी दिशाओं में अपनी कीर्ति और गौरव को बढ़ाया। कीर्तिवर्मन एवं मदनवर्मन योग्य और श्रेष्ठ, युद्ध कौशल और कला कौशल में पराक्रमी और पारंगत थे। इन दोनों की नीतियां चन्देलवंश की गौरवता और महानता को चरमोत्कर्ष एवं क्रमोत्तर और उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर ले गई। चरित्र और जीवन पद्धति तथा शासन करने की पद्धति प्रशंसनीय एवं अतुलनीय थी।

चन्देलवंश का अन्तिम पराक्रमी राजा परमार्दिदेव (लगभग 1165–1203 ई0) हुआ था। मदनपुर शिलालेख के अनुसार दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान ने सन् 1239 वि0 (1183 ई0) में बुन्देलखण्ड (जैजाक भुक्ति) पर आक्रमण किया था। इसमें चन्देल राजा परमार्दिदेव बुरी तरह पराजित हुआ था[3]। परमार्दिदेव के पराजित होने से चन्देल वंश की शान शौकत और प्रतिष्ठा पर कलंक लग गया

---

1. डा0 एस0डी0 त्रिवेदी 'बुनदेलखण्ड का पुरातत्व', पृ0 16, सन्तोष प्रिंटिंग प्रेस, झाँसी।

2. वही।

3. वही।

जिससे परमार्दिदेव की चन्देलवंश में मान सम्मान और प्रतिष्ठा घट चुकी थी। इतिहासकारों के अनुसार परमार्दिदेव की हार राजनीतिक नीतियों में दुर्बलताओं के कारण हुई थी जिससे उनकी राजनीतिक गतिविधियों पर प्रभाव इस हार के कारण पड़ा था।

बुन्देलखण्ड का कुछ भाग दिल्ली राज्य में सम्मिलित हो गया था और शासन करने के लिये प्रतिनिध के रूप में पज्जूनराय को नियुक्त किया गया था। परमार्दिदेव कालिंजराधिपति हो गए परन्तु उनकी राज्य सीमा पहिले की अपेक्षा संकुचित हो गई थी। हिजरी सं0 569 (1202 ई0) में कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर पर भयंकर आक्रमण किया और उसमें परमार्दिदेव को पुनः परास्त होना पड़ा। यहीं से चन्देल–वैभव सदा के लिये समाप्त हो गया।[1]

बुन्देलखण्ड पर मुसलमानों के अनेक आक्रमण हुये। इसमें पहला आक्रमण महमूद गजनवी ने सन् 1021 में कालिंजर पर किया और प्रभूत सम्पत्ति लूटकर चला गया। दूसरा आक्रमण शहाबुद्दीन मोहम्मद गोरी का था। उसके बाद कुतुबुद्दीन ऐबक ने चढ़ाई की और कुछ भाग जीत लिया। विजित भाग का शासन करने के लिये उसने अपना मुसलमान सरदार नियुक्त किया। इसके पश्चात गुलामवंश के बादशाहों द्वारा आक्रमण किये जाते रहे और इसका बहुत सा भाग हथियाने में सफल रहे।[2] बुन्देलखण्ड पर मुसलमानों के अनेक आक्रमणों से संस्कृति और सभ्यता में काफी परिवर्तन हुआ जिस कारण से बुन्देलखण्ड की रीति–रिवाजों, परम्पराओं और लोकरीतियों पर प्रभाव पड़ा। बुन्देलखण्ड के शासकों और मुस्लिम शासकों की नीतियों, आयामों, दृष्टिकोंण और प्रशासन पद्धति में काफी भिन्नता थी। बुन्देलखण्ड पर मुसलमानों के इन आक्रमणों के द्वारा सामान्य जनजीवन अस्त–व्यस्त हो गया और जीवन की नीतियों ने मनुष्य के आचरणों को भी अधिक प्रभावित किया।

मुसलमान आक्रमणकारियों के प्रति तो उसने वंशोचित, गौरवशाली, दृढ़ और व्यापक नीति का अवलम्बन किया। राजा, प्रजा देश और धर्म के नाम पर सभी स्थानों पर उत्थान और पतन का दौर चल रहा था। चन्देलवंश का गौरव, यशकीति, दुर्बलता में बदलती जा रही थी जो कि उनके व्यक्तित्व व चरित्र को कलंकित और दूषित कर रहे थे। इन दुर्बलताओं के कारण उनके लक्ष्य की पवित्रता और राष्ट्र चिन्तायें उनके समक्ष बड़ी कठिन समस्या बन गई थी। आक्रमणकारियों के अत्याचारों से चन्देलवंश के गौरव का सूर्य अस्त होता जा रहा था।

---

1. डा0 एस0डी0 त्रिवेदी 'बुनदेलखण्ड का पुरातत्व', पृ0 17, सन्तोष प्रिंटिग प्रेस, झाँसी।

2. वही।

"शेरशाह सूरी ने 1545 ई0 में कालिंजर पर चढ़ाई की थी जिसमें वह मारा गया। उसका लड़का इस्लामशाह गद्दी पर बैठा।[1] चन्देलवंश की असफलता एवं रहस्य एक गहन एवं दुर्बोध समस्या का विषय है। समस्या कुछ जटिल थी जोकि उनके शौर्य, देश–प्रेम, युद्ध–कला, सैन्य शक्ति, राज्य करने की नीतियां, राजा और प्रजा के सम्बन्ध, राजा और मन्त्रियों के सम्बन्धों पर भी प्रश्न चिन्ह लगते हैं[2] जिससे कि चन्देल शासकों की जाति, गौरव, देश प्रेम तथा उनकी वीरता कलंकित और धूमिल होती गई। ऐतिहासिक प्रक्रिया बतलाती है कि राजनीतिक दूरदर्शिता और संकुचित राजनीतिक विचारधारायें मुस्लिम आक्रमणकारियों का मनोबल बढ़ाने में अधिक योगदान देती थीं। मुस्लिम शासकों के आक्रमणों ने चन्देलवंश की गतिविधियों, राजपूतों की श्रेष्ठता एवं छवि और सम्मान को कलुषित और कलंकित किया।

गौड़ लोगों ने भी बुन्देलखण्ड के कुछ भाग पर शासन किया। इन राजाओं में संग्राम शाह प्रतापी राजा हुआ। वह 1515 ई0 में गद्दी पर बैठा था।[3] परन्तु गौड़ लोगों की ऐतिहासिक विवेचना करने पर बुन्देलखण्ड में इनका वर्चस्व कम रहा। गौड़ लोगों का आधिपत्य जबलपुर, सागर, दमोह तथा कानपुर के आस–पास अधिक पाया जाता है। चन्देलवंश और गौड़वंश की शासन पद्धति एक दूसरे की पूरक थीं। परन्तु भावनाओं और विचारों में भी काफी समानतायें और असमानतायें थीं। बुन्देलखण्ड के चन्देल वंशों का एक अनौखा और अनुपम इतिहास घटनाओं और त्रासदियों से भरा पड़ा है।

13वीं शताब्दी के मध्य में बुन्देला सत्ता का उदय हुआ। बुन्देलों का पहला अड्डा महौनी था। वहां भी प्रारम्भिक राजाओं ने राज्य किया। राजा सोहन पाल ने गढ़कुण्डार के खंगार राजा हुरमत सिंह को हरा दिया तथा वहां का राज्य हथिया लिया। इसके बाद उन्होंने जैतपुर भी जीता। अपनी कुछ पीढ़ियों तक बुन्देला राजाओं ने यहीं से राज्य व शासन किया। राजा रुद्र प्रताप ने अपनी राजधानी सन् 1531 में गढ़कुण्डार से ओरछा बदली थी। ओरछा वंश वृक्ष में वीरसिंह देव (1606–1627 ई0 में) बड़ा प्रतापी राजा हुआ था जोकि कला और साहित्य प्रेमी था।[4]

---

1. डा0 एस0डी0 त्रिवेदी 'बुनदेलखण्ड का पुरातत्व', पृ0 17, सन्तोष प्रिंटिंग प्रेस, झाँसी।

2. "चन्देल और उनका राजकत्वकाल", डा0 केशव चन्द्र मिश्र, पृ0 94, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1954।

3. डा0 एस0डी0 त्रिवेदी 'बुनदेलखण्ड का पुरातत्व', पृ0 17, सन्तोष प्रिंटिंग प्रेस, झाँसी।

4. वही।

वीरसिंह देव का पुत्र जुझार सिंह ओरछा की गद्दी पर बैठा तथा अन्य पुत्रों को दूसरे स्थानों की जागीरें मिलीं। बिजना, टोड़ी फतेहपुर, जैतपुर, खनियाधाना, जिगनी, चरखारी, सरीला, चन्देरी, पन्ना आदि अनेक राज्यों तथा जागीरों के राजा ओरछा वंश वृक्ष से ही गये। बुन्देला राजा चम्पतराय (1637–1641ई0) ने मुगलों से डटकर मोर्चा लिया। उसके पुत्र राजा छत्रसाल ने अपनी शक्ति के द्वारा अपने साम्राज्य का विस्तार किया। वह बड़ा प्रतापी दूरदर्शी और वीर राजा था। उसके विपत्ति के दिनों में बाजीराव पेशवा ने छत्रसाल की मदद की थी।[1] महाराजा छत्रसाल भी बुन्देला शासकों में प्रतापी, पराक्रमी, उत्साही और कर्तव्यनिष्ठ थे जिसकी नीति सभी बुन्देला शासकों की अपेक्षा सुदृढ़, कठोर और न्यायप्रिय थी। महाराजा छत्रसाल ने अपने जीवन में सम और विषम परिस्थितियों का सामना किया। उनके जीवन की उपलब्धियाँ ऐतिहासिक दृष्टि से अमरता की कहानी कहती हैं।

चन्देला वंश और बुन्देला वंश में काफी समानतायें और असमानतायें थीं परन्तु बुन्देला वंश ने मराठाओं से दोस्ती करके उनको बुन्देलखण्ड में प्रवेश कराने का मौका दिया जिस कारण से मराठाओं की सत्ता का प्रचार–प्रसार बढ़ता चला गया। झाँसी, जालौन गुरसरायं रियासतों पर भी मराठाओं का कब्जा था जोकि छत्रसाल राजाओं की दोस्ती का परिणाम था। पेशवा बाजीराव तथा छत्रसाल की मित्रता के कारण बुन्देलखण्ड में मराठा शासकों का सूत्रपात हुआ।

पेशवा बाजीराव एक प्रतापी और दूरदर्शी मराठा शासक था। पेशवा मराठा शासकों का दृष्टिकोंण बुन्देलावंश के लिये औचित्यपूर्ण था। बुन्देला वंश के शासकों ने जीवन में बहुत से उतार–चढ़ाव देखे जिन्होंने कि अपने जीवन में कई प्रकार के संघर्ष किये जोकि ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक दृष्टि से औचित्य एवं गर्भित रहे। बुन्देलावंश ने बुन्देलखरण्ड के इर्दगिर्द अपना विस्तार किया और वर्चस्व कायम किया। बुन्देलखण्ड वीरों की भूमि है, इस भूमि में चन्देला और बुन्देला वंश के पराक्रमी, प्रतापी और साहसी राजाओं ने अपना वर्चस्व कायम किया।

बुन्देला वंश का इतिहास भारतीय इतिहास में एक अनुपमता को प्रदर्शित करता है। बुन्देलखण्ड में बुन्देला वंश की पताकायें, ध्वजायें, वीरगाथायें, वीरकथायें उनकी छवि और उनके वर्चस्व को प्रदर्शित करती हैं। बुन्देला वंश की वीरगाथायें सारे विश्व के इतिहास में अनेकता में एकता को

---

1. डा0 एस0डी0 त्रिवेदी 'बुनदेलखण्ड का पुरातत्व', पृ0 17, 18 सन्तोष प्रिंटिंग प्रेस, झाँसी।

प्रदर्शित करती हैं। पं0 जवाहर लाल नेहरू द्वारा लिखी हुई "भारत एक खोज" (Discovery of India) में भी बुन्देला वंश के तेज और साहसी व्यक्तियों का वर्णन किया गया है। बुन्देला वंश की शासन पद्धति, प्रशासनिक नीतियां, धार्मिक नीतियां, राजनीतिक नीतियां और सामाजिक नीतियां भारत के अन्य राजवंशों से भिन्नता को प्रदर्शित करती हैं।

भारती चन्द्र का लघु भ्राता मधुकर शाह ओरछा के राज सिंहासन पर बैठा। भारती चन्द्र निःसन्तान था। अतः मधुकर शाह को राजसत्ता सम्भालने का उत्तरदायित्व प्राप्त हुआ तथा वह 38 वर्ष (1554 ई0–1592 ई0) के शासन में तत्कालीन मुगल बादशाहों से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये शतत् संघर्षरत रहने व हिन्दू धर्म रक्षा एवं उसकी अभिवृद्धि करने वाला शासक कहा गया।[1] मधुकर शाह ने बावर, हुमायूँ, शेरशाह सूरी और उसके वंशज सलीमशाह सूरी फिरोज खां उसके मामा मुहम्मद शाह अदली (जिसका वास्तविक नाम मुबारक खां था) उसके चचेरे भाई इब्राहीम खां एवं सिकन्दर शाह का शासन तथा उन लोगों द्वारा अपनायी गई धार्मिक कट्टरता को देखा। इन्हीं सब कारणों से मधुकर शाह के मस्तिष्क में हिन्दुत्व की रक्षा करना एवं हिन्दू धर्म का संवर्धन करना प्रमुख था। मधुकर शाह के शरीर एवं आत्मा में हिन्दुत्व की रक्षा कर कट्टरपंथी मुस्लिम शासकों को परास्त करना था परन्तु हिन्दू और मुस्लिम शासकों ने भारत की संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को बदलने का प्रयास किया। मधुकर शाह ने वीरता एवं त्याग के साथ अपने उत्तरदायित्व को निभाया था।

1554 ई0 में जब मधुकर शाह ओरछा सिंहासन पर बैठे, उसके दो वर्ष बाद एन् 1556 ई0 में अकबर ने मुगलशासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली थी।[2] अकबर की नीतियों में दूरदर्शिता और पारदर्शिता के प्रमाण मिलते हैं। अकबर ने अपने समकालीन राजपूत राजाओं से सम्बन्ध स्थापित कर लिये क्योंकि अकबर के समकालीन राजपूत राजाओं का बोलबाला था। प्रारम्भ में अकबर कट्टरपंथी एवं धर्मान्ध था परन्तु बाद में वह परिस्थितियों के अनुसार दूरदर्शी, योग्य, चतुर एवं सभी धर्मो का सम्मान करने लगा था।

"अकबर ने मजनू खां के नेतृत्व में कालिंजर पर आक्रमण किया था। किले के तत्कालीन स्वामी रामचन्द्र ने भयभीत होकर किला समर्पित कर दिया।[3]" अकबर का यह कदम मधुकर

---

1. डा0 महेन्द्र वर्मा, बुन्देलखण्ड का इतिहास, पेज सं0 89, सुशील प्रकाशन, मेरठ।

2. वही।

3. वही।

शाह के लिये आंखों में कांटा जैसा चुभ गया जिससे मधुकर शाह के व्यक्तित्व और चरित्र को काफी वेदना और कष्ट का सामना करना पड़ा। मधुकर शाह धर्म के कट्टर एवं मुगलशासकों के कड़े विरोधी थे। औरंगजेब की कूटनीति ओरछा राज्य के अन्तर्गत नहीं चल पाई जबकि अकबर की कूटनीति से राजस्थान के राजपूत राजा प्रभावित हो गये थे। परिणाम स्वरूप उन्हें अकबर से जीवन भर संघर्ष लेना ही पड़ा।

मधुकर शाह निश्चय ही स्वतन्त्रता सैनानी थे। इनके ह्रदय में अपने दिवंगत भ्राता भारती चन्द्र की भावना समाई हुई थी। इस कारण इनको तत्कालीन मुगल बादशाहों से निरन्तर संघर्ष करना पड़ा था।[1] वे निर्भीक थे, उनके इष्टदेव कृष्ण थे, वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे तथा प्रतिदिन कृष्ण की पूजा अर्चना करते थे। उनका दृष्टिकोंण हमेशा हिन्दू धर्म की रक्षा करना और हिन्दुत्व की संस्कृति और सभ्यता को बचाना था।[2] वे जंगलों में भटकते रहे, उनके सिद्धान्तों में मुगल बादशाह के सामने झुकना बुन्देल वंश पर एक कलंक था। वे शान से जिये और शान से मरे।[3] अकबर को माथे पर तिलक से घृणा थी। एकबार मधुकर शाह तिलक लगाकर अकबर के दरबार में पहुंचे तो अकबर की भृकुटी तन गई और अकबर ने कहा ओर्छेशु तुमने मेरी आज्ञा का निरादर किया। मधुकर शाह ने कहा मैं अपने इष्टदेव की आज्ञा मानना पहला फर्ज समझता हूँ तथा आपकी आज्ञा इतनी महत्वपूर्ण नहीं।[4]

मधुकर शाह के पूर्व भारती चन्द्र ने ओरछा के भव्य विशाल महलों तथा दुर्ग व उसकी प्राचीर को बनाकर बुन्देली स्थापत्यकला का आकर्षक ढंग से श्रीगणेश किया था। मधुकर शाह की स्थापत्यकला की अभिरुचि का प्रदर्शन तिखंडा राजमहल एवं चतुर्भुज जी के मन्दिर में देखने को मिलता है। मधुकर शाह कृष्ण भक्त थे इस कारण से उन्होंने अपने इष्ट देव के नाम पर जुगलकिशोर जी का मन्दिर बनवाया था। उसी समय एक रात महारानी गणेश कुँवर से अपने इष्ट देव के गुणगानों के बीच विवाद हुआ था। महारानी ओरछा को छोड़कर अयोध्या चली गईं तथा भगवान राम की प्रतिमा सन् 1574 में ओरछा ले आईं जिसको कि आज वर्तमान में रामलला के नाम से पुकारा जाता है।[5]

---

1. डा0 महेन्द्र वर्मा, बुन्देलखण्ड का इतिहास, पेज सं0 91, सुशील प्रकाशन, मेरठ।

2. वही।

3. वही।

4. वही, पृ0 92।

5. वही, पृ0 92।

मधुकर शाह वीर, साहसी, पराक्रमी, उत्साही एवं विद्वान थे। उनमें वीरत्व, देवत्व, एवं मानवत्व की भावना थी। महाराजा मधुकर शाह के समय स्थापत्यकला का बोलबाला था। मधुकर शाह मानव–प्रेमी थे उनके सारे क्रिया कलाप एवं गतिविधियां मानवता पर आधारित थीं। उनकी सोच में धार्मिकता, निडरता, निर्भीकता, मानवता, उदारता, नैतिकता, सामाजिकता, राजनीतिकता एवं प्रशासनिकता के लक्षण और अंश दिखाई पड़ते थे। उनकी सोच में दूरदर्शिता, भावुकता, और व्यापकता थी।

मधुकर शाह बुन्देलवंश के एक प्रतापी, दक्ष और कुशल शासक थे, उनका त्याग, बलिदान, वात्सल्यता और गहना जीवन के आभूषण थे। मधुकर शाह एक संस्मरणीय, स्मरणीय, एवं प्रयोगात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ और उच्चकोटि के महान ओर्छेसु थे। मधुकर शाह के वीरत्व की कहानी ओरछा नगर के परिवारों में और बुन्देलखण्ड के अन्य कस्वों व नगरों में आज भी सुनाई जाती हैं।

महाराज मधुकर शाह की छः रानियाँ थीं तथा इनके आठ पुत्र पैदा हुये– रामशाह, हौरल देव, वीरसिंह देव, रतन सेन, इन्द्रजीत सिंह, हरी सिंह, प्रताप राय और नरसिंह देव थे। पिता की मृत्यु के उपरान्त रामशाह को ओरछा का शासक बनाया गया था तथा मुगल शासक अकबर से खेद व्यक्त करके भविष्य में मुगल सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया था। फलस्वरूप शहंशाह[1] अकबर की ओर से रामशाह अभय प्राप्तकर्ता हो गये परन्तु दूसरी ओर वीर सिंह देव को जब रामशाह की नीति का पता चला तब उनका मन उनके प्रति विद्रोह व आक्रोश की भावना से भर गया। वीर सिंह ने अपने आपको बचाने के लिये मुगलों से कभी समझौता नहीं किया।

वीर सिंह का काल स्वर्णयुग कहा जाता है, इनके काल में झाँसी का किला, धामौनी मध्य प्रदेश का किला, दिनारा, करैरा, गढ़ा, मारूगढ़, शाहगढ़, वारीगढ़, राहतगढ़, देवरीगढ़, रायसेन गढ़, दमोह गढ़, हटागढ़, पाटनगढ़, रामगढ़ एवं प्रतापगढ़, जैसे 52 छोटे दुर्ग बनवाये थे।[2] वीर सिंह देव निर्मित महलों में जहांगीर महल सर्वश्रेष्ठ कृति के रूप में जाना जाता है जो अपनी भव्यता, विशालता, एवं कलापूर्ण निर्माण शैली के कारण भारतीय वास्तुकला के इतिहास में एक स्वर्णिम महल के रूप में जाना जाता है। यह महल आठ वर्ष में बनकर तैयार हुआ था। जहांगीर महल की बनावट

---

1. डा0 महेन्द्र वर्मा, बुन्देलखण्ड का इतिहास, पेज सं0 97, सुशील प्रकाशन, मेरठ।

2. वही। पृ0 98।

उसके कक्षों, दालानों, छज्जों से युक्त तीनों मंजिलों में शोभायमान हैं। इस महल में हिन्दू स्थापत्यकला शैली की प्रधानता है– जैसे कि ग्वालियर के मानमन्दिर और आगरा के किले में जहांगीर महल की निर्माण परम्परा दिखाई देती है।[1]

वीर सिंह देव द्वारा निर्मित फूलबाग, हरदौल का चबूतरा (इसी चबूतरे को हरदौल की बैठक और हरदौल का पलकिया भवन कहा जाता है) है। हॉल के दाहिनी ओर एक तहखाना है जिसमें हवा के लिये दो ऊँचे, लम्बे छिद्र युक्त चौकोर स्तम्भ हैं। इन्हें सावन[2]–भादौं कहा जाता है। इस दरवारे हॉल की चित्रकला सारे विश्व के इतिहास में और भारतीय इतिहास में अनुपम और अनौखी है। वीर सिंह देव स्थापत्यकला के प्रेमी थे, उनके द्वारा बनाये गये महल, इमारतों, तहखानों में हिन्दुत्व के चिन्ह और संरचनायें दिखाई पड़ती हैं जबकि वीर सिंह के समकालीन मुगलों का साम्राज्य था। उन्होंने मुगलों की स्थापत्यकला को नहीं अपनाया था।

वीर सिंह देव द्वारा बनवाया गया ओरछा का लक्ष्मी मन्दिर तथा मथुरा का केशव राय मन्दिर प्रसिद्ध है। यह मन्दिर गढ़ी नुमा टूड़ियों पर आधारित छज्जों, झिझरियों, आलों, वातायनों, लम्बी दालानों से युक्त बड़े ही आनुपातिक ढंग पर बना है।[3] केशव राय मन्दिर उस स्थान पर कभी बना था जहां औरंगजेब बादशाह द्वारा बनवाई गई जामा मस्जिद दिखाई देती है। 'मासिर–ई–आलमगीरी' के अनुसार इस मन्दिर के निर्माण में लगभग 32–33 लाख रुपया लगा था जोकि एक श्रेष्ठतम मन्दिर था। यह मन्दिर अपनी भव्यता, विशालता एवं कला की दृष्टि से अनूठा मन्दिर था। इन प्रमुख मन्दिरों के अतिरिक्त काशी का सेजशाही मन्दिर, वृन्दावन में बांकेविहारी का मन्दिर, बरसाने में लाड़ली का मन्दिर कृष्ण भक्ति के उत्तमता के प्रतीक हैं।

वीर सिंह देव बुन्देला वंश के एक कुशल, सक्षम एवं योग्य शासक थे। उनका दृष्टिकोंण विकासशील था। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में अपना योगदान दिया था। वीर सिंह देव की बनाई हुई कलाकृतियां इतिहास में एक विशिष्ठ स्थान रखती हैं। वीर सिंह देव के मन्दिरों और उनके मनोरंजक स्थलों में भव्यता, विशालता, गौरवता एवं महानता के स्पष्ट संकेत दिखाई पड़ते हैं।

---

1. डा0 महेन्द्र वर्मा, बुन्देलखण्ड का इतिहास, पेज सं0 99, सुशील प्रकाशन, मेरठ।

2. वही पृ0 99।

3. वही पृ0 99।

वीर सिंह देव ने जीवन भर मुगलों की गुलामी को बरदाश्त नहीं किया। वीर सिंह एक महान योद्धा, आध्यात्मिक और धार्मिक शासक थे। उनकी नीतियों में कूटनीतिज्ञता और दूरदर्शिता के स्पष्ट संकेत दिखाई पड़ते हैं। वीर सिंह देव का दृष्टिकोंण ओरछा रियासत को क्रमोत्तर, उत्तरोत्तर प्रगति की ओर ले जाना था। वीर सिंह ने मुस्लिम बादशाहों के सामने अपने सम्मान व प्रतिष्ठा को ध ूमिल नहीं होने दिया। वीर सिंह देव न्यायप्रियता को अधिक पसन्द करते थे। उनके दृष्टिकोंण में न्यायप्रिय होना एक राजा का प्रमुख धर्म है क्योंकि राजा एक देवत्व का प्रतीक माना जाता है।

वीर सिंह देव में सामंजस्य और प्रजा के लिये वात्सल्यता की स्पष्ट झलक एवं संकेत ऐतिहासिक अध्ययन करने पर मिलते हैं। उनके दृष्टिकोंण में राजा ईश्वर का प्रतीक माना जाता है। वीर सिंह देव कृष्ण सम्प्रदाय के अनन्य भक्त थे, उन्होंने अपने जीवन का इष्ट देव कृष्ण को चुन लिया था। वीर सिंह देव एक गतिशील, गत्यात्मक, चित्रकला प्रेमी, स्थापत्यकला प्रेमी, एवं मनोरंजक स्थल प्रेमी थे। वीर सिंह देव की सोच और दूरदर्शिता में ऊँचाई के संकेत मिलते हैं। उन्होंने कभी जीवन में न्यूनता को नहीं अपनाया बल्कि उनके जीवन में श्रेष्ठता एक आभूषण था। वे जीवन भर नैतिकता और चरित्रता का संदेश ओरछा के निवासियों को देते रहे। वास्तव में वीरसिंह देव का ऐतिहासिक मूल्यांकन करने पर उनका चरित्र और आदर्श अनमोल एवं सनातनीय दृष्टिगोचर होते हैं। वे हमेशा संस्मरणीय एवं स्मरणीय रहे।

महाराजा छत्रसाल का भारतीय बुन्देलखण्ड के इतिहास में एक सम्माननीय नाम है। उन्होंने छत्रपति शिवाजी और महाराणा प्रताप जैसे शासकों की तरह सम्मान प्राप्त किया। उन्होंने बुन्देलखण्ड में साम्राज्य विस्तार के साथ–साथ हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये जीवनपर्यन्त संघर्ष किया और अपने लक्ष्य में अभूतपूर्व सफलता पायी थी। छत्रसाल ओरछा राज्य में बुन्देला राज्य के संस्थापक और प्रथम शासक महाराजा रुद्रप्रताप के तृतीय पुत्र उदयादित्य की चौथी पीढ़ी में उत्पन्न चम्पतराय के पुत्र थे। महाराजा छत्रसाल को बुन्देलखण्ड का शिवाजी कहा जाता था।

छत्रसाल ने अपने साम्राज्य विस्तार के लिये मुगल सत्ता के दमन को बरबाद करने में निरन्तर युद्ध जारी रखा। छत्रसाल ने अपने जीवन में उदासीनता और नीरसता को कभी नहीं अपनाया। औरंगजेब, छत्रसाल के समकालीन थे जिन्होंने छत्रसाल को युद्ध लड़ने के लिये विवश कर दिया था परन्तु छत्रसाल के पास मनोबल होने के कारण उन्होंने अपने जीवन में कभी भी हार नहीं मानी।

"छत्रसाल वहुमुखी, प्रतिभाशाली शासक था। पिता चम्पतराय और माता सारन्धा के पुत्र होने के कारण शौर्य, पराक्रम, साहस, धैर्य, दूरदर्शिता के गुण उनको मातृ पक्ष एवं पितृ पक्ष से प्राप्त हुये थे।[1]" पैतृिक सम्पदा उनके जीवन की अनमोल आभूषण थी। वे जीवन भर अपनी शक्ति के द्वारा उत्थान एवं पतन के रास्ते चुनते रहे। उनका बचपन, किशोरपन, युवावस्था एवं प्रौढ़ावस्था उनके जीवन की ऐतिहासिक साक्षरता को प्रदर्शित करते हैं।

महाराजा छत्रसाल जीवन के हर प्रकार के आक्रमण राजनीतिक द्वन्द, छापामार नीति तथा कूटनीति जैसे विषयों में पूर्णरूप से पारंगत थे। उन्होंने अपने राज्य के विस्तार और सुरखा के लिये जीवन भर त्यागमयी ओर गौरवमयी गुणों को अपनाकर अपने लक्ष्य को प्राप्त किया था। छत्रसाल जीवनपर्यन्त मुगलशासकों को परास्त करते रहे। महाराजा छत्रसाल के हृदय में काव्य गुण पाया जाता था जिस कारण से उनके हृदय में मानवीय संवेदनाओं, कष्ट, पीड़ा, वेदना, मानवता, दया, ममत्व, वात्सल्य के गुण स्पष्ट दिखाई पड़ते थे। महाराजा छत्रसाल ओरछा के एक सम्माननीय एवं संस्मरणीय शासक थे।

महाराज छत्रसाल एक श्रेष्ठ कवि भी थे। उनमें साहित्यिक गुण था तथा उनका लिखा गया साहित्य ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी भाषा और कुछ अंश संस्कृत साहित्य के भी मिलते हैं। महाराज छत्रसाल कवि और साहित्यकार के अतिरिक्त एक अच्छे दार्शनिक भी थे। उनकी दार्शनिक नीतियां और विशेषतायें प्रजा के हित में थीं। उन्होंने कई श्रेष्ठ कवियों को राजकीय संरक्षण और आश्रय दे रखा था। जिसमें भूषण, लाल कवि, हरिकेश, न्याज और ब्रजभूषण जैसे विशेष कवि उल्लेखनीय रहे।[2]

छत्रसाल व्यक्तिगत तौर पर एक अच्छे नियंत्रणकर्ता और साम्राज्य निर्माता तथा अपनी पर्वत श्रंखलाओं की तरहटियों के अनुभव के लिये प्रसिद्ध और विख्यात थे। उनकी राजनीति और दर्शन स्पष्ट छवि वाली थे। महाराज छत्रसाल को वास्तुशास्त्र, वास्तुकला एवं चित्रकला से अधिक प्रेम था। छत्रसाल स्वयं एक अच्छे योद्धा भी थे। उनकी सोच दूरदर्शी थी उनके विचारों में निष्पक्षता और स्पष्टता थी। उन्होंने अपने जीवन में एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की थी।

---

1. डा0 महेन्द्र वर्मा, बुन्देलखण्ड का इतिहास, पेज सं0 105, सुशील प्रकाशन, मेरठ।

2. वही पृ0 106।

छत्रसाल एक अच्छे सफल तैराक भी थे।[1] वह परिस्थितियों के अनुसार अपने आपमें सामंजस्य करना जानते थे। छत्रसाल ने बुन्देलखण्ड के लिये अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया था। उन्होंने अपने जीवन में कभी हार नहीं मानी थी तथा हार शब्द उनके जीवनरूपी शब्दकोश में नहीं था। बुन्देलखण्ड में बुन्देलों और मराठों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का सिलसिला महाराजा छत्रसाल से ही शुरू हुआ था। छत्रसाल महाराज अपने जीवन के अच्छे बुन्देला शासकों के रूप में माने जाते थे। महाराज छत्रसाल का जीवन चारित्रिक, सामाजिक, नैतिक और प्रशासनिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर सभी बुन्देला शासकों से श्रेष्ठ था।

छत्रसाल ने अपने काका सुजान राय तथा भाई अंगद की सहायता से सैन्य संगठन को मजबूत किया। उन्होंने अपना अभियान धामौनी, मैहर पर आक्रमण कर पिता के विश्वासघाती हत्यारों के वध से प्रारम्भ किया था। उनकी सेना में सभी जाति एवं धर्म के सैनिक थे। उन्होंने मऊ सहानिया को सैन्य राजधानी तथा पन्ना को सन् 1675 ई0 में गौड़ों से हस्तगत कर राजधानी बनाई थी।[2] मऊ के समीप उनकी मुलाकात संत प्राणनाथ से हुई थी जिन्हें वे आदरपूर्वक पन्ना ले आये थे। छत्रसाल की सेना छापामार युद्ध में बड़ी कुशल और दक्ष थी, छापामार युद्ध से मुगल सेना बहुत ही परेशान थी। सागर पर डांडी राजपूतों का शासन था। उन्होंने उनसे सागर को प्राप्त किया था तथा महाराज छत्रसाल ने नगर को भी बसाया था।[3]

सन् 1707 ई0 में सम्राट औरंगजेब की मृत्यु अहमद नगर में हो गई थी। उसका उत्तराधिकारी मोज्जुम (बहादुर शाह) ने छत्रसाल को लोहागढ़ अभियान में सहयोग के लिये आमंत्रित किया था। सम्राट बहादुर शाह की मृत्यु के बाद सैयद बन्धु (अब्दुल्ला हुसैन अली) शक्तिशाली हो गये थे। सम्राट मोहम्मद शाह के शासनकाल में मोहम्मद खां बंगस शक्तिशाली हो गया था। उसे बुन्देलखण्ड में ऐरच, भाण्डेर, कालपी, कोंच, मोदहा, जालौन का इलाका सैन्य खर्च हेतु प्राप्त हुआ था।[4]

अनेक बुन्देले शासकों ने बंगस को सहयोग दिया था। बुन्देले इचौली के युद्ध में हार गये थे। शत्रु ने जैतपुर का किला घेर लिया था। ओरछा के राजा उदोत सिंह, दतिया के राजा

---

1. डा0 महेन्द्र वर्मा, बुन्देलखण्ड का इतिहास, पेज सं0 106, सुशील प्रकाशन, मेरठ।

2. डा0 रमेश चन्द्र श्रीवास्तव, ''बुन्देलखण्ड–साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक वैभव, पृ0 165, बुन्देलखण्ड प्रकाशन, बांदा।

3. वही, पृ0 166।

4. वही पृ0 166।

रामचन्द्र, चन्देरी के राजा दुर्जन सिंह, मोदहा के जागीरदार जयसिंह सभी बंगस खां के सहयोगी थे।[1] इससे स्पष्ट होता है कि ओरछा, दतिया और चन्देरी के राजपूत राजा बंगस के चाटूकार व चापलूस थे क्योंकि अपनी रियासत की रक्षा करने के लिये इन्होंने बंगस खां का साथ दिया था।

छत्रसाल ने विषम परिस्थितियों में पेशवा बाजीराव को सहायता के लिये बुलाया था। बाजीराव पेशवा 25 हजार सवार तथा पैदल सेना सहित महोबा पहुंच गये थे तथा इनका युद्ध बेलाताल के निकट हुआ था। बंगस को जैतपुर के किले में घेर लिया था। निराश बंगस ने बुन्देलों की शर्त स्वीकार की थी कि वह दुबारा बुन्देलखण्ड पर आक्रमण नहीं करेगा तथा छत्रसाल ने उसे सकुशल लौट जाने दिया था। महाराज छत्रसाल की मृत्यु 12 मई 1731 को हो गई थी।[2]

महाराज छत्रसाल ने राज्य को तीन भागों में मृत्यु से पूर्व ही बांट दिया था। ज्येष्ठ पुत्र हृदय शाह को पन्ना, मऊ, गढ़ा कोटा, शाहगढ़ तथा कालिंजर प्रदान किया तथा जगतराज को जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, बिजावर एवं बांदा प्रदान किया था। उसके पश्चात पेशवा के भाई चिमाजी बुन्देलखण्ड पधारे थे तथा मराठों ने कालपी, हटा, हृदय नगर, जालौन, झाँसी, सिरोंज, गढ़ा कोटा, सागर आदि पर 1735 में शासन कर लिया था।[3]

झाँसी के निकट ओरछा राजधानी आक्रांताओं से अशांत रहने लगी थी। फलतः राजधानी परिवर्तित होकर टीकमगढ़ (टहरी) हो गयी थी। महाराज हृदय शाह और जगतराज के उपरांत इनके उत्तराधिकारियों में गृह युद्ध छिड़ गया था। चरखारी और बांदा की सत्ता खुमान सिंह और गुमान सिंह के हाथ में थी। पन्ना और शाहगढ़, सवा सिंह और पृथ्वी राज के बीच में थी। इसी दरम्यान अर्जुन सिंह तथा पेशवा बाजीराव ने हस्तक्षेप किया तथा धीरे–धीरे बुन्देलों की शक्ति क्रमशः कमजोर होती चली गई। पन्ना नरेश सभा सिंह तथा भाई पृथ्वी सिंह को गोबिन्द पन्त बुन्देला ने शाहगढ़ तथा गढ़ा कोटा का इलाका दिला दिया था।[4] मराठाा इनसे चौथ लेते रहते थे। राजा अमार सिंह 1752 से 1758 तक रहे थे जिनकी हत्या चित्रकूट में हो गई थी। राजा हिन्दूपति (सन् 1758–76) ने अपने ज्येष्ठ पुत्र की जगह अल्पवयस्क अनुरुद्ध सिंह को राजा बनाया था।

---

1. डा0 रमेश चन्द्र श्रीवास्तव, ''बुन्देलखण्ड–साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक वैभव, पृ0 166, बुन्देलखण्ड प्रकाशन, बांदा।

2. वही, पृ0 168।

3. वही पृ0 168।

4. वही पृ0 168।

बुन्देला शासकों का बुन्देलखण्ड के इतिहास में ही नहीं बल्कि भारत और विश्व के इतिहास में भी एक उच्च स्थान है। बुन्देलों का शासन काल यशस्वी एवं कीर्तिमय था। महाराजा मधुकर शाह और छत्रसाल जैसे शासकों ने बुन्देला वंश की ज्योति को जगमगाया था। छत्रसाल बुन्देला वंश की रीढ़ की हड्डी थे। छत्रसाल ने अपने जीवन में कई प्रकार के उतार–चढ़ाव देखे थे वे वास्तव में बुन्देला वंश की धुरी थे।

महाराज छत्रसाल के पश्चात मराठा पेशवा बाला जी बाजीराव ने अपना प्रभुत्व बुन्देलखण्ड में स्थापित किया था। उनके पश्चात आने वाले सभी शासकों में गुणात्मक और मात्रात्मक विशेषतायें नहीं थीं। उनमें प्रशासनिक पद्धति का अभाव, राजनीतिक नीतियों का अभाव, नैतिक दुर्बलता एवं चारित्रिक दुर्बलता आदि थीं। बुन्देला शासक भोगी–विलासी जीवन व्यतीत करने लगे थे। यही उनकी दुर्बलतायें एवं निर्बलतायें थीं।

बुन्देला वंश के शासकों ने अपनी प्रभुसत्ता को बनाये रखने के लिये कई प्रकार के संघर्ष किये। बुन्देला शासकों में आलोचक और समालोचक दोनों प्रकार के व्यक्ति थे। बुन्देला वंश का विस्तार उत्तर भारत एवं मध्य भारत के बहुत से हिस्सों में था। सभी रियासतें बुन्देला वंश की हिन्दुत्व की भावना को लेकर के प्रशासन किया करती थीं। कुछ नीतियां बुन्देला शासकों की प्रशंसनीय तथा कुछ निन्दनीय थीं जिनके आधार पर बुन्देला शासकों का मूल्यांकन किया जा सकता था। गृह युद्ध, वैमनस्यता, प्रतिशोध, ईर्ष्या, जलन व द्वेष पतन के मुख्य कारण थे। कुछ बुन्देला शासकों में अमानवता और क्रूरता पनप गई थी जिस कारण से उनकी प्रशासनिक क्षमता में गिरावट आती चली गई। बुन्देला वंश के शासकों को मुगल बादशाहों के भी कई प्रकार के आक्रमणों को झेलना पड़ा। कई बुन्देला शासक मुगलशासकों के चाटूकार एवं चापलूस थे। यह उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता और कमजोरी थी। बुन्देला शासकों में कुछ शासक वीर और तेजस्वी थे जिनको कि इतिहास में एक महान योद्धा, मसीहा, पैगम्बर और देवदूत के रूप में स्थान दिया जाता है। उन्होंने अपना समस्त जीवन राज्यों की रक्षा करने के लिये न्योछावर कर दिया था।

बुन्देलखण्ड के राजपूतों में शासकों के रूप में दो वंश प्रमुख रहे। एक वंश चन्देलों का तथा दूसरा वंश बुन्देलों का। "बुन्देले मूल रूप से कन्नौज के गहड़वाल यागहरवार की एक शाखा हैं जो विन्ध्येलखण्ड में आने के कारण बुन्देले कहलाये। काशी राज्य के एक राजकुमार हेम करन ने असंतुष्ट होकर विंध्यवासिनी देवी की शरण में आकर पांच वार अनुष्ठान किया। पंचम नामधारी बनकर

1048 ई0 में गहोरा की ओर प्रस्थित हुआ था। अपनी स्थिति सुदृढ़ कर उसने माहौनी (उरई) पर आक्रमण कर एक राज्य की स्थापना की थी। 1071 ई0 में हेमकरण की मृत्यु हो गई थी। वीरभद्र तथा कर्णपाल महौनी को केन्द्र मानकर शासन करते रहे।"[1]

बुन्देले शासकों का प्रमुख गढ़ और संघर्ष क्षेत्र राजधानी गढ़कुण्डार रहा है। चन्देल वंश का प्रमुख क्षेत्र खजुराहो रहा है। चन्देला और बुन्देला वंश बुन्देलखण्ड में अपना प्रभुत्व स्थापित कर जीवन को चरमोत्कर्ष की ओर ले गये थे। दोनों वंश के शासकों का शासन प्रबन्ध सामाजिक दिशा में मूलरूप से भारतीय पौराणिक कथाओं, धर्म शास्त्र, वेद शास्त्रों एवं उपनिषदों और चाणक्य नीति के सिद्धान्तों पर आधारित था। बुन्देला वंश ने मुगलों के अधिक आक्रमण झेले थे जिस कारण से बुन्देल वंश के शासकों का उत्थान और पतन होता रहा।

"चन्देल वंश की अर्थ व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ थी आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थी। बुन्देलों की अपेक्षा चन्देलवंश के शासकों में सर्वदा विधान की मर्यादा एवं निरंकुशता प्रजाहित के लिये थी। राजा की उपाधियां परमभट्टारक महाराजाधिराज, परमेश्वर, परम महेश्वर तथा कालिंजराधेश्वर आदि थीं।"[2] न्याय और दण्ड के लिये धर्मशास्त्र एवं लोक व्यवहार मुख्य आधार थे। चन्देलों की नीतियां धर्म और राज्यों पर आधारित थीं। राजपुरोहित न्याय अधिकारी थे। कालिंजर, अजयगढ़, मनियागढ़, मड़फा, मौदहा, देवगढ़ आदि के किले सुदृढ़ और सुरक्षित थे। चन्देलवंश के शासकों का शौर्य, पराक्रम, धर्म, सहिष्णुता, सुशासन, साम्राज्य निर्माता, संगठनकर्ता, साहित्य कला प्रेमी आदि महान गुणों के कारण इनका साम्राज्य सर्वोपरि एवं सर्वोत्तम शासकों के रूप में माना जाता है।

बुन्देलाओं और चन्देलाओं ने अपने जीवनकाल में राजनीतिक उत्थान पतन का क्रमबद्ध इतिहास देखा। चन्देलकाल वास्तुकला की उत्कृष्टता के लिये बुन्देला शासकों से अधिक श्रेष्ठ और सुन्दर माना जाता है। महाराजा छत्रसाल के उत्तराधिकारियों में वो विशेषता नहीं थी जो मधुकर शाह और छत्रसाल में थी। छत्रसाल के पश्चात ह्रदय शाह प्रथम, ह्रदय शाह द्वितीय, सवा सिंह, पृथ्वी सिंह, मानसिंह, हिन्दुपथ, खेतसिंह, अनुरुद्ध सिंह, धौकल सिंह, सर्नेत सिंह तथा किशोर सिंह आदि थे परन्तु यह सभी शासक निर्बल व कमजोर थे। बुन्देला शासकों के सभी क्षत्रियों में सांस्कृतिक दृष्टि से

---

1. डा0 रमेश चन्द्र श्रीवास्तव, "बुन्देलखण्ड–साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक वैभव, पृ0 160, बुन्देलखण्ड प्रकाशन, बांदा।

2. वही, पृ0 160।

भारतीय संस्कृति का पूरी तरह से रंग चढ़ा हुआ था किन्तु मानवीय गुणों के आधार पर चन्देला और बुन्देला वंश के शासकों में काफी भिन्नतायें थीं।

"चन्देल वंश में स्त्रियों की दशा में क्रमशः संकीर्णता और अनुदारता थी। स्त्रियॉ भोग की सामग्री मानी जाती थीं। मन्दिरों में देवदासी प्रथा थी। महानचनी, राजाओं की प्रसन्नता के लिये संगीत एवं नृत्य के कार्यक्रम मन्दिरों के सामने प्रस्तुत करती थीं।[1] ब्राह्मणों को भूमिदान या ग्रामदान प्राप्त था, वे समाज के सम्मानित व्यक्तित्व के रूप में मान जाते थे।

चन्देला और बुन्देला वंश का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि चन्देल और बुन्देल वंश के शासक बुन्देलखण्ड की शान थे जिन्होंने अपने जीवन में संघर्षो के साथ–साथ उच्चकोटि की ख्यातियां, उपाधियां, संगत और असंगत परिस्थितियों का भी सामना किया। विभिन्न इतिहासकारों के अनुसार चन्देला और बुन्देला वंश के शासन प्रबन्ध और शासन नीतियों में समानता और असमानता के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं परन्तु दोनों ही वंश के शासकों ने सनातन धर्म की रक्षा की, हिन्दुत्व की रक्षा की तथा भारतीय संस्कृति का अस्तित्व बनाये रखा।

इन वंशों का योगदान, अद्वितीय, श्रेष्ठ और बहुमूल्य माना जाता है। इन शासकों ने सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक क्षमताओं को विकसित किया। बुन्देला और चन्देला वंश के शासकों की अमर गाथायें, वीरगाथायें तथा पौराणिक कथायें इतिहास के पन्नों में अमरत्व को समेटे हुये हैं जिनका कि युगों–युगान्तर तक इतिहासकार, अनुसंधानकर्ता, वास्तुकला प्रेमी, साहित्यकार, शिक्षाविद् और धर्मशास्त्रीय उनकी समय–समय पर महानताओं का यश और कीर्तियों की व्याख्या करते रहेंगे।

चन्देला और बुन्देला वंश के बनाये गये ऐतिहासिक, मन्दिर, तड़ाग, बगीचे, नहरें, महल, स्मारक तथा कलाकृतियां उनके गौरव और महानता की कहानी कहती हैं। दोनों वंशों के शासक बुन्देलखण्ड के इतिहास में ही नहीं बल्कि सारे विश्व के इतिहास में ख्याति अर्जित किये हुये हैं।

---

1. डा0 रमेश चन्द्र श्रीवास्तव, "बुन्देलखण्ड–साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक वैभव, पृ0 162, बुन्देलखण्ड प्रकाशन, बांदा।

द्वितीय अध्याय

(1) सैन्य दृष्टि से दुर्गों की महत्ता एवं आवश्यकता

(2) दुर्गों के प्रकार

(3) बुन्देलखण्ड के दुर्गों का स्थापत्यकला की दृष्टि से वर्गीकरण।

(4) बुन्देलखण्ड के दुर्गों की स्थापत्यकला एवं सैन्य दृष्टि से उनका समन्वय।

(1) सैन्य दृष्टि से दुर्गों की महत्ता एवं आवश्यकता

सैनिक दुर्ग रचना के इतिहास में भारतीय दुर्गों का महत्व एवं संरचना अद्वितीय एवं उत्तम है। मध्यकालीन दुर्ग व्यवस्था में दुर्गों का अभूतपूर्व रक्षात्मक महत्व था। भारतवर्ष में ही नहीं, वरन् विदेशों में भी बड़े कलात्मक व अजेय दुर्गों का निर्माण मध्यकाल में हुआ। दुर्ग एक अतीत की कहानी बताते हैं, जिनका सम्बन्ध राजनीतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक सामाजिक और आर्थिक दृष्टिसे विशेष महत्वपूर्ण है।

सैनिक दुर्ग रचना के इतिहास में भारतीय दुर्ग व्यवस्था एक विशिष्ट स्थान रखती है। यूरोपियन, एशियन (विभिन्न देशों), अफ्रीकन तथा लैटिन देशों के दुर्गों से भारतीय दुर्ग और गढ़ियां एक अलग स्थान रखती हैं। भारतीय दुर्ग और गढ़ियों का कलात्मक दृष्टि से महत्व अनुपम और अद्वितीय है। भारतीय दुर्ग विश्व के अन्य दुर्गों से भिन्नता एवं कलात्मकता को प्रदर्शित करते हैं।

भारतीय दुर्गों का वर्णन भी विश्व के समस्त दुर्गों में श्रेष्ठ है। इनके निर्माण में सुरक्षा के अतिरिक्त वैभव प्रदर्शन का भी विशेष महत्व है। इन दुर्गों की दीवारें मोटी व ऊँची हैं जिनके बीच–2 में ऊँची मीनारें तथा दरवाजे हैं परन्तु इनकी रक्षा व्यवस्था पाश्चात्य देशों के दुर्गों के समान सुदृढ़ न थी। इन दुर्गों में सजावट पर विशेष ध्यान दिया गया है। भारत के दुर्गों में विभिन्न प्रकार की नक्काशी, मीनाकारी, दरवाजे, झरोखे उनके अन्दर पाये जाने वाले कुण्ड, बावड़ियां, कुएं, बाग, नौकायन, तालाब, शयनकक्ष, मन्त्रणाकक्ष, मन्दिर, सड़कें, गलियां, बुर्ज तथा आन्तरिक चौपालें एक विशिष्ट महत्ता को समेटे हुए है।

"भारत में 18वीं शताब्दी के मध्य पुरानी दुर्ग कला पर आधारित दुर्गों की रचना हो रही थी, जैसा कि पूना व गोलकुण्डा से विदित होता है जबकि तत्कालीन यूरोप में दुर्गों का निर्माण सुरक्षा के सर्वथा नवीन सिद्धान्तों के आधार पर विशेषकर भारी तोपों की सुरक्षा को दृष्टि मेव रखकर किया जा रहा था।"[1]

---

1. मध्य भारत मार्ग निर्देशिका , श्री महावीर प्रसाद सक्सेना, नूतन प्रकाशन मन्दिर, ग्वालियर।

दौलताबाद और बिहार में तोपें रखने के लिए कुछ किले बनाए गए थे लेकिन पाश्चात्य सैनिकों के भारत में प्रवेश के बाद ही यहाँ की दुर्ग व्यवस्था में सुधार हुआ। उदाहरण के लिए कलकत्ता के फोर्टविलियम व मद्रास के फोर्टसेंट जार्ज दोनो ही तोप खाने की विनाशकारी शक्ति से सुरक्षा को दृष्टि में रखकर बनाये गये थे।

भारत में रक्षात्मक किले असंख्य हैं। राजस्थान में तो प्रत्येक पहाड़ी पर किलेबन्दी मिल जायेगी। राजस्थान के राजपूतों जैसे जादौन, शेखावत, नाथावत, राजावत, हाडा, भाटी, राठौर तथा चौहान के द्वारा राजस्थान के विभिन्न कस्बों व नगरों के किले व गढियाँ बनायी गई थीं जोकि राजपूतों के अतीत के वैभव की पराकाष्ठा है। राजस्थान में भरतपुर ,जयपुर ,(नाहरगढ़, आमेर, जयगढ़) कुम्भलगढ़, लक्ष्मणगढ़, बीकानेर का लालगढ़ तथा चित्तोरगढ़– ये विशेष किले है जो राजपूतों की गौरवगाथाओं और वीरगाथाओं की प्रशंसा करते है।

राजस्थान के बने किले 600 से 2500 फीट की ऊँची चोटियों पर स्थित है। इनका निर्माण यहां के तत्कालीन शासकों द्वारा पड़ोसी राजाओं के आक्रमण से सुरक्षा की दृष्टि से किया गया था। ये दुर्ग बड़े लम्बे चौड़े है एवं दीवारों की दो–दो, तीन–तीन कतारों से घिरे हुए है। ये कतारें मीलों लम्बी हैं–जैसे उदाहरण के लिए देहली और आगरा का किला विशेष महत्व रखते हैं। ये तीनों ओर से जलाशयों से घिरे है तथा गिन्जी का किला एक विशेष महत्व रखता है जोकि तीन ओर से पहाड़ियों से घिरा है तो एक परदा दीवार से घिरी हुई है और **citadel** बीच की सबसे ऊँची चोटी पर स्थित है।

"भारतीय उपमहाद्वीप में सर्वत्र ही चट्टानों की बहुतायत है। दुर्ग के निर्माण में द्वार की रक्षा व्यवस्था को काफी महत्व दिया गया है। अधिकांशत दुर्ग रचना ऊँचे पहाड़ी की चोटी पर की जाती थी। द्वार की ओर का भाग या तो एक दम ढलवां होता था या काटकर ऊबड़–खाबड़ बनाया जाता था जिसके कारण द्वार पर चढ़ना दुसाध्य हो सके"।[1]

किले के आन्तरिक मार्ग पर छः–सात दरवाजे होते थे जोकि सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग था। सीधी दीवारें भूमि के तल से सीधी ऊपर बनाई जाती थी। उनकी सुरक्षा के लिये गहरे व चौड़े गड्ढे या नदी के मोहाने होते थे। जो दुर्ग पहाड़ियों पर स्थित थे उनकी भारी दीवारों की सुरक्षा गिन्जी व गोलकुण्डा के आधार पर बनी हुई है। दौलताबाद में एक गहरी खाई दुर्ग की सुरक्षा के लिये बनाई गई थी जबकि बिदार के दुर्ग में शहर को घेरकर खंदक बनाई गई थी। किलों की

1. मध्य भारत मार्ग निर्देशिका , श्री महावीर प्रसाद सक्सेना, नूतन प्रकाशन मन्दिर, ग्वालियर ।

बनावट उनकी दीवारें, दरवाजे, ढालू मार्ग, खाईयों, खंदकों का सुरक्षा की दृष्टि से एक विशेष महत्व है। इतिहासदि, पुरातत्वविद् और वास्तुकला शास्त्री इनका अवलोकन कर इनके महत्व का स्पष्टीकरण करते है। भारतीय दुर्गों में चित्तौरगढ़, ग्वालियर, तुगलकाबाद, दौलताबाद, गोलकुण्डा, विदार, झॉसी, पूना, इन्दौर के किले विशेष महत्व रखते है जिनका सम्बन्ध एतिहासिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि सैन्य दृष्टि से भी है।

"In describing the forts. I have kept in view their specialities. For instance, Agra Fort abounds in buildings and these are mentioned in the wirte up but not those in Chittor fort whose fort was valour."[1]

सुरक्षा मुख्यतः युद्ध क्षेत्र को ध्यान में रखते हुये की गई थी। दुर्ग की दीवारों में अधिकांश दो–2 लूप होल्स हुआ करते थे जिनमें एक दूर मार के काम आता था तथा दूसरा निचली मार के लिये काम आता था। कुछ लूप होल्स अन्दर की ओर खुलते थे जिनकी कि लम्बाई, चौड़ाई 31/2 वाय हुआ करती थी। इस प्रकार के लूप होल तुगलकाबाद के किले में मौजूद है। चित्तौड़ के किले में कुछ लूप होल्स तीन भागों में विभाजित है। बीजापुर, फतेहपुर, आगरा में बने लूप होल्स में पत्थर का एक सुरक्षात्मक हुड बनाया गया है जो कि तोपची को सुरक्षा प्रदान करता था।

"मैकेकोलेशन्स का उदय पश्चिमी राष्ट्रों में हुआ। ये वे छिद्र है, जोकि दुर्ग द्वार के मार्ग की छतों में बनाये जाते है या कोरविल्स और दीवारों की पैरामिड और दरवाजों के ऊपर बने होतें थे। इनका प्रयोग खौलता हुआ द्रव, पत्थर, मिसाइल इत्यादि फेंकने में दुश्मन पर किया जाता था। दुर्ग द्वारों पर इनका प्रयोग दुश्मनों की मशालों को बुझाने के लिये किया जाता था जिन्हे दुश्मन दरवाजे जलाने के लिये लाते थे। पलूशेन्स वेजीटिन्श के कथनानुसार ऐसी छजरियों का होना आवश्यक है जिनके द्वारा दुश्मनों की मशालों पर पानी डाला जा सके । मेकोकोलेशन्स का निर्माण दीवारों की मेड़ो पर व मीनारों पर दुश्मन के सफल ऑपरेशन्स को विफल करने के लिये किया जाता था।"[2]

13वीं शताब्दी से पूर्व मेकोकोलेशन्स युद्धों में प्लेटफार्म या इसी प्रकार के अस्थाई पत्तों के चबूतरे बनाये जाते थे। बाद में कैरोविल्स के बीच में स्थान देकर मेकोकोलेशन्स का इस्तेमाल किया जाने लगा। मेकोकोलेशन्स का सबसे पहले प्रयोग 1354 में फिरोजशाह तुगलक ने अपने दुर्ग में किया था।"[3]

---

1. Amrit Verma "Forts of India"Publication Division, Ministry of Information & Brod Casting Govt.of India,
2. मध्य भारत मार्ग निर्देशिका , श्री महावीर प्रसाद सक्सेना, पेज सं0 7 नूतन प्रकाशन मन्दिर, ग्वालियर ।
3. मध्य भारत मार्ग निर्देशिका , श्री महावीर प्रसाद सक्सेना, पेज सं0 8 नूतन प्रकाशन मन्दिर, ग्वालियर ।

दुर्गों की संरचनायें और उनकी बनावटें सुरक्षा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी क्योंकि सुरक्षात्मक दृष्टि से बुन्देलखण्ड के किले और गढियाँ अपना विशेष महत्व रखते है। दुर्गों के दरवाजे बड़े मजबूत व शक्तिशाली थे। इन दुर्गों में विदार, दौलताबाद और गोलकुण्डा के प्रमुख दुर्ग है। "इन किलों में वारवीकन्स होते हैं जो सामान्यतः ऐसी दीवारों से बने होते थे जोकि दरबाजे से आगे की ओर निकली हो। दरबाजों के अन्त में टावर होता है तथा बीच का मार्ग पैरापेट से उभरते हुये मैकोकोलेसन्स के द्वारा सुरक्षित होता था जैसा कि गोलकुण्डा व विदार के किले में है। कुछ किलों में दरबाजों के बीच में दालान होते हैं जैसे कि गिन्जी व दौलताबाद के किले में है।"[1]

पुरातात्विक प्रमाणों के अन्तर्गत, पुराणों में वर्णित, वेद, शास्त्र एवं उपनिषदों में वर्णन के आधार पर दुर्गों का एक विशेष महत्व है। किलेबन्दी करना प्राचीन समय की एक स्थापत्य कला है। किलों, दुर्गों एवं गढ़ियों का वर्णन भारतीय पौराणिक कथाओं, रामायण एवं महाभारत में भी मिलता है। महाभारत के अध्याय 11 में दुर्ग एवं किलों का वर्णन है। अनुसंधानकर्ता, इतिहासकार, एवं पुरातत्वविद के विचारों और परिकल्पनाओं में विभिन्न प्रकार के मतों में भिन्नता मिलती है।

दुर्गों एवं गढ़ियों के बारे में कुछ अंधविश्वास एवं रूढ़िवादी परम्पराओं के प्रमाण भी देखने को मिलते हैं। ऐतिहासिक वृतान्त और ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर मूल्यांकन किया गया कि परम्परागत एवं रूढ़िवादी विचारों का कोई औचित्य नहीं है। किलों व गढ़ियों के सम्बन्ध में पौराणिक रचनाओं, रीतिरिवाज, सिद्धान्तों, वाद–विवादों में भी किलों के निर्माण से सम्बन्धित बहुत से लेख एवं उदाहरण मिलते हैं कि सैनिक दृष्टि से दुर्गों का विशेष महत्व है।

भारतवर्ष में जब राजाओं, जमींदारों का शासन था उस समय किलों एवं गढ़ियों का निर्माण काफी तेजी से हुआ परन्तु बदलते हुये परिवेश में किलों और गढ़ियों का औचित्य, उनका वैभव, गौरव तथा उनकी उत्कृष्टता नष्ट होती जा रही है। वर्तमान समय में किलों और गढ़ियों का औचित्य एवं उनका स्वरूप और उनका अस्तित्व नष्ट होता जा रहा है। राजतन्त्र, प्रजातन्त्र में बदल गया। राजाओं की आर्थिक स्थिति काफी कमजोर हो गई क्योंकि जीविका के साधन समाप्त होते चले गये। उसी तरह से दुर्गों एवं गढ़ियों का अस्तित्व धीरे–धीरे मिटता चला गया।

बुन्देलखण्ड के अधिकांशतः किले एवं गढ़ियां नष्ट होते जा रहे हैं व उनकी कोई देखभाल नहीं है। किलों की गुर्जें, मीनारें, गुम्बदें, टोड़ियां और छज्जे टूटते जा रहे हैं तथा किले एवं

---

1. मध्य भारत मार्ग निर्देशिका , श्री महावीर प्रसाद सक्सेना, पेज सं0 8 नूतन प्रकाशन मन्दिर, ग्वालियर ।

गढ़ियों का सौन्दरीकरण समाप्त होता जा रहा है तथा ये सब टीले के रूप में परिवर्तित होते जा रहे हैं।

किले एवं गढ़ियों के दरबाजे, किले के चारों ओर की खाइयां, खिड़कियां अपनी अतीत की कहानियों के साथ मौन एवं स्तब्ध खड़े हुये हैं। कभी इन निर्जीव चीजों की एक विशेष उपयोगिता थी परन्तु वर्तमान में दरवाजों में फाटक व दीवारों में छज्जियां और टोड़ियां टूटी–फूटी दिखती हैं। किले के अन्दर दल्लान एवं दीवारें आज सिसकियां भर रहे हैं। उनकी मरम्मत एवं देखभाल करने वाला कोई नहीं है।

किलों के विशाल फाटक जिनमें लोहे के कुलाव लगे हुये हैं तथा कुछ किलों को बहुत सुन्दर ढंग से तरास कर गोल किया गया है परन्तु समय की मार ने उनको शक्तिहीन एवं जीर्ण–शीर्ण बना दिया। किले में पाये जाने वाले छिद्र तथा होल्स अपनी प्राचीनता की उपयोगिता को व्याख्यान करने में वधिर हो चुके हैं। आज भी बहुत से किलों एवं गढ़ियों में तोपें हैं, विशाल एवं भव्य लकड़ी के फाटक हैं जो कि विभिन्न ऐतिहासिक युगों का परिचय देते हैं परन्तु राजतन्त्र का प्रजातन्त्र में परिवर्तन हो जाने से आज यह सब कहानियां और चुटकुले बनकर रह गये हैं।

सैनिक दृष्टि से दुर्गों का महत्व एवं आवश्यकता एक सैन्य अध्ययन, ऐतिहासिक अध्ययन और पुरातन शास्त्र का भी अध्ययन है। भारत सरकार ने विभिन्न प्रांतों में इन किलों एवं गढ़ियों की रक्षा करने के लिये पुरातत्व विभाग, पर्यावरण विभाग एवं वास्तुकला और स्थापत्य कला विभाग खोल दिये हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने हर जिले में पुरातत्व एवं पर्यावरण विभाग खोल करके इस सांस्कृतिक धरोहर को बचाने का प्रयास किया है क्योंकि किले एवं गढ़ियों के अस्तित्व के मिटने के साथ–2 इतिहास, भूगोल, राजनीति शास्त्र एवं पुरातत्व विज्ञान के आयाम भी बदलते जा रहे हैं। इस कारण से हर भारतीय नागरिक का कर्तव्य है कि दुर्गों को बचायें न कि उनको नष्ट करें।

दुर्गों के इतिहास में एवं गढ़ियों की वीरगाथाओं में भारत की संस्कृति एवं सभ्यता छिपी हुई है। दुर्गों की तकनीकी एवं मानचित्र अपने आप में विशिष्ट अभिलक्षण है। वर्तमान समय में बनाने वाले कारीगर और वास्तुविद् मिलना बड़ा मुश्किल है क्योंकि उन कारीगरों की सोच आधुनिक कारीगरों से बिल्कुल अलग थी। उनकी सोच में राजा और प्रजा का हित हुआ करता था। किले के दरवाजे बनाते समय उनमें बहुत सारी धार्मिक आस्थायें भी छिपी हुई थीं, दरवाजों के नाम रामायण व महाभारत के पात्रों के आधार पर रखे जाते थे। यदि कोई पात्र वीरता को प्रदर्शित करता है तो उसी के आधार पर दरवाजे का नामकरण कर दिया जाता था।

किले का अर्थ रक्षक भवन या सुरक्षा का प्रबन्ध। किले हमेशा भूमि से ऊपर बनाये जाते थे। जैसे कि गिन्जी, दौलताबाद, ग्वालियर, चित्तोड़गढ़, झाँसी, जयपुर का नाहरगढ़ और आमेर के किले जमीन से ऊपर उठ कर पाहड़ियों पर बनाये गये। गोलकुण्डा को दोहरी दीवार के द्वारा सुदृढ किया गया था और तीसरी रक्षा पंक्ति को प्रकृति व कला दोनों का सहारा प्राप्त हुआ। कूटनीति युद्ध के आधार पर किलों की संरचना और उनका निर्माण किया जाता था।

शांति तथा युद्धकाल दोनों में ही किलों की गरिमा व गौरव था। युद्ध के समय विपक्षी या विरोधी राष्ट्र की क्रियाशीलता का हर समय ज्ञान रखना पड़ता था जिससे किले एवं गढ़ियों की सुरक्षा बनी रहे। किलों का सम्बन्ध धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक एवं शैक्षणिक है। पुरातत्वविद्, इतिहासकार, शिक्षाविद्, अनुसंधानकर्ता, वास्तुकला शास्त्री, पर्यटन विशेषज्ञ और ज्योतिष शास्त्री भी किलों के सम्बन्ध में गहनता व रुचि रखते हैं। किले एवं गढ़ियां इतिहास की छटा लिये हुये हैं।

भारतवर्ष में किलों एवं गढ़ियों के अन्दर बाजार, अस्त्र–शस्त्र बनाने के कारखाने, तोप बनाने के कारखाने, बारूद को तैयार करना, मूर्ति एवं चित्रकारी करने वालों की दुकानें, बुनकरों के मकान, कालीन बनाने वालों के मकान, मन्दिर के पुजारी और किले में काम करने वाले कर्मचारी जैसे माली, कुम्हार, चर्मकार, जुलाहे, रंगरेज, मोची, भिस्ती, मुनादी पीटने वाला उद्घोषक, वसोर, मेहतर, चौकीदार, चपरासी, दफ्तरी, डाकिया, अश्व सेवक, आदि के निवास स्थान हुआ करते थे, परन्तु वर्तमान में दुर्ग एवं गढ़ियों में आवास जिनमें कभी लोग रहते थे जीर्ण–शीर्ण और खण्डहर हो चुके हैं।

अश्व शालायें सूनी पड़ी हैं, कभी उनकी शान भूटानी और काबुली घोड़ों से हुआ करती थी परन्तु समय की मार से आज समस्त अश्व शालायें रिक्तता को महसूस कर रही हैं। अश्व शालायें अलग–2 तरह की विभिन्न किलों एवं गढ़ियों में मिलेंगी। ग्वालियर के किले की अश्वशाला, चित्तौड़गढ़, रणथम्भौर की अश्वशालाओं से आकार एवं संरचनाओं में भिन्न दिखाई पड़ती है। इतिहासकारों ने चित्तोड़गढ़ का गढ़ एवं अश्वशाला समस्त भारतवर्ष के किले एवं गढ़ियों से श्रेष्ठ बतलाई है। पुराने लोगों की कहावतों के अनुसार–

तालों में ताल भोपाल ताल, और सब तलैयां
रानियों में रानी पद्मावती, और सब गधइयां
गढ़ है चित्तौड़गढ़ और सब गढ़इयां

बुन्देलखण्ड के दुर्ग एवं गढ़ियां विशाल एवं उच्च पहाड़ियों पर निर्मित की गई थीं परन्तु वर्तमान बदलते हुये परिवेश में आज इनका अस्तित्व समाप्त होता जा रहा है। झाँसी जिले की गढ़ियों एवं किले जैसे– गुरसरांय, मोंठ, टहरौली, बरूआसागर, एरच कस्वों के दुर्गों का अस्तित्व धीरे धीरे समाप्त होता जा रहा है। पुरातत्व विभाग, पर्यटन विभाग तथा राज्य सरकार के संस्कृति एवं पर्यावरण विभाग की ओर से इनकी कोई देख–रेख व संरक्षण नहीं है। झाँसी का किला भी कई स्थानों से टूट चुका है, परन्तु उसकी ओर राज्य सरकार का कोई ध्यान नहीं। झाँसी और कालिंजर के दुर्गों का महत्व अनुपमीय और अतुलनीय है। झाँसी का किला साहित्यिक दृष्टि से, ऐतिहासिक दृष्टि से, राजनैतिक दृष्टि से और सैन्य विज्ञान की दृष्टि से, अनौखेपन को समेटे हुये है। झाँसी के किले का सम्बन्ध 1857 के विद्रोह से है। झाँसी की रानी के वंशज मराठाओं ने इस किले को कर्मभूमि बनाया था तथा रानी झाँसी के समय तक इस किले का सम्बन्ध प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के विगुल बजाने में बड़ा महत्व रखता है।

भारत में रक्षात्मक किले अनगिनत हैं। राजस्थान में प्रत्येक पहाड़ी पर किलेबन्दी मिल जायेगी परन्तु वर्तमान में हमारे देश में राजाओं का अस्तित्व मिटता चला आ रहा है उसी के साथ–2 दुर्ग और गढ़ियों का भी अस्तित्व मिटता चला आ रहा है। भारतीय उपमहाद्वीप में राजतन्त्र काफी समय तक चला इसके पश्चात फ्रांसीसी, पुर्तगाली, डच और ईस्टइण्डिया कम्पनी आई। इन सभी लोगों ने राजतन्त्र को कहीं पर बढ़ाया और कहीं पर घटाया। ईस्टइण्डिया कम्पनी ने राजतन्त्रों को धीरे–2 अपने बस में किया और उनको अपना गुलाम बनाकर धीरे–2 खोखला कर दिया।

राजवंशों का अस्तित्व मिट जाने से दुर्ग एवं गढ़ियों का अस्तित्व मिटता चला गया। आज सारे दुर्ग एवं गढ़ियां पुराने अस्तित्व की कहानियां, संस्कृति, सभ्यता, संस्मरण, स्मारक और ऐतिहासिक तत्वों को उजागर करते हैं परन्तु ये सब निर्जीव और शक्तिहीन हो चुके हैं। मिटते हुये अस्तित्व के साथ–2 किले की संरचनायें उनका आकार, खूबसूरती और बनावट धीरे–2 समाप्ति की ओर जा रही हैं। समय की मार ने इन सभी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत को नष्ट करने में कमी नहीं छोड़ी है।

सैनिक दृष्टि से दुर्गों का महत्व एक सारगर्भित और सर्वयुक्त चिन्तन का विषय है। दुर्गों का महत्व अलग–2 समय में अलग–2 रहा है। दुर्गों के बनाने से उनका संरक्षण करना अधिक कठिनतम है क्योंकि वर्तमान समय में दुर्ग धीरे–2 क्षय होते जा रहे हैं। भविष्य में जब समस्त दुर्ग एवं

गढ़ियों का ह्रास हो जायेगा तो पुरातत्व विदों, इतिहासविदों, सैन्य शास्त्रियों तथा अनुसंधानकर्ताओं के सामने एक समस्या होगी कि किस प्रकार से दुर्गों और गढ़ियों का वास्तविक रूप से अध्ययन कर उसकी सच्चाई को उजागर किया जा सके।

अग्नि पुराण में किले एवं सैन्य शक्ति का वर्णन है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी दुर्ग एवं गढ़ियों के महत्व का वर्णन है तथा उनके संरक्षण का तरीका भी बताया गया है। विद्वानों की धारणा है कि किले एवं गढ़ियां भारतीय संस्कृति के अलग–2 युगों की विरासत है, उनका अस्तित्व मिट जाने पर धीरे धीरे उनका महत्व भी खत्म हो जायेगा। प्राचीनकाल से वर्तमान तक किलों की उपयोगिता एवं महत्व बना हुआ है। किले आज भी कई नगरों की शोभा बढ़ा रहे हैं। गढ़ियां कई ग्रामों एवं कस्वों में अपने अस्तित्व को लिये खड़ी हुई है जिनके द्वारा उस क्षेत्र का महत्व और वर्चस्व बढ़ जाता है।

केन्द्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा भारत के बहुत से किले पर्यटक दृष्टि से कमाई के साधन हैं जिनसे आने वाली आय से पर्यटक विभाग के कर्मचारियों का पालन पोषण हो रहा है। हमारे देश में राजस्थान एक ऐसा प्रान्त है जहां पर दुर्गों एवं गढ़ियों से 10 प्रतिशत प्रान्तीय आय का साधन है। राजस्थान सरकार अलग–2 राजपूत वंशों के द्वारा बनाये गये किलों की वर्तमान में देखभाल कर रही हैं।

मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के कई किलों को विश्व के अनेक पर्यटक लोग भ्रमण की दृष्टि से देखने आते हैं जिससे इन किलों एवं गढ़ियों का महत्व बढ़ जाता है। पर्यटक इटली, जर्मनी, फ्रान्स, इंग्लेण्ड, बेल्जियम, कनाडा, अमेरिका, मैक्सिको तथा रूस से आते हैं जोकि इन किलों और गढ़ियों का भ्रमण कर इनकी उपयोगिता को अत्यधिक बढ़ा देते हैं। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश सरकार के पर्यटक विभागों ने किलों के रख रखाव और सौन्दरीकरण करने का प्रयास किया है जिससे उनका और अधिक महत्व बढ़ जाये।

बुन्देलखण्ड का हृदय झाँसी का किला एक ऐतिहासिक दृष्टि के साथ–2 पर्यटक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। पर्यटक लोग 2 प्रतिशत झाँसी दर्शन के लिये आते हैं तथा झाँसी के किले का भी भ्रमण करते हैं क्योंकि झाँसी का किला एक विश्व प्रसिद्ध महत्व रखता है।

कालिंजर और झाँसी के किले दोनों ही ऐतिहासिक दृष्टि से अपना वैभव समेटे हुये हैं परन्तु पर्यटक दृष्टि से देखा जाये तो झाँसी का किला कालिंजर किले की तुलना में अधिक श्रेष्ठ एवं महत्वशाली है। दुर्गों का महत्व और उनकी उपयोगिता क्षेत्रीय कारकों पर निर्भर करती हैं। वर्तमान

समय में पर्यटक विभाग ने किलों के आस–पास होटल, मोटल, पर्यटक कॉटेज, रिसोर्ट, लॉज जैसी सुविधायें उपलब्ध करा दी हैं जिससे पर्यटकों का झुकाव इनकी ओर बढा है। पर्यटक की सुख सुविध ाओं के लिये आवागमन के अच्छे साधन भी उपलबध हैं। जैसे सड़क मार्ग, वायुमार्ग, जल मार्ग, तथा रेलवे मार्ग इसके अतिरिक्त वातानुकूलित बसें, कार, टैक्सी भी उपलब्ध हैं।

दुर्गों का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ना है क्योंकि केन्द्र सरकार व राज्य सरकार ने पर्यटन को एक उद्योग का दर्जा दिया है। पर्यटन भविष्य में जीविका का एक साधन है। भारत सरकार का उत्तरदायित्व है कि दुर्ग एवं गढ़ियों की शान और वैभव बरकरार रहे, उनकी शान और वैभव में किसी प्रकार की क्षति और चोट न पहुंचे। वैसे तो दुर्ग और गढ़ियां निर्जीव और बेजान हैं परन्तु उनकी वैभवता और उनके यश को जानकर, पढ़कर, अनुसंधानकर यह अन्वेषण होता है कि इनका महत्व जीवितों से कम नहीं है।

प्राचीनकाल में दुर्गों का निर्माण युद्ध के लिये, सुरक्षा के लिये तथा वैभव और कीर्ति को प्राप्त करने के लिये राजपुत्रों ने जो अलग–2 वंशों के थे, उन्होंने इनका निर्माण कराया था। शत्रु से लोहा लेने के लिये दुर्ग कवच का कार्य करते थे। बुन्देलखण्ड में चन्देला और बुन्देला वंश शासकों के रूप में रहे जिनके द्वारा अनेक किले एवं गढ़ियों का निर्माण कराया गया था जोकि 16वीं, 17वीं एवं 18वीं शताब्दियों के इतिहास की विवेचना करती है तथा उनके महत्व, गौरव और उनकी शान को व्यक्त करते हैं। किले आज भी विभिन्न युगों की स्थापत्य कला, कसीदा कारी, मीनाकारी, एवं नक्काशी का वर्णन करते हैं। वर्तमान में चित्रकार, मीनाकर, मूर्तिकार और वास्तुविद् को इनका महत्व समझना चाहिये क्योंकि अतीत को वर्तमान से जोड़ने के लिये इन दुर्गों का विशेष महत्व है।

राजवंश धीरे–2 प्रतिकूल परिस्थितियों ने नष्ट कर दिया परन्तु उनकी अचल सम्पत्ति उन दुर्गों और गढ़ियों के कारण अमरता और महत्व का वर्णन करती हैं। इस कारण से उस वंश की ख्याति और उस युग का विकास कितना हुआ, कैसे हुआ, और किस प्रकार हुआ, बतलाता है। सैन्य शास्त्रियों और इतिहासविदों को इन दुर्गों के महत्व का निष्कर्ष निकालकर मानवीय दृष्टिकोंण के समक्ष रखना चाहिये जिससे उनके व्यक्तित्व में मनोवैज्ञानिक, शैक्षणिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, वैज्ञानिक, चारित्रिक परिवर्तन हो सकें। दुर्ग एवं गढ़ियां केवल निर्जीवता को ही प्रदर्शित नहीं करती हैं बल्कि मनुष्य की अपनी भावनाओं को उनसे जोड़कर सजीवता को प्रदर्शित कर सकते हैं। दुर्ग और गढ़ियां आदर्शवाद, यथार्थवाद और प्रकृतिवाद की प्रतीक हैं। जोकि आदर्शपन और प्रकृतिपन के महत्व का प्रतिनिधित्व करती हैं।

(II) दुर्गों के प्रकार

प्राचीन भारत में दुर्गों का निर्माण एक सम्पन्नता, समृद्धता, गौरवता, श्रेष्ठता, वीरता, महानता एवं उत्तमता का प्रतीक था। दुर्गों की बनावट और उसकी संरचना के आधार पर उस रियासत का मूल्यांकन किया जा सकता था कि रियासत आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है या मात्र जीविका चलाने वाली है। राजा के महल तथा दुर्गों के चतुर्दिक गहरी खाइयां खोद दी जाती थीं, ऊँची ऊँची प्राचीरें भी सुरक्षा की दृष्टि से बनाई जाती थीं। नगर के चारों ओर दीवारों को बना दिया जाता था तथा कुछ प्राचीन नगरों एवं कस्वों में, जहां पर किले और गढ़ियां हैं, वहां पर परकोटे का निर्माण कर दिया जाता था। राजस्थान की राजधानी जयपुर नगर में प्रवेश करने पर 2.5 कि0मी0 का परकोटा है जिसे विद्याधर जी ने बनवाया था। मध्य प्रदेश के सागर शहर में भी परकोटा है तथा जनपद झाँसी के अन्तर्गत आने वाली गरोठा तहसील के गुरसरांय में भी परकोटा स्थित है जोकि सुरक्षात्मक दृष्टि से काफी उपयोगी हुआ करते थे।

सीजवार–फेयर भी एक प्रकार का भूमि युद्ध होता है। आधुनिक युग में अत्यन्त भयानक और शक्तिशाली शस्त्रास्त्रों का अविष्कार हो जाने से इनका महत्व नहीं रह गया परन्तु प्राचीन काल में जब तक बारूद व तेल का उपयोग तोपखाने व टैंक के रूप में नहीं किया गया, किलों द्वारा विजय का सबसे ज्यादा भाग निर्धारित किया जाता रहा। यही कारण था कि प्राचीनकाल के सम्राटों, नवाबों, जमींदारों, जागीरदारों, किलेदारों, दफेदारों ने इनको अत्यधिक महत्व दिया। साधारणतः किलों का निर्माण राज्य में कहीं भी कराया जा सकता था परन्तु सबसे पहले राजधानी में ही श्री गणेश किया जाता था। इसका मुख्य कारण यह था कि आजकल की भांति पहले भी सेनाओं का मुख्य उद्देश्य राजधानी पर अधिकार करना था क्योंकि किसी भी देश की राजधानी पर अधिकार कर उस देश के सम्पूर्ण भाग पर अधिकार किया जा सकता था।[1]

सम्राट लोग सर्वप्रथम राजधानी की सुरक्षा का प्रबन्ध करते थे। यह भी स्पष्ट है कि दृढ़ सुरक्षा के लिये किलेबन्दी की जाती थी, भले ही किलेबन्दी प्राकृतिक या अप्राकृतिक हो। उदाहरण के लिये प्राकृतिक किलेबन्दी के अन्तर्गत चार प्रकार के किले आते हैं जो निम्नलिखित हैं:–

---

1. बिग्रेडियर राजेन्द्र सिंह, भारतीय सेना का इतिहास।

1. औदक दुर्ग (वाटर फोर्टीफिकेशन)

2. पर्वत दुर्ग (माउन्टेन फोर्टीफिकेशन)

3. धन्व दुर्ग (डिजर्ट फोर्टीफिकेशन)

4. वन दुर्ग (फोरेस्ट फोर्टीफिकेशन)[1]

औदक दुर्ग को सबसे श्रेष्ठ व उत्तम माना जाता है। इसी प्रकार अप्राकृतिक किलेबन्दी का मुख्य एवं सजीव उदाहरण फान्स की "मेन्जीटोलाइन" को लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त राजधानी व किले के चारों ओर पारिखा या खाई का भी निर्माण किया जाता था। इन खाइयों में पानी भरकर विभिन्न प्रकार के खतरनाक व विषैले जीवों को छोड़ दिया जाता था। झाँसी जिले के मोंठ तहसील के अन्तर्गत आने वाले समथर का किला, जहां गुर्जरों का शासन रहा है, उसके चारों ओर विशाल खाई मौजूद है। जनपद जालौन के रामपुरा एवं जगम्मनपुर, जो सेंगर एवं कछुवाह राजाओं की रियासतें थीं, इन किलों के चारों ओर आज भी खाइयां मौजूद हैं जोकि अतीत के इतिहास का वर्णन करती हैं। खाइयां वास्तव में इन दुर्गो एवं गढ़ियों की सुरक्षात्मक कवच का कार्य करती थीं परन्तु धीरे–2 दुर्गो का अस्तित्व मिट जाने से खाइयां भी धीरे–2 जीर्ण–शीर्ण एवं खण्डित होने की अवस्था में आ चुकी हैं क्योंकि उनका कोई संरक्षक नहीं है।

किलेबनदी को तीन भागों में बांट सकते हैं–

1. कौटिल्य काल के पूर्व की किलेबन्दी,

2. कौटिल्य कालीन किलेबन्दी तथा,

3. कौटिल्य के पश्चात की किलेबन्दी।

कौटिल्य एक प्रतिभाशाली सैन्य विशेषज्ञ था। उनके विचार, सोच, तर्कशक्ति, सिद्धान्त, दृष्टिकोंण, मत तथा परिकल्पनायें कई आगामी शताब्दियों के लिये नवागन्तुक पीढ़ियों को मार्ग दर्शन देती रहेंगी। कौटिल्य के पहले की किलेबन्दी इतनी विकसित तथा योजनाबद्ध नहीं थी तथा न ही किले इतने मतबूत थे जितने कि इसके बाद के काल में थे, भले ही वह आज की दृष्टि से इतने कूटनीतिक ढंग से न रहे हों। प्रागैतिहासिक काल का आज तक कोई लिखित इतिहास नहीं प्राप्त किया जा सका है परन्तु प्राप्त अवशेषों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि भले ही इस समय अलग से मूजबूत किले नहीं रहे हों परन्तु यह निश्चय है कि जिस प्रकार आजकल किलों के द्वारा

---

1. बिग्रेडियर राजेन्द्र सिंह, भारतीय सेना का इतिहास।

सुरक्षा के लिये युद्ध होता है उसी प्रकार गांव की सुरक्षा के लिये कुछ ऐसे प्रबन्ध किये जाते थे ताकि बाहरी शत्रु आसानी से न आ सकें। भारत वर्ष में कुछ ऐसे ठोस प्रमाण नहीं मिले हैं परन्तु अनेक ग्रन्थों से सिद्ध हो चुका है कि भारतीय ग्रामों के चारों ओर भी ऐसी पारिखायें व दीवारें होती होंगी। इस प्रकार के अवशेष पश्चिमी यूरोप व वालकन प्रायद्वीप में ज्यादा मिले हैं। इस युग में दुर्गों के निर्माण के सम्बन्ध में भी अनुमान लगाया गया और डा0 माटीमेर की रिपोर्ट से यह बहुत कुछ सत्य प्रमाणित हो चुका है।

ऋग्वेद में ऐसी जाति का उल्लेख किया गया है जो किलेबन्दी में रहती थी तथा चुर के नाम से प्रसिद्ध थी। हमें ऐसे बहुत से किलों का उल्लेख मिलता है जोकि आक्रमणकारी सेना द्वारा घेरेबन्दी कर नष्ट कर दिये गये थे। एतर्य ब्राह्मणों के 'एनुवल सेक्रीफाइस' वाले भाग में ऐसे तीन अग्नि झीलों का उल्लेख किया गया है जिनमें छिपकर वे (ब्राह्मण) अपने यज्ञ या बलिदान की रक्षा करते थे क्योंकि असुर अग्नि से भयभीत रहते थे। कौस्तकी ब्राह्मणों के अनुसार उपासदस असुरों के किले के रूप में थे और आवश्यकता पड़ने पर असुर लोग इनका पूरा–2 लाभ उठाते थे। ग्रन्थों में कहा गया है कि असुरों ने स्थान के आधार पर किलों का निर्माण करवाया था– जैसे पृथ्वी पर लोहे के व आकाश में सोने के किलों का निर्माण करवाया था।

आदि काल से सुर और असुर दो प्रकार के जीवों का वर्णन है। मनुष्य को कर्मों के अनुसार सुर और असुर की उपाधियां दी जाती थीं। मिल्टन ने "पैराडाई लोस्ड" में स्वर्ग और नरक का वटवारा बताया है तथा शैतान उस कविता का मुख्य पात्र है जिसकी गतिविधियों के आधार पर उसकी तुलना भारतीय असुरों से भी की जा सकती है। शैतान का एक विशाल व्यक्तित्व था तथा उसकी भव्यता के आधार पर ऐसा लगता है कि वह ईश्वर का बहुत बड़ा विरोधी था।

विलियम शैक्सपियर ने मेंगवैथ नामक नाटक में स्कौटलाइन के किले का वर्णन किया है तथा किंगलियर नामक नाटक में भी किले का वर्णन किया है। यूरोप के देशों में किलों में ड्यूक, अर्ल्ड और राजा लोगों का निवास स्थान था।

मनु ने भी किलों के निर्माण व उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुये लिखा है कि राजा को एक अत्यन्त सुदृढ़ व सुरक्षित किले में रहना चाहिए तथा किले को जंगल, वन या जल द्वारा घिरा होना चाहिये। उसने आगे और भी लिखा है कि किले में सुरक्षित एक धनुषधारी, सौ धनुषधारियों को मार सकता था। इस प्रकार किले के निर्माण से एक राजा अपनी राजधानी की रक्षा कुछ ही धनुषधारियों की सहायता से कर सकता था।

प्राचीन काल में सुरक्षा की दृष्टिकोंण से किलों का महत्व बहुत ज्यादा था। इसलिये मनु ने एक स्थान पर कहा कि किले में अच्छे प्रशिक्षित सैनिक, इंजिन्स, पानी व अन्य आवश्यक सामग्री पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिये अन्यथा उसका श्रेष्ठतम उपयोग नहीं किया जा सकता।

राजा एक रक्षक का काम करता है, उसे धर्मप्रिय व न्यायप्रिय होना चाहिये। उसका कर्तव्य प्रजा की सही देखमाल करना है। "जिस वेद वाणी की प्रवृत्ति से संसार में सभी प्राणी आनन्द पाते हैं, उस वेद वाणी को जो कोई अन्यायी राजा प्रचार को रोकता है उसके राज्य में मूर्खता फैलती है और वह धर्महीन राजा संसार में निर्बल व निर्धन हो जाता है।"[1]

उदेहि वाजिन् यो अप्सवन्तरिदं राष्ट्रं प्रविंश सूनृतांवत्।

यो रोहिंतो विश्वमिदं जजान स त्वां राष्ट्राय सुभृतं विभर्तु।।

का० 13 सू. 1 म, 1 ।।

"त्रोदस काण्ड के अनुसार राज्य में सेनापति बलवान होना चाहिये क्योंकि किले की रक्षा करने में सेनापति का विशिष्ठ योगदान रहता था। सुनीतियुक्त इस राष्ट्र में प्रवेश कर उच्च स्थान प्राप्त कर, जो सब जगत का उत्पादक परमेश्वर है उसने बड़े पोषण करने वाले तुझको राष्ट्र रक्षा के हेतु नियुक्त किया है।[2]

कामन्दक ने भी 5 प्रकार के किलों का उल्लेख किया है जोकि कौटिल्य के द्वारा वर्णन किये गये किलों के ही समान है। इनका प्रबन्ध भी कौटिल्य के किलों के प्रबन्ध से मिलता है:–

1. औदक दुर्ग 2. पर्वत दुर्ग 3. वन दुर्ग 4. मही दुर्ग 5. धान्व दुर्ग।[3]

"पुरातात्विक उत्खननों से मिले अवशेषों से यह ज्ञात होता है कि हड़प्पा संस्कृति से लेकर अर्वाचीन काल तक दुर्ग बनाने की परम्परा विद्यमान रही है। साहित्य में विभिन्न प्रकार के दुर्गों की चर्चा है। मानसार में सैनिक प्रयोजन के लिये बनाये गये दुर्गों को सात श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:–

1. गिरि दुर्ग 2. वन दुर्ग 3. सलिल दुर्ग 4. पंक दुर्ग 5. रथ दुर्ग 6. देव दुर्ग 7. मिश्र दुर्ग।[4]

---

1. "वेद और जीवन" श्री नाथूराम गुप्त, पेज 385, सार्वदेशिक प्रेस, पटौदी हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली।

2. वही पेज, 386।

3. वही पेज, 386।

4. बुन्देलखण्ड का पुरातत्व", डा० एस०डी० त्रिवेदी, पृ० 36, रामसेवक खडग, सन्तोष प्रिंटिंग प्रेस, झाँसी।

"इन दुर्गों के निर्माण के लिये स्थापत्य सम्बन्धी निर्देश भी वास्तुग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। एक विवरण के अनुसार वे गोल, वर्गाकार या आयताकार बनाये जाते थे। उनके आसपास पारिखा (चारदीवारी) एवं वप्र (घेरा) होता था। प्रवेश व वाह्य गमन के लिये कई द्वार (प्रतोली) होते थे। उसके अन्दर प्रदक्षिणा सोपान तथा गूढ़ भिट्टि सोपान (गुप्त रास्तों को जाने वाली सीढ़िया) बनाये जाने चाहिये। घेरे वाली दीवार के बीच शिखर बने हों, जिन पर युद्ध सामग्री रखी जा सके।[1]" दुर्गों के अन्दर वावड़ियां, तालाब एवं कूप बनाये जाते थे जिससे कि अन्दर रहने वाले लोगों के लिये जल की व्यवस्था हो तथा किलों के अन्दर नालियां बनाई जाती थीं जिससे कि बरसात का पानी और आवासों का पानी आसानी से बह सके। इनके अन्दर चौपाल तथा विशाल चबूतरे बनाये जाते थे जिससे लोग उन पर बैठकर मन्त्रणा कर सकें। किलों के अन्दर आवासीय भवन भी निर्मित थे जोकि सही व व्यवस्थित ढंग से बने थे। उनकी स्थिति से मालूम पड़ता है कि उन दुर्गों को बनाते समय नक्शा नवीस व वास्तुकला शास्त्रियों का विशेष सहयोग लिया जाता था।

"ऋग्वेद में अनार्यों के दुर्गों व पुरों का उल्लेख है जो इस सभ्यता के आधारभूत नगरों से मेल खाते हैं। ये दुर्ग और पुर पत्थर (अश्यमयी) और लोहे (आमसी) से बने होते थे। आर्य देवता इन्द्र को उन्हें नष्ट करना पड़ा था जिसके कारण उसका नाम पुरन्दर पड़ा था।[2]"

"वैदिक युग में जंगम यन्त्रों द्वारा दुर्ग तोड़ने (फरचरिष्णु), दुर्गों के बाहर मिट्टी की प्राचीर बनाने, दुर्गों का घेरा डालने या आग से उन्हें नष्ट करने के सैनिक कृतों के उल्लेख मिलते हैं।[3]"

"मौर्य साम्राज्य में गंगा और शौंड़ के संगम पर 9 मील लम्बी दूरी में एक मील की चौड़ाई में पाटिल पुत्र का नगर बसा था। इसके चारों ओर एक गहरी खाई थी, जिसमें नाव चला करती थी और शौंड़ नदी से पानी आता था। लकड़ी के लट्ठों की विशाल शहरपनाह इसके बचाव के लिये बनाई गयी थी। उसमें छिद्र बने हुये थे जिनमें सैनिक वांण छोड़ते थे। उसमें 64 द्वार और 570 बुर्ज थे। पटना के संग्रालय में लकड़ी की चाहरदीवारी के अवशेष मौजूद हैं। नगर की नालियां शौंड़ में गिरती थीं। नगर अधिकतर लकड़ी का बना था, जिससे बाड़ से सुरक्षित रह सके।[4]" पाटिलपुत्र

---

1. बुन्देलखण्ड का पुरातत्व", डा0 एस0डी0 त्रिवेदी, पृ0 37, रामसेवक खडग, सन्तोष प्रिंटिंग प्रेस, झाँसी।

2. "प्राचीन भारत", राधा कुमुद मुखर्जी, पृ0 24, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली।

3. वही, पृ0 28।

4. वही, पृ0 64।

के नगर की रचना दुर्ग की तरह थी। इतिहासविद् तथा सैन्य शास्त्रियों के अनुसार पाटिलपुत्र नगर नहीं था, बल्कि दुर्ग था।

रामायण में हनुमान जी ने लंका के आंखों देखे किलों का अत्यन्त ही सजीव वर्णन किया है। जैसे–

गिरि पर चढ़ लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग विशेषी।।[1]

कहु कपि रावन पालित लंका । केहि विधि दहेउ दुर्ग अति बंका।।[2]

उनके अनुसार दरवाजे विशाल और ठोस थे तथा इनमें लोहे के बोल्टों का उपयोग किया गया था। किलों के दरबाजे और दीवारों पर विभिन्न प्रकार की मशीनें व हथियार रखे थे। किले की दीवारें मजबूत, लम्बी विभिन्न प्रकार के खूबसूरत प्रस्तरों से युक्त थीं। किलों की दीवारों के सहारे चारों ओर खाई बनी थी इस खाई में स्वच्छ जल भरा था जिसमें अनेकों प्रकार के खतरनाक तथा भयंकर जन्तु डाल दिये गये थे। खाई के ऊपर चार पुल बने थे जो बड़े भयंकर, नाशक इंजिन्स द्वारा सुरक्षित थे। किले जल, वन द्वारा भी घिरे हुये थे। दुर्गों की सुरक्षा के लिये हजारों राक्षस नियुक्त थे।

"अयोध्या का वर्णन भी इतिहासविद्, शिक्षाविद् तथा वास्तुकला शास्त्रियों द्वारा बड़े रोचक ढंग से किया गया है। जैसे कि अयोध्या 12 योजन लम्बी व 10 योजन चौड़ी थी। इसके अन्दर से होकर एक लम्बी व चौंड़ी सड़क गुजरती थी। प्रत्येक वस्तु का विशेष क्रम था। इसके दरबाजे ठोस व मजबूत थे।[3]" नगर एक किले की तरह था, उसमें सभी प्रकार की आवासीय, सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक, वाणिज्यिक एवं आवागमनीय व्यवस्थायें थीं। किले के चारों ओर एक परिखा व खाई थी। किलेरूपी नगर में सभी वर्ग के लोग निवास करते थे इसके अतिरिक्त किले के अन्दर वगीचे, उपवन, कुंज, खेत, चारागाह तथा विशाल मैदान भी उपलब्ध थे।

सुर व असुरों के किलों में ग्रन्थकारों के आधार पर उनकी बनावट में काफी भिन्नतायें थीं। इतिहासकारों व ग्रंथकारों के अनुसार लंका और अयोध्या के किलों रूपी नगर की बनावटों में भिन्नतायें थीं। अयोध्या नगर के अवशेष मिलने पर ज्ञात हुआ है कि राजा दशरथ तथा उनके अन्य वंशजों ने दुर्ग स्थापत्यकला की नीतियां कायम की थीं। शिवतत्व रत्नाकर के एक अध्याय

---

1. श्री रामचरित मानस, सुन्दरकाण्ड, दोहा 2–3, प्रकाशन– गीताप्रेस, गोरखपुर

2. 'वही, दोहा 32–33, ।

3. वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण, बालकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर।

में 9 प्रकार के किलों का उल्लेख मिलता है जबकि महाभारत में केवल 6 प्रकार के किलों का उल्लेख मिलता है। इन 9 प्रकार के किलों में सबसे अच्छा पर्वत दुर्ग व जल दुर्ग तथा सबसे बुरा दास व नर दुर्ग को माना गया है। इस ग्रंथ में बिना किले के राजा की तुलना, बिना विष के सर्प और बिना रट के हाथी से की गई है।

तमिल साहित्य के अनुसार (मदुरैवकन्जी) दुर्ग के चारों ओर झाड़ियों व कांटों से भरा जंगल होता था जिसमें होकर शत्रु आसानी से आक्रमण नहीं कर सकता था। किले के चारों ओर जल से भरी खाई होती थी। दरबाजे विशाल व उनके ऊपर टावर बने होते थे। राजमहल कई खण्ड का बना होता था जिसके ऊपर ताज के रूप में ध्वज लगे रहते थे। इनके अन्दर बाजार भी होते थे जिसमें सभी वर्ग के लोग बिना किसी बन्धन के घूम सकते थे।

अग्नि पुराण, शिवतत्व रतनाकर, महाभारत और तमिल साहित्य के आधार परकिले एवं गढ़ियों की स्थिति में भिन्नतायें एवं विवादास्पद लेख मिलते हैं परन्तु धार्मिक ग्रन्थों में किलों का वर्णन एक विचारणीय और सोचनीय इतिहासविदों, शिक्षाविदों और शोध छात्र एवं छात्राओं का अनुसंध ानीय तर्क परीक्षण भी है। भारतीय लोग हिन्दु होने के कारण धार्मिक पुराणों एवं ग्रन्थों में अधिक आस्थायें रखते हैं जिससे कई प्रकार के प्रश्न मस्तिष्क में उठते हैं। बहुत बातें तो कपोल–कल्पित दिखाई पड़ती हैं परन्तु धर्म का विषय आ जाने पर अधिकांशतः लोग मौन रहते हैं क्योंकि भारतीय संस्कृति में धर्म एक उच्चकोटि की आराधना एवं उपासना का विषय है।

"अग्नि पुराण के अनुसार राजा को दुर्ग देश (दुर्गम प्रदेश) अथवा सुदृढ़ एवं विशाल किले में निवास करना चाहिये। साथ रहने वाले मनुष्यों में वैश्य और शूद्रों की संख्या अधिक होनी चाहिये। दुर्ग ऐसे स्थान में रहें जहां शत्रुओं का जोर न चल सके। दुर्ग में थोड़े से ब्राह्मणों का रहना भी आवश्यक है। राजा के रहने के लिये वही देश श्रेष्ठ माना गया है जहां बहुत से काम करने वाले लोग किसान, मजदूर रहते हों, जहां पीने के लिये वर्षा की राह नहीं देखनी पड़ती हो, नदी, तालाब आदि से ही पर्याप्त जल प्राप्त होता रहता है। जहां शत्रु पीड़ा न दे सकें, जो फल–फूल और धन–धान्य से सम्पन्न हों तथा शत्रु सेना की गति न हो सके और सर्प तथा लुटेरों का भी भय न हो।"[1]

"बलशाली राजा को निम्नांकित छः प्रकार के दुर्गों में से किसी एक का आश्रय लेकर निवास करना चाहिये जैसे–

धन्व दुर्ग– बालू से भरी हुई मरूभूमि को धन्व दुर्ग कहते हैं।

---

1. "अग्नि पुराण" मूल संस्कृत का हिन्दी अनुवाद, पेज नं0 420 गीता प्रेस, गोरखपुर।

मही दुर्ग– जमीन के अन्दर जो निवास करने योग्य स्थान बनाया जाता है उसे महीदुर्ग कहते हैं।

नर दुर्ग– निवास स्थान के चारों ओर अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित भारी सेना का होना नर दुर्ग कहा जाता है।

वृक्ष दुर्ग, जल दुर्ग एवं पर्वत दुर्ग– वे दुर्ग जो दूर घने वृक्षों व पानी से घिरे हुये प्रदेशों अथवा दुर्गम पर्वत मालाओं से घिरे हुये स्थानों को क्रमशः वृक्ष, जल एवं पर्वत दुर्ग कहा जाता है[1]।

"पर्वत दुर्ग सबसे श्रेष्ठ दुर्ग माना जाता है। यह शत्रुओं के लिये अभेद तथा रिपु वर्ग का भेदन करने वाला है। दुर्ग ही राजा का पुर या नगर है वहां हाट, बाजार तथा देव मन्दिर (हनुमान जी का मंदिर, शिव मंदिर तथा शक्ति का मंदिर) आदि का होना आवश्यक है। इसके चारों ओर यंत्र लगे हों जो अस्त्र–शस्त्रों से भरे हों। जल का सुपास हो तथा जिसके सब ओर पानी से भरी खाइयां हों, वह दुर्ग उत्तम माना गया है[2]।"

शुक्रनीति में किले में आवश्यक सामग्री रखने के महत्व को स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि जिस किले में पर्याप्त मात्रा में भोजन तथा अन्य सामग्री न हो उसकी तुलना कारावास के अतिरिक्त किसी अन्य से नहीं की जा सकती है।

अग्नि पुराण में दुर्गों में समय–2 पर क्या कमियां आ जाती हैं उनका उल्लेख किया गया है। राजा को उनका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

1. किले के चारों ओर की खाई का पानी सूख जाना।
2. किले की दीवारों व टावर्स का कमजोर हो जाना।
3. पुराने परम्परागत यंत्रों का उपयोग।
4. निग्लेक्टिड आयुधागार।
5. सैनिकों की उचित संख्या।

अग्नि पुराण एवं महाभारत में जो किलों का उल्लेख किया गया है उनके निर्माण की कला, स्थापत्य कला, रख–रखाव एवं देख–रेख का वर्णन अनूठा, अनुपम व अद्वितीय है। महाभारत के किले तथा प्राचीन भारत के किलों में काफी भिन्नतायें हैं। प्राचीन भारत के किलों में आधुनिकता के प्रमाण भी मिलते हैं। जैसे उनके कमरों का फर्श, रोशनदान, खिड़कियां, किलों के अन्दर बाग, सड़कें और उनमें पानी शुद्ध करने के आधुनिक संयंत्र उपलब्ध थे।

---

1. "अग्नि पुराण" मूल संस्कृत का हिन्दी अनुवाद, पेज नं0 421 गीता प्रेस, गोरखपुर।

2. वही, पृष्ठ 421।

किलों का इतिहास भारत वर्ष में तीन प्रकार के ग्रंथों से मिलता है। धार्मिक ग्रंथ, ऐतिहासिक ग्रंथ और सैन्य ऐतिहासिक ग्रंथ। तीनों ग्रन्थों की आलोचना व समालोचना करने पर किलों की संरचना व निर्माण में कई प्रकार के विचार और स्फुटित मत मिलते हैं।

कौटिल्य–कालीन किलेबन्दी

कौटिल्य ने 5 प्रकार के किलों का उल्लेख किया है जोकि कामन्दक की तालिका से पूर्णतः मिलते हैं। कौटिल्य ने उल्लेख किया है कि किलों की दीवार के निर्माण के समय इस बात का पूर्ण ध्यान रखा जाता था कि उसके बाहर की दीवारों के सहारे कोई जगह तो नहीं छूट गई है। आशय यह है कि किले की बाहरी दीवार व खाई के मध्य कोई जगह नहीं रखी जाती थी जिससे कि कोई वहां चल न सकें। किले के सभी दरबाजे गुप्त व ढके रखे जाते थे। बड़े–बड़े दरबाजों के ऊपर निगरानी मंच (वाचिंग टावर) रखे जाते थे। जयपुर के जयगढ़ और नाहरगढ़ के किलों में वाचिंग टावर आज भी मौजूद हैं। ग्वालियर का किला, जो तोमर वंश के शासक राजा मानसिंह के द्वारा बनवाया गया था, में वाचिंग टावर दक्षिण–पूर्व और पश्चिम–उत्तरकी ओर आज भी बने हुये हैं जो कि तोमर वंश की अतीत की कहानी याद दिलाते हैं।

अर्थशास्त्र के अनुसार किले के 12 दरबाजे होते थे। यह दरबाजे पानी में व सूखी जगह में भी होते थे। किले के दरबाजे दोहरे किवाड़ युक्त तथा किले पर अन्य सर्वघातक मशीनें भी लगाई जाती थीं। किलों के आकार विभिन्न प्रकार के होते थे जैसे – वृत्ताकार, अर्द्धवृत्ताकार, आयताकार तथा स्वास्ताकार। किले के टावर्स में धार्मिक झण्डे लहराते थे। झण्डे वीरता एवं शौर्य के प्रतीक हैं। झण्डे लगाने से किलों, गढ़ियों एवं महलों की सुन्दरता और भव्यता बढ़ जाती थी। झण्डे हर रियासत की अलग–2 कहानियां बतलाते थे क्योंकि भारत वर्ष की जितनी छोटी व बड़ी रियासतें थीं उनके स्वयं के झण्डे थे जोकि उनके राजपुरोहितों व राजगुरूओं द्वारा निर्धारित किये जाते थे।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के चतुर्थ अध्याय में स्वामी, मंत्री, राजा, किला, खजाना, सैना, मित्र, बल यह परस्पर किसी भी राज्य के सात अंग हैं। जिसको कि चतुर्थ अध्याय में संस्कृत श्लोक द्वारा दर्शाया गया है–

स्वाम्यमात्यश्व राष्ट्रच्च दुर्गे कोशो बलं सुह्रत्।
परस्परोपकारीदं सप्ताङ्ग राज्यमुच्यते।।[1]

---

1. "कौटिल्य अर्थशास्त्र", पृ0 26, साधना पॉकेट बुक्स, 39 यू0ए0 बैंग्लोरोड, दिल्ली– 110007।

प्रजा की आपदा में स्थिति रखने के निमित्त ही कोप दण्ड का रक्षण है और पुरवासियों के उपकार के निमित्त दुर्ग का आशय है। यह श्लोक त्रयोदश अध्याय से लिया गया है जिसका कि लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र से मिलता है।

प्रजानामापदि स्थानं रक्षणं कोषदण्डयोः।
पौराश्चैवोपकुर्वन्ति संश्रयायेह दुर्गिणाम्।।[1]

मौन होकर युद्ध करना, अपने जनों की रक्षा करना, मित्र, अमित्र का पाणिग्रहण, सामन्त और वनवासियों की बाधा निरोध के निमित्त ही दुर्ग का विधान बनाया गया है। यह श्लोक त्रयोदश अध्याय से लिया गया है—

तूर्ष्णीं युद्धं जनत्राणं मितामित्रपरिगहः।
सामन्ताटविकाबाधानिरोधो दुर्गमुच्यते।।[2]

दुर्ग में स्थित राजा अपने और पराये शत्रु के पक्ष से पूजित होता है और दुर्ग के व्यवसन से इनमें कोई बात भी नहीं होती है। यह श्लोक त्रयोदश अध्याय से लिया गया है।

स्वपक्षैः परपक्षैश्व दुर्गस्थः पूज्यते नृपः।
एतद्वि दुर्गव्यवसनात्सर्वमेव न विद्यते।।[3]

भृत्यजनों का भरण,, वाहन, दान, भूषण, क्रयपदार्थ, स्थिरता, शत्रु को ताप यह सब दुर्ग के संस्कार से संभव है। यह श्लोक भी इसी अध्याय से लिया गया है।

भृत्यानां भरणं दानं भूषणं वाहनक्रयः।
स्थैर्यं परोपजापम्य दुर्ग संस्कार एव च।।[4]

शास्त्र के ज्ञाता, दुर्ग के विधान जानने वालों ने जल, पर्वत, वृक्षों, ऊषर भूमि और धन सम्पत्ति वाले दुर्ग की प्रशंसा की है। यह श्लोक कौटिल्य अर्थशास्त्र के चतुर्थ अध्याय से लिया गया है।

औदक पावतं वार्क्षमैरिणं धान्वनन्तथा।
प्रशस्तं शास्त्रमतिभिदुर्ग दुगेपिचिन्तकैः।।[5]

---

1. "कौटिल्य अर्थशास्त्र", पृ0 26, साधना पॉकेट बुक्स, 39 यू0ए0 बैंग्लोरोड, दिल्ली– 110007।

2. वही, पृ0 123।

3. वही, पृ0 123।

4. वही, पृ0 123।

5. वही, पृ0 36।

जल, अन्न, शस्त्र और यन्त्रों से सम्पन्न, धीर वीर योद्धाओं से व्याप्त प्रधानमंत्री और आचार्यों से रक्षित दुर्ग की ही महत्ता होती है।

जलान्नायुधयन्त्राढयं धीरयोधरधिष्ठितं।
गुष्तिप्रधानमाचार्यर्या दुर्ग समनुमेनिरे।।[1]

जल वाले दुर्ग और सारूप जांगल देश यह एश्वर्य की इच्छा करने वाले राजाओं के निवास के योग्य माने गये हैं। यह श्लोक चतुर्थ अध्याय से लिया गया है–

साष साराणि दुर्गाणि भुवः सारूपजाङ्गलाः।
निवासाय प्रशस्यन्ते भूभुजां भूतिमिच्छतां।।[2]

कौटिल्य के पश्चात की किलेबन्दी

इस काल से तात्पर्य मध्यकाल से है जिसके अन्तर्गत मुगल व मराठों की किलेबन्दी आती है। वैसे मध्यकाल व प्राचीन काल के किलों में ऐसा कोई विशेष अन्तर नहीं था। मुगलकाल की अपेक्षा मराठों के काल की किलेबन्दी कहीं ज्यादा श्रेष्ठ थी। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मुगलों को किले के निर्माण का कोई ज्ञान नहीं था। मुगलों ने भी अपने कार्यकाल में अनेकों बड़े किले जैसे आगरा व दिल्ली के किले बनवाये थे। जिनमें भूमि कारकों का पूरा–2 उपयोग किया था।

The purana Qila was constructed on the site of Indraprastha partly by Humayun who named in Dinpanah, and partly by Sher Shah who named it Shergarh. It is believed that the walls and gates were built by Humayun while the buildings within viz, the Sher Mandal a two storeyed octogonal tower, and the Qila-Khona, a bearutiful mosque are the work of Sher Shah. Sher Shah strengthened the citadel and his son Salim Shah further improved it. Humayun died from a slip from the stairs of Sher Mandal.[3]

मुगलकालीन किले अपने आप में अतीत के इतिहास के गौरव हैं। इन किलों की एक विशेष रूपरेखा संरचना और व्यक्तित्व को प्रदर्शित करती है। ये किले निर्जीव हैं परन्तु इनमें इंसानियत और मानवता का इतिहास छिपा हुआ है। इनकी बनावटें और शान–शौकत इतिहासविदों, शिक्षाविदों और सैन्य शास्त्रियों के लिये एक शोध का विषय है।

---

1. ''कौटिल्य अर्थशास्त्र'', पृ0 26, साधना पॉकेट बुक्स, 39 यू0ए0 बैंग्लोरोड, दिल्ली– 110007।

2. वही, पृ0 36।

3. "Forts of India" Amrit Verma, Page-9, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

Red fort or Lal Qila as it is popularly known is one of the most exquisite forts of world.

Emperor Shahjahan had reigned for eleven years and its fort was too small to accommodate the army, when he decided to transfer the capital to Delhi. there also lurked an aspiration to found a city in his own name Shahjahanabed. A site not for from Humayun's tomb on the bank of Jamuna was selected and the emperor ordered engineers and architicts to prepare a plan for a palaco similar to that of Agra and Lahore. Construction of buildings started in 1638 under the supervision of Izzat Khan, later of Ali Vardi Khan, followed by Markamat Khan, Ahmad and Hamid, reputed engineers. The fort was completed in 1648 at a cost of ten crore ruppees.[1]

जनश्रुति के अनुसार ग्वालियर से करीब 25 मील दूरी पर स्थित करवार के राजा सूरजसेन ने ग्वालियर का किला बनवाया था। सूरजसेन आसपास के राजाओं व जमींदारों को विजय कर ग्वालियर का प्रसिद्ध किला अपने जीवन काल में ही निर्माण करने में सफल हुये थे। ग्वालियर दुर्ग के भीतर का सूरजकुण्ड ही उस समय का जल स्त्रोत है। विभिन्न अभिलेखों में इस पर्वत के पांच नाम मिलते हैं जिस पर ग्वालियर का किला बसा हुआ है।

1. गोप पर्वत 2. गोप गिरिन्द्र 3. गोपाद्रि 4. गोपगिरि 5. गोपाचल दुर्ग।

सूरज सेन ने अपना नाम सूरजपाल रखकर 36 वर्ष राज्य किया। इस वंश में रसकपाल, नाहरपाल, भीमपाल, अमरपाल, गंगपाल और भोजपाल राजा हुये। गंगपाल ने प्रसिद्ध गंगौला ताल बनवाया, भोजपाल ने "चतुर्भुज राय" के मन्दिर की स्थापना की। यह मन्दिर कारीगरीकी दृष्टि से अद्वितीय है।

The grandeur and majasty of the Gwalior Fort has to be appreciated even today, but more important than its aesthetic appearance was the defensive objectives it served. It witnessed many sieges and fierce battlers but was never obliged to surrender, though it could be gained either by assault or surrender. The Gwalior fort was highly imprognable.[2]

---

1. "Forts of India" Amrit Verma, Page-9, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

2. "Forts of India" Amrit Verma, Page-12, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

सूरजपाल से बुद्धपाल तक इस वंश में 84 राजाओं ने राज्य किया, इन सबके नाम के पीछे 'पाल' नाम था। इनका राज्यकाल लगभग 989 वर्ष रहा। बुद्धपाल का लडका तेजकरण था। इसका विवाह आमेर (जयपुर) के राजा रणमल की कन्या से हुआ था। तेजकरण सुन्दर व वीर था। जयपुर नरेश के कोई पुत्र नहीं था। रणमल ने तेजकरण को आमेर का राज्य देने की इच्छा की थी परन्तु एक शर्त के साथ कि वह ग्वालियर को सदा के लिये परित्याग कर दे और आमेर के शासक बन जायें। तेजकरण ने इस बात को मान लिया था और ग्वालियर का राज्य परिहार वंश को देकर वे ग्वालियर से चले गये थे। रामदेव इस वंश का पहला शासक था। इस वंश में सात राजा प्रसिद्ध हुये थे– परमाल देव, रसाल देव, विक्रम देव, रतन देव, सोमन देव, नरसिंह देव और महिपाल देव थे। इन्होंने लगभग 102 वर्ष राज्य किया। 1196 में कुतुबुद्दीन ऐबक ने इस दुर्ग को जीता और अल्ततमश को इसका गवर्नर बनाया।

ग्वालियर का दुर्ग इतिहास की दृष्टि से तोमर और परिहार वंशों का समागम केन्द्र रहा है। ग्वालियर के किले पर तोमर वंश, परिहार वंश, ऐबक तथा मराठा वंश के शासकों ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। यह दुर्ग आज भी अन्य दुर्गों की अपेक्षा जीवित अस्तित्व लिये खड़ा हुआ है।

Kalinjar has been referred to in ancient literature. The vedas refer to it as Tapasthali i.e. place for penance, the Mahabharata mentions it for its lake, and the padmapurana for its hliness. Ptolemy named it as Tamasis. In the olden days Kalinjar was known as Ratnakuta, Mahagiri Pingala.[1]"

To the rulers of states in Rajasthan which literally means the land of kings and who claimed to be off springs of the sun, moon or some such phenomonen, freedom was the most pracious possession for which they considered no price, no sacrifice big enough. They could not compromise when any demand from their apponents, clashed with their rense of self respect. Protection, under the prevalling conditions, required of them to shield their chivalry with strongholds. This explains the large number of forts in Rajasthan and also how a specific type of architecture of forts developed there.

---

1. "Forts of India" Amrit Verma, Page-15, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

The regions of Rajasthan fort wise had their own speciality. In Mewar, for instance, forts were planned and built to serve defensive needs primarily. While those in Amber and Marwar concentrated on presenting striking appearance.[1]

राजस्थान का पुराना नाम राजपूताना है। राजस्थान के राजपूत उच्च कोटि के योद्धा शासक एवं वीरों के रूप में जाने जाते हैं। राजस्थान के छोटे गांव से लेकर महानगरों तक दुर्ग एवं गढ़ियां देखने को मिलती है जिसमें कि प्रमुख दुर्ग जेसलमेर, रणथम्भोर (सवाई माधौपुर), चित्तौड़, कुम्भलगढ़, लक्ष्मणगढ़, ज्योतपुर, लालगढ़ (बीकानेर), नाहरगढ़, जयगढ़, आमेर तथा सामोद के किले जयपुर के अन्तर्गत आते हैं। राजस्थान के राजपूतों की एक अलग छवि और शान शौकत है। राजाओं के रजवाड़े समाप्त हो गये परन्तु शोध करने के दौरान कई नगरों का दौरा किया जैसे– नागोर, बूंदी, दौंसा, भरतपुर, अलबर, सुजानगढ़, हनुमानगढ़ एवं मारवाड़, मेवाड़ एवं शेखावाटी का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि रजवाड़ों में आज भी प्राचनी संस्कृति की झलकियां और परम्परायें देखने को मिलती हैं। आज भी कई रजवाड़ों में विभिन्न प्रकार के धार्मिक पर्वों एवं विवाह उत्सवों पर शाही शराब का आनन्द लेते हुये महफिलों में उन राजाओं को देखा जा सकता है। वो राजा नहीं है परन्तु उनके साथ पद एवं विभिन्न प्रकार की विभूतियों से उनको सम्बोधित किया जाता है।

राजस्थान के किले एवं गढ़ियों का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि उनमें लगाये जाने वाले पदार्थ म0प्र0 एवं उ0प्र0 के किलों एवं गढ़ियों से भिन्न है। राजस्थान के किले वर्तमान समय में राठौड़ी, शेखावती, कुमावती, नाथवती, राजावती एवं शिसोंदिया वंशों के इतिहास के पन्ने वर्तमान युग में शोधार्थियों एवं इतिहासविदों को मार्गदर्शन दे रहे हैं।

राजस्थान के किले एवं गढ़ियों का एक विशेष गोरव है जोकि वास्तविक रूप से रजवाड़ों की वीर गाथाओं एवं लोग कथाओं को दोहरा रहे हैं।

DURING the Rajput period attention was given to fortification. Forts were called by different names depending on their etc. e.g. Sivir, Vahinimukha, Sthariya, Kalaka, Nigama and Sikandharva. Forts were of various types, e.g. Vanadurga Salilidurga, Parighadurga, Pankjadurga, Dhannadurga, Sahayadurga, Sainyadurga. Some basic rules about construction of forts were laid. In shape they could be circular, square, rectengular,

---

1. "Forts of India" Amrit Verma, Page-21, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

they were to be surrounded by moats, enclosing walls and ramparts, furnished with gates, circumambulating flights of steps and secret staircases in the interior.[1]

"A noble city in a high state of prosperity with for the pleasantries of its climate and the display of the choice of production of the whole globe is almost unrivalled Abul Fazel.[2]

In the year 1411 Ahmad Shah succeeded in grandfather Muzaffar Shah as the sultan of Gujrat. The some year he selected a site in Asaval on Savarmati for is capital. He founded there new city which in honour of for Ahmads himself his teacher Shaikh Ahmad and to others Kazi Ahmad and Malik. Ahmad he named Ahmedabad. And to it he transferred his capital Ahmedabad grew in to a large city and was well protected with its thick in high walls, many gates, broad avenues, well paved streets and abundant vegetation.[3]

गुजरात में प्रमुख रूप से राजस्थान के बाद रजवाड़ों का स्थान श्रेष्ठ है। गुजरात के किलों में दभोई, चम्पानेर तथा अहमदाबाद प्रमुख है। दभोई का संस्कृत नाम दुर्भावती है जोकि बड़ोदा से 25 किमी0 की दूरी पर स्थित है। इस किले को पाटन के राजा सदन जयसिंह ने, जिनकी सात रानियां थीं, बनवाया था। रत्नाबेन, सबसे प्रिय महारानी थीं जिनकी याद में इस किले की आध ाारशिला रखी गई। इस किले में चार दरवाजे हैं, बड़ोदा दरबाजा, नानदेत दरबाजा, चम्पानेर दरबाजा तथा हीरा दरबाजा प्रमुख हैं। हीरा दजबाजे के बारे में कई प्रकार की किंवदंतियां भी हैं। इस किले की दीवारों पर सुन्दर नक्काशी एवं मीनाकारी भी है। इसकी दीवारें 50 फीट ऊँची है प्रत्येक स्तम्भ का गोलाकार क्षेत्र 1025, 900, 1100 और 1025 गज है।[4] आज भी किला इस पुराने इतिहास को दोहरा रहा है।

अहमदाबाद, चम्पानेर और दभोई के किले अपने आप में एक उच्च भव्यता को प्रदर्शित करते हैं। चम्पानेर के किले को चौरावंश के राजा ने बनवाया था। इस किले को पवनगाथ के नाम से जाना जाता है।

The castle of winds- Pawan meaning wind which continuously blew and blasted it.

---

1. "Forts of India" Amrit Verma, Page-38, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.
2. "Forts of India" Amrit Verma, Page-43, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.
3. "Forts of India" Amrit Verma, Page-43, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.
4. "Forts of India" Amrit Verma, Page-39, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

चम्पानेर पर चौहानों का भी शासन 1300 ई0 में रहा है। इसके पश्चात अहमदशाह और मुहम्मदशाह ने इस किले पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था।[1]

अहमदाबाद, दभोई और चम्पानेर के किलों में वास्तविकता, इतिहास का उत्थान और पतन के अवशेष और चिन्ह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। चम्पानेर तथा दभोई के किले वर्तमान समय में शोधार्थियों, विद्यार्थियों, इतिहासविद्, पुरातत्वविद्, शिल्पकारो, मीनाकारों, मूर्तिकारों के लिये काफी मार्गदर्शक और विचारों को प्रदान करने वाले हैं जिनसे कई प्रकार की रहस्यात्मक गुत्थियां और पहेलियां गुजरात रजवाड़ों के सम्बन्ध में जानकारी देती हैं।

"दक्षिण भारत के किलों में प्रमुख रूप से पांच सल्तनत को रखा जाता है। बरार का इमादशाही वंश, अहमदनगर का निजामशाही वंश, बीजापुर का आदिल शाही वंश, गोलकुण्डा का कुतुबशाही वंश और विदार का बारिदशाही वंश प्रमुख है।[2] दक्षिण भारत के किलों में दोलताबाद, बारंगल, विजय नगर, गुलबरगा, गोलकुण्डा, अहमदनगर, बिदार तथा बीजापुर को रखा गया है। दक्षिण भारत के किले, देहली, म0प्र0, राजस्थान, गुजरात तथा उ0प्र0 के किलों से भिन्न है। बाहमी वंश की 1347 ई0 में आधारशिला रखी गई थी, जिसमें अलाउद्दीन बहामन शाह ने मुहम्मद बिन तुगलक को हराकर बाहमी वंश का प्रचार–प्रसार किया। इसने अपने चार सूबे बनाये थे, प्रशासनिक दृष्टि से, जैसे गुलबरगा, दौलताबाद, बिदार और बेरार। इन चारों सूबों के अलग–2 गवर्नर थे। बाहमी राजाओं ने अपने पड़ोसी हिन्दु राजाओं, जोकि बारंगल और विजय नगर में थे, पर आक्रमण करके अपना अधिकार कायम कर लिया था।"[3]

"दौलताबाद भी दक्षिण भारत के किलों में एक विशेष महत्व रखता है जिसका कि वास्तविक नाम देवागिरि है अर्थात इसको 'Hill of God' कहा जाता है। दौलताबाद का किला 1187 में बनवाया गया था। सुल्तान जलालुद्दीन ने 1294 में दौलताबाद पर आक्रमण किया था।"[4]

"बारंगल जो कि हैदराबाद से 175 किमी0 की दूरी पर स्थित है, को 12वीं शताब्दी के मध्य में काकिट्या नामक शासकों ने बनवाया था। इस किले में दो दरवाजे हैं पूर्वी और पश्चिमी। **Prod Raja a powerful Kakatiya King, constructed a fort in the capital as is known from**

---

1. "Forts of India" Amrit Verma, Page-41, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.
2. "Forts of India" Amrit Verma, Page-45, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.
3. "Forts of India" Amrit Verma, Page-45, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.
4. "Forts of India" Amrit Verma, Page-47, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

inscription on the eastern and western gates and pillars of the fort. The stone wall of the fort had a circumference of a little over four miles.[1]

अफगानी किलों के अन्तर्गत माण्डु, रोहतासगढ़ एवं चुनारगढ़ का किला आता है। अफगानी किले म0प्र0, उ0प्र0, राजस्थान तथा गुजरात के किलों से भिन्न हैं। अफगानी किलों का इतिहास राजस्थान के किलों से बिल्कुल भिन्न है। "माण्डु (माण्डवगढ़) म0प्र0 के अन्तर्गत धार जिले में आता है। यह धार जिले के मख्यालय से 22 मील की दूरी पर स्थित है तथा विंध्याचल की पर्वत श्रेणियों पर स्थित है जोकि समुद्री सतह से 2079 फीट की ऊँचाई पर है। किले में दस दरवाजे हैं जिसका मुख्य दरवाजा घाटी दरवाजा के नाम से जाना जाता है।[2]

"माण्डु का प्रयोगात्मक दृष्टि से इतिहास अनभिज्ञ है। 1303 में अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़ पर चढ़ाई करने के बाद Ain-e-Mulk के साथ सोना भेजकर मालवा के राजा रायमहालक देव पर चढ़ाई की थी। उसके पश्चात मुस्लिम शासकों के सम्पर्क में माण्डु का किला आ गया था।[3]"

"In 1561-62 Mandu was conquered by the Mugul generals and incorporated in the Mughul empire. Mandu became the headquarters of a Sarkar in the Suba of Malwa. It had taken Akbars army six months to capture the fort when parts of the city were destroyed. Akbar visited Mandu in 1564 and again in 1598."[4]

"रोहतासगढ़, बिहार राज्य की कैमूर पहाड़ी पर बना हुआ है जिसका सम्बन्ध शेरशाह, शाहजहां, नवाब मीर कासिम अली, अमरसिंह (कुंवर सिंह के भाई) के राजाओं से रहा है। ये किला बिहार का सबसे विशाल व मजबूत किला माना जाता है।[5]"

Rohtasgarh traditions point out derived its name from prince Rohitashwa, son of Harishchandra of the salar race whose home and stronghold it was and that the autochthonous race continues among the Kharwas, Cheros and Oraons. The Kharwas assert that like Rohitashwa they too have descended from the sun and are Suryavanshis.[6]

1."Forts of India" Amrit Verma, Page-49, Ministry of Information and Boardcasting Govt.of India.

2. I Bid. Page-67

3. I Bid

4. I Bid Page-68

5. I Bid

6. I Bid

चुनारगढ़ का किला पूर्वी उ0प्र0 में विंध्याचल की पहाडियों पर स्थित है चारों ओर से विभिन्न प्रकार की परिधियों से घिरा हुआ है जिसका क्षेत्रफल 2400 गज है। 800 गज लम्बाई तथा 133 से लेकर 300 गज तक चौड़ाई है। इसकी ऊँचाई गंगातट से 80 से 175 फीट तक है।[1]

Chunar appears to be derived from Charan-adri or footsteps hill. Tradition accounts it to some sait of the Dwapar Yug who stepped from the Himalayas and rested his foot upon this hill which led to its mark.[2]

अफगानी किले इतिहास में विशेष महत्व रखते हैं। चुनारगढ़ का किला ऐतिहासिक, साहित्यिक, राजनीतिक व पुरातात्विक दृष्टि से विशेष महानता को समेटे हुये है जो अपना एक विशेष गौरव और लोकगाथाओं की प्रसिद्धि का प्रतिनिधित्व करता है। देवकी नन्दन खत्री द्वारा लिखित उपन्यास चन्द्रकान्ता में भी चुनारगढ़ के किले का इतिहास है। यह किला मिर्जापुर के समीप आज भी स्थित है जोकि अतीत के गौरव और उसमें छिपे हुये रहस्य को उजागर करता है। चुनारगढ़ का किला इतिहास की दृष्टि से वीर भूमि है, धर्म की दृष्टि से तपोभूमि और साहित्य की दृष्टि से कर्मभूमि है। इस किले के अन्तर्गत आज भी प्रत्येक पत्थर और ईंटे इतिहास के पन्ने को उलटती और पलटती हैं। शोधिार्थियों को ऐसा प्रतीत होता है कि चुनारगढ़ का प्रत्येक पत्थर वीरों की वीरकथायें और ऋषियों के त्याग और तपस्या को दोहरा रहा है।

मध्यकालीन युग मुगलों से सम्बन्धित इतिहास को परिप्रेक्षित करता है। मध्यकालीन किलों की संख्या अधिक है। मुगलकालीन किले अधिकांशतः ऊँची पहाड़ियों पर बने हुये हैं जो कि राजस्थान, महाराष्ट्र और उ0प्र0 में देखे जा सकते हैं।

इलाहाबाद का पुराना नाम प्रयाग है। यहां का किला गंगा के नजदीक बना हुआ है। इस किले का वर्णन नेहरू जी की 'भारत एक खोज', 'विश्व इतिहास की झलक', नेहरू का 'आत्म परिचय' नामक पुस्तकों में है। "इस किले की आधारशिला 1583 ई0 में अकबर ने रखी थी।"[3]

हरि पर्वत नाम का किला आगरा में स्थित है। इस किले को भी अकबर ने 1752 में बनवाया था।

---

1. "Forts of India" Amrit Verma, Page-71, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

2. "Forts of India" Amrit Verma, Page-71, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

3. "Forts of India" Amrit Verma, Page-77, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

"Akbar constructed a city which he named Nagar-Nagar round the Hari Parbat and fortifield it with a huge bastioned wall.[1]

"आगरा के किले को लाल किला के नाम से जाना जाता है जिसको कि तोमर और चौहानों ने कई शताब्दियों पूर्व बादलगढ़ के नाम से बनवाया था, वहीं लाल किले में परिवर्तित हो गया। बादल गढ़ किले का, जो बहुत मजबूत था, 1131 में ख्वाजा मसूद बिनसाद विन सलमान जोकि दीवान थे, ने अपनी साहित्यिक कृतियों में वर्णन किया।[2] आगरा व्यापारिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण नगर रहा है जिसमें पाये जाने वाले दरवाजे राजस्थान, मालवा और ग्वालियर की ओर जाते हैं।

मराठा किलों के अन्तर्गत शिवनेर, सिंहगढ़, रायगढ़ तथा पन्हाला आते हैं। इन किलों का सम्बन्ध छत्रपति शिवाजी से था। शिवनेर का किला प्राचीन समय में बौद्ध अध्ययन केन्द्र था। यह किला जूनार नामक कस्वे में स्थित है जो पूना जिले व महाराष्ट्र राज्य के अन्तर्गत आता है। इसका आकार त्रिभुजाकार है। इस किले पर यादवों का अधिकार रहा है। 1673 में अंग्रेजी यात्री फेज ने इसका भ्रमण किया था।

सिंहगढ़ का प्राचीन नाम कोनडाना है जिसको छत्रपति शिवाजी ने सिंहगढ़ नाम दिया। इस किले को भी यादवों ने बनवाया था। यह किला सहयाद्री की पहाड़ियों पर स्थित है। इसका सबसे ऊँचा बिन्दु सिंहगढ़ भटेश्वर हैं जिसकी ऊँचाई 4322 फीट है। इसका पूना दरबाजा प्रमुख है।[3]

रायगढ़ का किला राजसी किला है जोकि समुद्री सतह से 2851 फीट की ऊँचाई पर स्थित है। इसके चारों ओर भू–आकृति है। यह किला सहयाद्री की पहाड़ी पर स्थित है। यह किला पूना जिले में आता है जोकि पूना से 4 मील की दूरी पर स्थित है। रायगढ़ का पुराना नाम रेबी था, कुछ इतिहासकार इसे राजगिरि भी कहते हैं। इस किले को राजा सिरके ने बनवाया था जो मराठा प्रमुख थे। 1639 में मुगलों ने इसे अपने कब्जे में कर लिया था।[4]

---

1. "Forts of India" Amrit Verma, Page-79, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.
2. "Forts of India" Amrit Verma, Page-81, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.
3. "Forts of India" Amrit Verma, Page-88, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.
4. "Forts of India" Amrit Verma, Page-90, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

पन्हाला का किला, जिसका सम्बन्ध छत्रपति शिवाजी से है, महाराष्ट्र के पश्चिमी भाग में स्थित है। इस किले की ऊँचाई समुद्री सतह से 2772 फीट है। इस किले का काफी लम्बा इतिहास है। इसके बारे में एक धार्मिक किंवदंती है कि ऋषि पाराशर ने अपना समय इस किले के इर्द–गिर्द गुजारा। इस किले को राजा भोज ने 11वीं शताब्दी में बनवाया था। 15वीं शताब्दी में बाहमी वंश के शासकों ने इसे अपने अधिकार में ले लिया था।[1]

दक्षिण भारत के किलों में श्री रंगपटनम और गिन्जी आता है। श्री रंगपटनम का सम्बन्ध टीपू सुल्तान से है। इसका इतिहास काफी प्राचीन है। कावेरी नदी के तट पर दो मंदिर थे एक का नाम रंगनाथ तथा दूसरे का नाम तूमल देवा था। इन्हीं के आधार पर बाद में श्रीरंगापुरम् और श्री रंगपटनम पड़ा। इस किले को तुमन्ना ने 1454 में बनवाया था।[2]

"गिन्जी का किला मद्रास (चेन्नई) से 150 किमी0 की दूरी पर स्थित है, सैन्य सुरक्षा और पुरातत्व के आधार पर यह किला अपने आप में उत्कृष्ट है। यह किला त्रिभुजाकार आकार का है तथा यह तीन पहाड़ियों से घिरा हुआ है किसना गिरि, राजगिरि एवं चन्द्रदुर्ग। इस किले में कल्यान महल सबसे सुन्दर है।[3]

"भरतपुर का किला राजस्थान के अन्तर्गत आता है जिसकी 1705 में भरत ने, जो जाट थे, आधारशिला रखी थी। यह किला मिट्टी का बना हुआ है। इस किले का सूरजमल ने 1733 में विस्तारीकरण किया। इस किले में दो दरबाजे हैं जिनके नाम चौबरगा हैं तथा आठ दरबाजे जो कि अष्टधातु के बने हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं– Jawahir Burg, Khan Douran Khan Burj, Sinsina or Jeth Malwari Burj, the Bagar Burj, Nawal Singh Burg, Bhalnsawali Burj, Gokal Ramu Risaldar Burj and Kalka Burj. किले के अन्दर बहुत सारे महल भी हैं जिनको महाराजा बलवन्त सिंह ने बनवाया था।[4]

"अंग्रेजी किलों में फोर्ट विलियम अपना एक विशेष महत्व रखता है। इस किले को सन् 1644 ई0 में Gobliel Boughton ने बनवाया था जोकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सर्जन था। सिराज–उद्दुल्ला, जो कि बंगाल का नबाव था, 20 जून 1756 में इस किले पर अधिकार कर लिया

---

1. "Forts of India" Amrit Verma, Page-93, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

2. "Forts of India" Amrit Verma, Page-97, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

3. "Forts of India" Amrit Verma, Page-99, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

4. "Forts of India" Amrit Verma, Page-103, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

था तथा नबाव ने कलकत्ता का नाम अलीनगर कर दिया था। राजा मानिकचन्द्र उस समय गवर्नर था जिसने कि 2 जनवरी 1757 को इस किले को लॉर्ड क्लाइव को दे दिया था।[1]

"आधुनिक और अंग्रेजी किलों के अतिरिक्त बहुत से अन्य किले भी हैं जैसे कि केरल में तलीचरी, अयाकोटा, केन्नूर, पद्मानाभापूरम्, आसाम में जलपायगुड़ी, श्यामनगर तथा बैरकपुर, पंजाब में नाभा, रोपर, सरहिन्द तथा फरीदकोट में किले हैं। म0प्र0 के गुना जिले में चन्देरी (शिशुपाल की नगरी) तथा नरवर जो कि जिला ग्वालियर के अन्तर्गत आता है, उ0प्र0 में झाँसी, कालपी, काशीपुर, अलीगढ़, तालबेहट, गुरसरांय, टहरौली फतेहपुर तथा रामपुरा और जगम्मनपुर आदि में किले स्थित हैं।"[2]

भारत वर्ष में विभिन्न प्रकार के दुर्गों, गढ़ियों का इतिहास उच्चतम से लेकर शिखरतम तक रहा है। दुर्गों के बारे में इतिहासविदों, शिक्षाविदों, पुरातत्वविदों का अलग–2 मत है। दुर्ग वीरता, गौरवता, महानता और अतीत के इतिहास और स्थापत्य कला का वर्णन करता है। वर्तमान समय में भारत में पाये जाने वाले विभिनन दुर्गों की स्थिति जर्जर व खण्डहर हो रही है। केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा बनवाई गई नीतियों को शक्ति एवं गम्भीरता के साथ लागू नहीं किया जाता है जिस कारण से किले एवं गढ़ियां धूल–धूसित होती जा रही हैं। पर्यावरणविदृों एवं पुरातत्वविदों के अनुसार रासायनिक प्रदूषण, रेडियोधर्मी विकरण, वायु प्रदूषण, धुंध, कोहरा (CO_2, CO तथा SO_2) एवं अम्लीय वर्षात से किलों एवं गढ़ियों की सुन्दरता और उनमें पायी जाने वाली मीनाकारी और नक्कासी धीरे–2 फीकी होती जा रही है।

किलों का रख–रखाव एवं व्यवस्था व्यक्तिगत नहीं है बल्कि वर्तमान समय में किले और गढ़ियां पुरातत्व विभाग, पर्यटन विभाग के अन्तर्गत आते हैं परन्तु कुछ किले भारत वर्ष में अभी भी व्यक्तिगत तौर पर हैं जिनमें राजपरिवार के लोग रहते हैं। जैसे– दतिया के किले में तथा झाँसी जिले के समथर कस्वे के किले में राजपरिवार के लोग रहते हैं।

दुर्ग एवं गढ़ियां विभिन्न प्रकार के आकार एवं संरचना धारण किये हुये हैं परन्तु वर्तमान में उनका कोई रखवाला नहीं हैं। दिल्ली, आगरा, सवाई माधौपुर (रणथम्मोर का किला), जयगढ़, नाहरगढ़, आमेर (जयपुर), लालगढ़ (बीकानेर) तथा म0प्र0 में ओरछा का किला (टीकमगढ़)

---

1. "Forts of India" Amrit Verma, Page-109, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

2. "Forts of India" Amrit Verma, Page-111, Ministry of Information and Boardcasting Govt. of India.

तथा उ0प्र0 में इलाहाबाद एवं चुनारगढ़ के किलों की व्यवस्था ठीक है। यहां पर इन सभी किलों को देखने के लिये कई देशों से विदेशी पर्यटक आते हैं। इस कारण से किलों का रख–रखाव, सौन्दरीकरण एवं उनके आस–पास का वातावरण स्वच्छ एवं साफ सुथरा है।

इतिहास के विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों को सकारात्मक पक्ष राज्य सरकार, केन्द्र सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, पुरातत्व विभाग एवं पर्यटक विभाग के समक्ष रखना चाहिये जिससे कि इनका दृष्टिकोंण सापेक्षणीय हो, न कि उपेक्षणीय और नगण्यीय हो, क्योंकि विरासत की धरोहर में इतिहास की वीरकथायें, लोक कथायें, किंवदंतियां और ऐतिहासिक सूक्तियां छिपी हैं। विरासत चरमराने पर संस्कृति एवं सभ्यता चरमरा जाती है। विरासत को खो देने पर राष्ट्र का अस्तित्व भी धीरे–2 मिटने लगता है। विरासत एक प्रकाश पुंज होती है। भारतवर्ष के दुर्ग एवं गढियां अलग–2 शताब्दियों में विभिन्न रजवाड़ों के प्रकाश पुंज हैं। हमारा उत्तरदायित्व है विरासत की रक्षा करना और उनको सही व्यवस्थित करके रखना।

प्रत्येक दुर्ग एवं गढ़ी की अपनी एक कहानी है क्योंकि प्रत्येक दुर्ग अपने आगोश में एक संस्कृति और सभ्यता को लिये हुये हैं। दुर्गों का प्रकार एवं उनमें छिपा हुआ इतिहास हमेशा शोधार्थियों को मार्गदर्शन देता रहेगा और अतीत की कहानी सुनाता रहेगा क्योंकि प्रत्येक दुर्ग अतीत में उगता हुआ सूरज था परन्तु वर्तमान में ढलता हुआ सूरज है।

(III) बुन्देलखण्ड के दुर्गों का स्थापत्य कला की दृष्टि से वर्गीकरण

बुन्देलखण्ड के क्षितिज पर स्थापत्य सम्बन्धी गतिविधियाँ ई0 सं0 के पूर्व से प्रारम्भ हो गयीं थीं। साँची (बिदिशा) तथा भरूहुति (सतना) में विशाल बौद्ध स्तूप बनाये गये थे और इनके साथ वेदिका का निर्माण भी हुआ था। इन स्तूपों के स्थापत्य तथा मूर्तिकला ने परिवर्ती काल को प्रभावित किया था। इस क्षेत्र में पूर्व गुप्तकाल के पहिले का कोई सुरक्षित स्मारक अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ पर इससे यह अनुमान लगाना भारी भूल होगी कि इस समय तक निर्माण कार्य हुआ ही नहीं। ऐसे पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं जिनसे स्मारक की विद्यमानता का स्पष्ट आभास होता है ।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मुख्यतः दो स्थापत्य विधायें देखने को मिलती हैं – मंदिर स्थापत्य और दुर्ग स्थापत्य। मंदिर भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। साहित्य में देवालय की परिकल्पना पुरूषाकार रूप में की गई। उसके विभिन्न अवयवों को विभिन्न अलंकरणों से मण्डित किया जाता है।

पुरूषाकालिक उत्खननों से मिले अवशेषों से यह ज्ञात होता है कि मोहन जोदड़ो हड़प्पा कालीबंगा और लोथल की संस्कृतियों से लेकर अर्वाचीन काल तक दुर्ग बनाने की परम्परा विद्यमान रही है। मानसार में सैनिक प्रयोजन एवं सुरक्षा की दृष्टि से दुर्गों को बुन्देलखण्ड में सात श्रेणियों में विभक्त किया है जो निम्नानुसार हैं:– 1. गिरिदुर्ग 2. वन दुर्ग 3. सलिल दुर्ग 4. पंक दुर्ग 5. रथ दुर्ग 6. देव दुर्ग 7. मिश्र दुर्ग। इनके निर्माण के सम्बन्ध में स्थापत्य सम्बन्धी ग्रन्थों से विभिन्न प्रकार के निर्देश प्राप्त होते हैं जैसे कि विवरण के अनुसार गोल, वर्गाकार तथा आयताकार[1]। इन किलों के आस पास चाहर दीवारी, घेरा एवं वाह्य गमन के लिये द्वार थे इनका सम्बन्ध सुरक्षा से है। दुर्ग एवं गढ़ियों के अन्दर एक नगर से दूसरे नगर में जाने के लिये गुप्त रास्ते होते थे जो कि राजा की और राज परिवार के लोगों की किसी शत्रु राजा के आक्रमण करने पर रक्षा करते थे।

---

1. डा0 एस0 डी0 त्रिवेदी 'बुन्देलखण्ड का पुरातत्व' पेज 36 श्री रामसेवक खड़ग, सन्तोष प्रिंटिंग प्रेस, झाँसी।

"बुन्देलखण्ड में दुर्ग और गढ़ियों की बहुत बड़ी संख्या है। ये प्रायः सामरिक दृष्टि से बनाये गये हैं और इन्हे गिरि दुर्ग के अन्तर्गत माना जाता है।"[1]

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के दुर्गों को दृष्टि में रखकर इनकी स्थापत्य सम्बन्धी कतिपय समान विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है। अधिकांशतः बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियॉं ऊँची पहाड़ियों पर बने हुये है। अधिक ऊँचाई पर बना हुआ दुर्ग सैनिक स्थापत्य कला की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण होता है। "किले के चारों ओर परकोटा बनाया जाता था। बड़े दुर्गों में कई कोटे या परकोटे होते थे इन्हें कटे हुये पत्थरों को वेतरतीब रखकर चूना, उर्द की दाल एवं कोंड़ी का सम्मिश्रण मिलाकर बनाया जाता था। ऊँची दीवारों के बीच–बीच में बुर्ज बने रहते थे, कई दीवारें एक के बाद एक सुरक्षात्मक दृष्टि से बनाई जाती थीं। ऊँची दीवारों के ऊपर डिजाइनदार कटाव रहते थे। बाहरी दीवारों के चारों ओर खाई रहती थी। देवगढ़ दुर्ग में वेतवा नदी की ओर और कालपी में यमुना नदी की ओर कोई दीवार नहीं बनाई गई है। झाँसी किले में केवल एक ओर खाई थी।[2]

बड़े किलों में एक से अधिक द्वार मिले हैं। बाहरी द्वार काफी अधिक मजबूत बनाये जाते थे तथा इनमें लगाये जाने वाले दरवाजे लकड़ी व लोहे के होते थे जिनका बजन कई कुन्तलों में होता था। किले के अन्दर विभिन्न वर्गों के लोगों की आवास व्यवस्था हेतु छोटे बड़े भवन बनाये जाते थे। इन भवनों में सभी प्रकार की व्यवस्थायें होती थीं जैसे शौचालय, मूत्रालय, रसोई, भण्डार गृह, शयन कक्ष, अध्ययन कक्ष, मन्दिर, छोटा सा वगीचा तथा हिन्दू राजा होने पर भवनों के मुख्य द्वार पर गणेश व हनुमान की प्रतिमा लगी रहती थी तथा आंगन में वेदी और तुलसी वृक्ष लगा रहता था जोकि आर्यन संस्कृति और हिन्दुत्व की पहचान थी। इसके अलावा बड़े दुर्गों में पक्के तालाब बनाये जाते थे जिससे वहां का वातावरण स्वच्छ और साफ हो। ये तालाब नौकायन के शौक को पूरा करते थे तथा विशेष पर्वों एवं त्योहारों पर इन तालाबों की उपयोगिता बढ़ जाती थी। तालाब एक स्थापत्यकला का ही हिस्सा है।

---

1. डा० एस० डी० त्रिवेदी 'बुन्देलखण्ड का पुरातत्व' पेज 37 श्री रामसेवक खड़ग, सन्तोष प्रिंटिंग प्रेस, झाँसी।

2. डा० एस० डी० त्रिवेदी 'बुन्देलखण्ड का पुरातत्व' पेज 37 श्री रामसेवक खड़ग, सन्तोष प्रिंटिंग प्रेस, झाँसी।

बुन्देलखण्ड में प्रमुख रूप से दो प्रकार की स्थापत्य कलायें प्रसिद्ध हैं– चन्देली स्थापत्यकला तथा बुन्देली स्थापत्यकला।

बुन्देलखण्ड ऐतिहासिक दृष्टि से गुप्त शासकों, प्रतिहार शासकों, चन्देल शासकों, बुन्देला शासकों के अन्तर्गत प्राचीनकाल से लेकर उत्तर मध्य काल तक के लगभग 1100 वर्ष की दीर्घ अवधि तक रहा है। इन शासकों के समय की स्थापत्यकला की उत्कृष्टता तो सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के वृहद क्षेत्र में देखने को मिलती है। लेकिन दुर्गों अथवा किलों के दर्शन करने पर स्थापत्य कला, वास्तुकला, पुरातत्वकला, मीनाकारी, नक्काशी इत्यादि देखने को मिलती हैं। चन्देल शासकों के समकालीन दुर्गों या किलों में गढ़कुण्डार का किला व अजयगढ़ दुर्ग, (दोनों मध्य प्रदेश में) तथा कालिंजर (उत्तर प्रदेश) दुर्ग जहां हैं वहीं ओरछा (मध्य प्रदेश) दुर्ग एवं झाँसी दुर्ग बुन्देला शासकों के निर्माण कला की उत्कृष्ट धारणा है और इसी श्रंखला में मुसलिम, हिन्दू शासकों के समन्वय स्वरूप की झांकी चन्देरी (मध्य प्रदेश) के दुर्ग में देखने को मिलती है।

चन्देल सत्ता का उत्थान तथा पतन जिस युग में हुआ वह युग मध्य कालीन का शौर्य तथा पराक्रम का युग कहा जाता है। उस समय देश में अनेक छोटे बड़े राजा थे जिनमें एक दूसरे के बढ़ जाने से दूसरे के प्रति ईर्ष्या तथा गिरने की भावना मन में बनी रहती थी। उन दिनों ऐसे दुर्ग जो एकांत तथा विशाल थे, अच्छे समझे जाते थे तथा उनका बहुत महत्व समझा जाता था। उनमें किसी राज्य को बनाने तथा बिगाड़ने की शक्ति थी, गुप्त तथा वर्धन राजओं के बाद उत्तरी भारत में चन्देले आगे रहे क्योंकि उनके पास कालिंजर जैसा अजेय दुर्ग था। इसकी प्रशंसा दूर–दूर तक फैली हुयी थी। इसके अतिरिक्त चंदेलों के पास अन्य बहुत से किले थे जो कि बुन्देलखण्ड में पाये जाते थे।

वर्तमान समय में चन्देलकालीन बहुत से किले अधिकांशतः खण्डहर हो गये हैं किन्तु कुछ किलों की स्थिति ठीक है जो पर्यटक दृष्टि से अपनी भव्यता को प्रदर्शित कर रहे हैं। चन्देलकालीन किले अन्य भारतीय राजाओं के किलों की स्थापत्य कला एवं वास्तु कला की भिन्नता को प्रदर्शित करते हैं।

चन्देलयुगीन किलों में सबसे प्रसिद्ध कालिंजर का किला है। मध्यकालीन भारत में यह अद्वितीय माना जाता था। यह इलाहाबाद से 90 मील दक्षिण – पश्चिम में एक पहाड़ी की चौरस चोटी पर बना हुआ है। यह दुर्ग आयतकार है तथा इस किले में दो मुख्य द्वार हैं– प्रधान द्वार नगर की ओर उत्तर की तरफ है दूसरा दरवाजा दक्षिण –पूरब के कोने में पन्ना की तरफ है। इसके अलावा इसमें सात दरवाजे और भी हैं। (1) आदम अथवा आलमगीर अथवा सूर्य दरवाजा।
(2) गणेश दरवाजा (3) चांदी अथवा चाँद बुर्ज दरवाजा अथवा स्वर्गारोहण दरवाजा (4) बुध भद्र द्वार (5) हनुमान द्वार (6) लाल दरवाजा तथा (7) बड़ा दरवाजा।

इस किले में पानी के बहुत अच्छे साधन हैं। किले के अन्दर अनेक जल कुण्ड हैं जैसे – पाताल गंगा, पाण्डु कुण्ड, बढ़ियाताल, मृमधारा, कोट तीरथ आदि। कालिंजर हिन्दुओं का तीर्थस्थान भी है। वेदों में उल्लेख के अनुसार यह तपस्या स्थान के रूप में हुआ है। महाभारत में यह कहा गया है जो व्यक्ति कांलिजर में स्नान करता है उसे अनेकों गौदान का फल मिलता है। पद्म पुराण में कहा गया है कि कालिंजर उत्तर भारत के 9 तीर्थों में से एक है।

अजयगढ़ का किला कांलिजर से लगभग 30 km दक्षिण–पश्चिम की तरफ एक पहाड़ की चोटी पर बना हुआ है। यह उत्तर से दक्षिण 1.5 km लम्बा और लगभग इतना ही पश्चिम से पूरब की ओर चौड़ा है। यह त्रिभुजाकार है और इसका घेरा लगभग 4.5 km का है। इस किले का निर्माण राजा अजयपाल ने करवाया था। इस किले में केवल दो दरवाजे है। पहला दरवाजा तरोहनी दरवाजा कहलाता है क्योंकि वहाँ से पहाड़ी के नीचे स्थित तरहोनी गाँव को रास्ता जाता है। दूसरा दरवाजा कालिंजर किले को जाता है।

मड़फा का किला बहुत विशाल और भव्य है जो कि एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित है एवं कालिंजर से उत्तर –पूर्व 18 km की दूरी पर है। इस किले का कोई ऐतिहासिक वर्णन नहीं है। यह किला बस्ती से दूर तथा जंगल में है।

मनियागढ़ का किला केन नदी के पश्चिमी तट पर स्थित है तथा यह किला 600 से 800 फीट की ऊँचाई पर एक छोटी पहाड़ी के ऊपर बना हुआ है। यह एक प्राचीन किला है और वहीं पर चन्देलों की कुल देवी मनिया देवी का मंदिर है। अब यह किला टूट–फूट गया है तथा यह जंगलों के बीच बना हुआ है।

महोबा का किला मदन सागर से उत्तर की ओर एक छोटी पहाड़ी पर बना हुआ है। महोबा की चन्देल राजधानी का यह प्राचीन किला है जिसकी लम्बाई 1625 फीट तथा चौड़ाई लगभग 600 फीट है। इस किले के दो मुख्य दरवाजे हैं। जिसमें भैंसा दरवाजा पश्चिम की ओर व दूसरा दरवाजा पूर्व की ओर है। इस किले की दीवारें कटे हुये चौकोर पत्थरों से बनी हुई हैं।

हाटा का किला चन्देल कालीन अन्य किलों की भाँति बना हुआ है। केवल भिन्नता यह है कि इसमें शिखर की संख्या अधिक है जो ऊपर को पतले और नुकीले होते गये है। शिखर तथा दीवारें युद्धक चाहर दीवारी से ढकी हुंई हैं, और गारे तथा पटियों के पत्थरों से बनी हुंई हैं।

कालपी का किला वर्तमान समय में जनपद जालौन के अन्तर्गत आता है। यह किला कालपी नगर की उत्तर दिशा में यमुना के किनारे बना हुआ है। इसके दक्षिण दिशा में कालपी नगर बसा हुआ है।"यह किला राजनीतिक एवं सामरिक महत्व का है तथा चन्देलों से लेकर प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की अलख जगाने वाली महारानी लक्ष्मीबाई तक की स्मृतियों को अपने हृदय में संजोए हुए है एवं यवन शासकों से अंग्रजों तक के वज्रघातों एवं कष्टों को समेटे हुए है। अभी भी यह किला अपने शौर्य एवं अपने प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं का दिगदिगंत में नाद करता हुआ अडिग खड़ा हुआ है।"[1]

"कालपी का किला चन्देल वंश के बुन्देलखण्ड के प्रवेश द्वार के रूप में है तथा इसकी स्थिति बहुत महत्वपूर्ण रही है। किताब तारीख फरिस्ता के अनुसार इस किले का निर्माण कन्नौज के राजा वासुदेव ने कराया था। लगभग 1100 वर्ष पूर्व व्यास जी पं0 ब्राह्मण ने इसका निर्माण कराया था। संवत् 1803 सन् 1757 ई0 में लक्ष्मणराव पं0 मराठा हाकिम परगना कालपी ने इसकी मरम्मत कराई थी।"[2] वर्तमान समय में इस किले में उ0 प्र0 सरकार का वन विभाग का निरीक्षण भवन

---

1. "गौरवशाली कालपी" डा0 हरिमोहन पुरवार, पेज न0 88, बुन्देलखण्ड संग्रहालय समिति भरत चौक, उरई, जालौन, उ0 प्र0।
2. "बुन्देलखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास" अब्दुल क्यूम मदनी ,पेज 96, Kml offset Jhansi

बना हुआ है।

बुन्देलखण्ड में चन्देलवंश की समाप्ति के बाद बुन्देलायुग प्रारम्भ होता है। चन्देल राजाओं की स्थापत्य कला अपने समय की उच्चतम कलाओं में से एक थी जिसकी प्रशंसा विदेशी इतिहासकारों ने भी की है। बुन्देलावंशों ने अपने वंश की स्थापना बुन्देलखण्ड में रखने के पश्चात अपनी सेना तथा अपनी जनता की रक्षार्थ बुन्देलखण्ड में अनेक दुर्गों मन्दिरों, तालाबों तथा राजसी महलों का निर्माण कराया था। चूँकि बुन्देला राजा अपने प्रारम्भ काल से अन्तिम काल तक दिल्ली राजवंश से संघर्ष करते रहे, इसिलिये उनको स्थापत्य कला निर्माण में पर्याप्त समय न मिल सका।

बुन्देलखण्ड में बुन्देला शासकों का राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं स्थापत्य कला सम्बन्धी विशेष योगदान रहा जो कि अपने आपमें विशेष गौरवता एवं श्रेष्ठता को प्रदर्शित करती है। बुन्देलावंश के शासक चन्देला वंश के शासकों की अपेक्षा स्थापत्य कला में अधिक योग्यता एवं निपुणता को प्रदर्शित नहीं करते है। " बुन्देलखण्ड में मुस्लिम संस्कृति का भी प्रभाव था। बुन्देला राजा वीरसिंह देव को बुन्देलखण्ड भारत नरेश शहजादा सलीम के द्वारा दिया हुआ नाम था। अतः यहाँ पर मुस्लिम प्रभाव होना आवश्यक था। इसीलिए इन कारणों से बुन्देलायुग में मुस्लिम स्थापत्य कला निर्माण का भी विकास हुआ। अनेंकों मस्जिदों, मकबरों एवं महलों में पाये जाने वाले दीवाने आम एवं दीवाने खास, दुर्गों एवं गढ़ियों में मुस्लिम स्थापत्य कला का प्रभाव देखा जा सकता है। बुन्देलकालीन स्थापत्य कला को तीन भागो में बाँटा जा सकता है। (1) सैनिक स्थापत्य कला (2) धार्मिक स्थापत्य कला एवं (3) प्रशासकीय स्थापत्य कला ।"[1]

ओरछा बुन्देलखण्ड के राजा महाराजाओं का प्रमुख गढ़ रहा है तथा बुन्देलों की मुख्य राजधानी रही है। इस किले में काँच महल, झरोखे तथा चित्रकारी अत्यन्त दर्शनीय है। बेतवा नदी के कई घाट जैसे राजघाट, तंगारंग घाट, तथा कंचन घाट बहुत सुन्दर है। ओरछा का किला आज भी वर्तमान समय में अपनी स्थापत्य कला के लिये उत्कृष्टता एवं अनुपमता को प्रदर्शित कर रहा है।

---

1. "बुन्देलखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास" अब्दुल क्यूम मदनी ,पेज 89, Kimi offset Jhansi

किले के नीचे आस–पास का वातावरण प्राकृतिक सुन्दरता व हरियाली से भरा हुआ है।

राजा सूरज शाह द्वारा निर्मित धामौनी का किला अपनी भग्नावशेष अवस्था में राजा के स्वर्ण युग की याद दिलाता है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरी धामौनी में राजा सूरज शाह अबुल फजल, जहाँगीर और औरंगजेब के स्मृति चिन्ह आज भी मौजूद हैं। धामौनी का किला अपनी स्थापत्य कला के लिए भी श्रेष्ठ माना जाता है। जहाँगीर अपनी प्रिय रमणीय नगरी धामौनी में हाथियों का विशाल मेला लगवाया करता था। औरंगजेब द्वारा 1676 में बनाई हुई मस्जिद आज भी मुगलकालीन स्थापत्य कला को प्रदर्शित कर रही है।

बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक किलोंमें खिमलासा का किला भी प्रसिद्ध है। खिमलासा वर्तमान समय में म0प्र0 में आने वाले सागर जिले से 60 कि0मी0 दूरी पर है। यह किला अपनी स्थापत्य कला के लिये हिन्दु – मुस्लिम एकता का प्रतीक है। यहाँ का शीशमहल, पंजपीर की दरगाह, प्राचीन वास्तुकला के सर्वोत्तम उदाहरण माने जाते है। यह किला आज भी पाषाणों के अनेक स्मृति चिन्ह जैसे पाषाण प्रतिमाओं, स्तम्भों आदि को प्रदर्शित कर रहा है।

बुन्देलखण्ड के म0प्र0 का भव्य, स्वच्छ और आलीशान नगर तथा गालवऋषि द्वारा बनाई गई नगरी ग्वालियर का किला आकर्षणता और भव्यता को प्रदर्शित कर रहा है। यह किला कछुवाह राजा सूर्यसेन द्वारा ऊँचे पहाड़ पर निर्मित कराया गया था। मान मन्दिर, गूजरी महल, सास बहू का मन्दिर आदि स्थापत्य कला के लिये बहुत ही प्रसिद्ध हैं। मान मन्दिर में आज भी वर्तमान समय में उसके अन्दर भरे हुये रंग अपनी विशेष छाप छोड़ते हैं। इसके अतिरिक्त बादल गढ़ ओर मोती महल भी स्थापत्य कला के लिये अद्वितीय और प्रसिद्ध हैं।

गढ़कुण्डार का किला बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक किला है। इस किले का वर्णन वृन्दावन लाल वर्मा द्वारा रचित उपन्यास 'गढ़कुण्डार' में भी है। यह किला बुन्देलों की प्रमुख राजधानी रहा है। इस किले की स्थापत्य कला मुगल कालीन स्थापत्य कला से अधिक समानता और समकक्षता रखती है। इस किले का निर्माण गौड़ राजाओं द्वारा किया गया था।

राहतगढ़ वीर बुन्देलों की युद्ध भूमि तथा वीर भूमि रही है। यह बुन्देला युग का प्रसिद्ध किला रहा है। इसमें 27 बुर्ज हैं। यह देखने में अतिसुन्दर है। राहतगढ़ का बादल महल तथा

जोगिन बुर्ज अपनी स्थापत्य कला के लिये अनौखा और अनुपम है।

नरवरगढ़ का किला महाराज नल की राजधानी रही है। वर्तमान में इस किले में हिंसक पशु स्वच्छन्द रूप से विचरण कर रहे हैं। यह किला अपनी स्थापत्य कला के लिये बहुत प्रसिद्ध है। यहां पार्श्व में 8 कुआँ और 9 बावड़ी हैं तथा इन कुओं पर बने हुये कंगूरे अपनी स्थापत्य कला के लिये अनूठेपन और विशिष्टता को प्रदर्शित कर रहे हैं।

झाँसी का किला ऐतिहासक, सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। ओरछा के राजा वीरसिंह जू देव द्वारा यह किला बनवाया गया था तथा यह किला बंगरा नामक ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। इस दुर्ग में अधिकांश प्राचीन परम्पराओं की इमारतों और मूर्तियों के अवशेष अभी भी मौजूद हैं । इस किले की स्थापत्य कला अन्य किलों से भिन्न है। किले के प्रांगण में तोपची गुलाम गोस खाँ, मोतीबाई तथा अश्वारोही खुदाबख्स की समाधियां स्थित हैं। किले के परकोटे के बीच–2 ऊँचे गुर्जे और कंगूरे बने हुये हैं। इस किले की स्थापत्य कला तीन लोगों के द्वारा प्रभावित हुई जैसे– बुन्देला राजाओं द्वारा किया गया निर्माण, मराठा शासकों द्वारा परिवर्तन व परिवर्धन तथा तृतीय चरण के अन्तर्गत अंग्रेजों द्वारा की गई तब्दीलियां सामिल हैं।

झाँसी का किला आज भी अपने काल के वैभव का प्रतीक और महारानी लक्ष्मीबाई की याद दिलाता है।

बुन्देलखण्ड के दुर्ग एवं गढ़ियों की अपनी एक विशिष्ट स्थापत्य कला है जोकि अन्य स्थापत्य कलाओं से भिन्न है। स्थापत्य कला के अन्तर्गत किले एवं गढ़ियों में बुर्ज, महल, बावड़ियाँ, कंगूरे, टोड़ियां, झरोखे, रोशनदान, मीनाकारी, चित्रकारी एवं कशीदाकारी को समाहित किया गया है। बुन्देलखण्ड की स्थापत्य कला को प्रमुख रूप से चन्देलों और बुन्देलों द्वारा अग्रसर किया गया। चन्देलवंश का वैभव बुन्देला वंश के वैभव से प्राचीन है। चन्देलाओं का क्षेत्र कालिंजर और प्रमुख रूप से खजुराहो रहा है परन्तु बुन्देलों का क्षेत्र ओरछा एवं झाँसी के इर्द–गिर्द रहा है। चन्देलकालीन स्थापत्य कला एक प्रेरणा का स्रोत है जिसकी प्रेरणा को लेकर अन्य राजाओं ने भी उसका अनुसरण किया।

बुन्देलावंश की स्थापत्य कला मुगलकालीन स्थापत्य कला से काफी अधिक समानता रखती है। कलाओं का इतिहास अनोखा एवं अनुपम होता है। समय के अनुसार स्थापत्य कलायें भी परिवर्तनशील होती रहती है। हमारे देश में बहुत विदेशी शासकों ने आकमण किया जैसे –लौधी, सैयद, खिलजी तथा मुगलों ने अपनी –अपनी स्थापत्य कला के द्वारा भरतीय संस्कृति में सम्मिश्रण किया।

स्थापत्य कलायें भारतवर्ष के कई राज वंशों में पृथक –पृथक हुआ करती थीं। कला राजाकी रूचि के अनूसार बनती और बिगड़ती है क्योंकि कलायें समय के अनुसार परिवर्तनशील हैं। हमारे देश में वैदिक काल से वर्तमानकाल तक कई प्रकार की कलायें बनी और बिगड़ी। जैसे – चित्रकला, संगीतकला, वास्तुशास्त्र कला, स्थापत्य कला, समय के अनुसार बनती व बदलतीं रहीं। स्थापत्य कला एक रोचक विषय है। इसके आधार पर विभिन्न राजाओं की अभिरूचियों, अभिवृत्तियों और प्रवृत्तियों का मूल्यांकन किया जा सकता है। स्थापत्य कला एक अभिरूचि है। बिना स्थापत्य कला के दुर्ग एवं गढ़ियों का कोई महत्व नही है। स्थापत्य कला अपने जीवन की एक सुसंगठित प्रकिया को प्रदर्शित करती है।

(IV) बुन्देलखण्ड के दुर्गों की स्थापत्य कला एवं सैन्य दृष्टि से उनका समन्वय

बुन्देलखण्ड के दुर्ग एवं गढ़ियों की स्थापत्य कला एवं सैन्य दृष्टि से उनका समन्वय एक सुव्यवस्थित एवं कूटनीतियों पर केन्द्रित है। स्थापत्य कला अपने आपमें किलों एवं गढ़ियों के लिये विशिष्टता एवं विविधता को प्रदर्शित करता है। बिना स्थापत्य कला के कभी भी किलों एवं गढ़ियों का निर्माण नहीं होता था। किलों एवं गढ़ियों को बनाने से पूर्व राजा आत्मचिंतन और आत्ममंथन करता था कि किस प्रकार से स्थापत्य कला को रूप दिया जाये जो सैन्य दृष्टि से अधिक उपयोगी और सुरक्षित हो।

सैनिक दृष्टि से चन्देला और बुन्देला वंशों द्वारा बनायेगये दुर्गों का अलग--2 प्रमुख स्थान रहा है। मध्यकालीन युग में मध्यभारत और उत्तर भारत क्षेत्रों में बनाये गये दुर्ग एवं गढ़ियाँ काफी सुदृढ़ एवं मजबूत थे, साथ ही साथ कई सम्राटों ने सुरक्षा की दृष्टि से अलग--2 प्रकार की स्थापत्य कला को आकार दिया। शासकों ने कई बार आकमण किये लेकिन दुर्गों को जीतना मुश्किल ही रहा। दुर्ग एवं गढ़ियों पर प्रत्येक समय कूटनीतियों व षडयन्त्रों द्वारा ही विजय प्राप्त की गई थी। इसका कारण दुर्ग की सुदृढ़ता, स्थापत्य कला एवं सैनिक सरंचना ही थी।

दुर्ग एवं गढ़ियों का निर्माण करते समय ऊँचाई, लम्बाई, चौड़ाई, सुदृढ़ता एवं मजबूती को विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था। दुर्ग के द्वारा घुमावदार व ऊपरी भाग से मार के कारण शत्रुओं पर नियंत्रण किया जा सकता था। दुर्गों में आक्रमण के समय पानी, सामान्य हथियारों, गोला--बारूद व सैनिकों को काफी तादात में रखने का बंदोबस्त होता था।

चन्देलाओं द्वारा निर्मित कालिंजर, आजयगढ़, मनियागढ़, हाटा एवं कालपी इत्यादि किलों की स्थापत्य कला दक्षिण--पूर्वी, और पश्चिमी शासकों से भिन्न थी। चन्देला वंश की स्थापत्य कला एक वीरगाथा के रूप में अपनी कहानी को लिये हुए है। आज उसका प्रस्तुतीकरण हो रहा है।

किलों एवं गढ़ियों में शासक का परिवार , सैनिकों के परिवार एवं अन्य नारियों की सुरक्षा हेतु विशेष स्थानों को बनाया जाता था जिससे इन नारियों की पवित्रता नष्ट न हो और समय

पड़ने पर जौहर कर अपने शरीर की रक्षा कर सकें। भारत के शासकों ने किले एवं गढ़ियों के द्वारा एतिहासिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से सम्राटों की वीरता एवं उनके त्याग का अनुमान लगाया। अधिकांशतः दुर्ग पहाड़ियों पर मजबूत एवं सुरक्षात्मक बनाये जाते थे जिससे शत्रु राजाओं की कूटयोजनाओं को विफल किया जा सके। दुश्मनों द्वारा आक्रमण करते समय स्थापत्य कलाओं को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया जाता था जिससे आसानी से दुर्ग एवं गढ़ियों में अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकें।

स्थापत्य कला और सैन्य दृष्टि का आपस में एक क्रमबद्ध सामंजस्य एवं समन्वय है। सैन्य दृष्टि एवं स्थापत्य दृष्टि एक प्रेरणात्मक, शिक्षात्मक और शोधात्मक विषय है। राजा यदि कला प्रेमी है तो स्थापत्य कला भी उत्कृष्ट एवं उच्च्व कोटि की होगी। यदि राजा की सोच स्थापत्य एवं वास्तुकला की ओर नहीं है तो उसके समकालीन स्थापत्य कला का विकास नगण्य होगा। भारतीय सम्राटों एवं शासकों में कुछ ने स्थापत्य कला को सकारात्मक दृष्टि से देखा और कुछ ने नकारात्मक दृष्टि से। स्थापत्य कला कुछ राजाओं का शौक भी था और अपने राज्य की सुरक्षा भी क्योंकि राजा की सोच यदि संगतिपूर्ण, विचारपूर्ण एवं सारगर्भित है तो स्थापत्य दृष्टि से एवं सैनिक दृष्टि से किले एवं गढ़ियों का महत्व अलग होगा। परन्तु यदि राजा की सोच में निम्नता एवं तुच्छता है और उसके विचारों में स्थापत्य नगण्य व नकारात्मक हैतो उनका मूल्यांकन इतिहास एवं सैन्य दृष्टि से कम होगा।

स्थापत्य कला और सैन्य दृष्टि एक विचारणीय प्रश्न है तथा सम्राट एवं कर्मचारी गणों की मन्त्रणा के आधार पर स्थापत्य कला को वास्तविक रूप दिया जाता था। क्योंकि इस कला के द्वारा वहाँ के किले की सुरक्षा, नागरिकों की सुरक्षा एवं वास्तुकला शास्त्र की भी सुरक्षा की जाती थी। सैनिकों का सम्बन्ध वहाँ की परिस्थितियों पर निर्भर रहता था।

प्राचीन भारत की किले बन्दी का अध्ययन करने के पश्चात भली प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में सुरक्षात्मक कार्यवाही का विकास उच्चतम शिखर पर पहुँच गया था। उस समय किलों की सुरक्षा के लिये विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्रों को उपयोग में लाया जाता था। सम्भवतः यह स्कैलिंग लेडर व वैटरिंग रेम के उपयोग के कारण ही था परन्तु इन सभी को सिद्ध करने के लिये कोई स्पष्ट व ठोस प्रमाण नहीं है। इसके अतिक्ति किले के दरवाजों को सुरक्षित रखने के

लिये हाथियों को नियुक्त किया जाता था। वास्तविकता तो यह है कि इनका उपयोग किले के दरवाजे की रक्षा के स्थान पर तोड़ने की कार्यवाही में ज्यादा किया जाता था। प्राचीन विद्वानों ने इस कार्यवाही को हाथियों का एक महत्व पूर्ण व आवश्यक कार्य माना है। महाभारत के अनुसार इनको पुरमेन्तरह (टाउन ब्रेकर) के नाम से पुकारा गया है।

तमिल कवियों ने ऐसे हाथियों की ब्रिगेड का वर्णन किया है जिसके हाथियों ने सूड़से तोपों को उठाकर शत्रुओं के किलों पर आक्रमण किया था।

समय–2 पर अन्य दूसरे साधनों को भी प्रयोग में लाया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस प्रकार के बहुत से अन्य साधनों का उल्लेख किया गया है। कौटिल्य ने लिखा है कि शत्रु के किले पर अधिकार करने के लिए तेज आक्रमण व सुरंगों दोनों को उपयोग में लाना चाहिए । प्राचीन काल में सुरंगो द्वारा किलों पर अधिकार करने की विधि को सामान्य रूप से उपयोग में नही लाया गया । इसका मुख्य कारण यह था कि प्राचीन भारतीय किलों के आधार ऊँचे व ज्यादातर आधार चट्टान ही होते थे। इसलिए सुरंगों का उपयोग असफल सिद्ध हुआ। जहाँ पर इनके द्वारा उद्देश्य सफल होता दिखाई दिया वहाँ पर इनका उपयोग स्वतन्त्रता पूर्वक किया गया।

बुन्देलखण्ड के दुर्ग एवं गढ़ियों में सुरंगे एवं खाइयाँ दोनो ही पायीं जाती थीं। परन्तु वर्तमान समय में इनकी उपयोगिता न होने के कारण ये धीरे –2 जीर्ण–शीर्ण हो गई और मात्र अवशेष बनकर रह गई। झाँसी का किला, जो बुन्देलों द्वारा बनवाया गया था, उसमें भी ग्वालियर किले के लिए सुरंग है। परन्तु उपयोगिता न होने के कारण बन्द पड़ी हुई है।

झाँसी जिले में मोंठ तहसील के अन्तर्गत आने वाले समथर के किले के चारों ओर खाई मौजूद है जो अपने अतीत के इतिहास को दोहरा रहा है। इसके अतिरिक्त गरौठा तहसील के गुरसराय कस्बे में किले के चारों ओर खाई मौजूद है जो इतिहास की महान गाथा को याद दिलाता है।

जनपद जालौन के जगम्मनपुर व रामपुरा नामक रियासतों के द्वारा बनाये गये (सेंगर एवं कछुवाही) किलों के चारो ओर खाइयाँ मौजूद है। खाइयों के अन्दर पानी रहता था जिसमें

जलाशयी विषैले जानवरों को छोड़ दिया जाता था जैसे – घड़ियाल, मगरमच्छ तथा सर्प इत्यादि जो कि किले की रक्षा करते थे।

किलों के अन्दर सड़कें अधिकतर ढालू बनाई जाती थी जिससे शत्रु को आकमण करते समय अथवा प्रवेश करते समय कठिनाइयों का सामना करना पड़े क्योंकि समतल की अपेक्षा घाटियों पर चलना अधिक पीड़ामयी होता है।

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में सुरंग और खाइयों का विशेष वर्णन किया है। कल्हन ने भी "रासतरंगणी" में दुर्ग की स्थापत्य कला एवं सैन्य दृष्टि का आपस में समन्वय और सामंजस्य का वर्णन किया है। किलेबन्दी का सम्बन्ध सुरक्षा से होता है। राजा का उत्तरदायित्व है कि अपनी सुरक्षा के साथ–2 प्रजा की और राज्य की भी सुरक्षा करनी चाहिये। किले के अन्दर रहने वाली प्रजा को भी विशेषतौर से अपने बचाव पक्ष के बारे में अवगत कराना चाहिए। राजा समग्र पाल ने अपनी सेना (किले को) को बचाने हेतु काफी धन देने का वादा किया । परन्तु राजा हर्ष ने अस्वीकार कर दिया क्योंकि वह एक स्वेच्छाचारी व हठी राजा था। इसके पश्चात् घेरे बन्दी से घिरे चीफटेन ने विरोधी सेना के एक अधिकरी को रिश्वत दे दी, उसने सैनिक मार्चिंग एलाउंस के लिये उत्प्रेरित किया फल यह हुआ कि सैनिकों का क्रम बिगड़ गया और इसी समय तुर्कों के आक्रमण की भयानक एवं झूठी अफवाह भी फैली।

घेरेबन्दी करते समय कई प्रकार की कूटनीतियों का प्रयोग किया जाता था। कूटनीतियों के द्वारा शत्रु सैनिक राजा के गुप्तचरों का पता लगा लेती थी, उनकी गतिविधियों का और उनके राज्य की सुविधाओं के सम्बन्ध में तथा शासन की भी जानकारी लेने का प्रभाव करती थी।

किले को जीतने के लिए विभिन्न साधनों को उपयोग में लाया जाता था। परन्तु किले के अन्दर शत्रु के आपूर्ति के साधनों की ऐसी किलेबन्दी करना कि वह स्वयं आत्मसमर्पण कर दे, सबसे अच्छा साधन था। विद्वानों का मत है कि इसमें समय अवश्य लगता था परन्तु विजय का प्रतिशत पराजय के प्रतिशत से बहुत ज्यादा होता था।

कौटिल्य ने कहा है कि श.त्रु को किले के चारों ओर सभी ऐसे साधनों को, जो

इसके लिये हानिकारक हों, एक साथ लगा देने चाहिये। किले के चारों ओर घास, लकडी जैसी वस्तुओं को एकत्रित करके आग लगा देना चाहिए जिससे कि काफी दूर तक का क्षेत्र जलाया जा सके । नहरों, तालाबो, बाबड़ियों एवं कुओं तथा शुद्ध पानी के जलाशयों को दूषित कर देना चाहिए जिससे कि उस देश की प्रजा उस पानी का प्रयोग न कर सके।

दीवारों को तोड़ने के लिए प्रक्षेपास्त्रों का प्रयोग करना चाहिए जिससे कि सैनिक आसानी से शत्रु के दुर्ग में प्रवेश कर सके तथा किले के चारों ओर बनाई गई सड़कें और रास्तों को तोड़ देना चाहिए जिससे कि राजा व प्रजा पर दविश कर सके। सैनिक दृष्टि से किले की रक्षा करना राजा व प्रजा दोनों का ही कर्तव्य है। मुस्लिम इतिहासकारों जैसे अबुल–फजल, फैजी, अब्दुल रहीम खानखाना तथा उमर खैयान जैसे महान विद्वानों ने भी स्थापत्य कला को बनाये रखने के लिए अपने मत प्रस्तुत किए। राजा का फर्ज है स्थापत्य कला और सैना (अश्व सेना, पैदल सेना, गज सेना व रथ सेना) की रक्षा करना और उनके समस्त उत्तरदायित्वों को निभाना क्योकि राजा राज्य का मुखिया होता है तथा राजा को धर्म व कर्म के अनुसार सेना व समाज की रक्षा करनी चाहिये।

दुर्ग की सथापत्य कला में समरातांत्रिक महत्व अधिक प्रभावशाली और सुदृढ़ होता है। दुर्ग की ऊँचाई तथा उसमें पाये जाने वाले कई प्रकार के मोड़ तथा कटाव विशेष महत्व रखते हैं। दुर्ग में पाए जाने वाले द्वार, घाटियाँ, खाइयां, मेहराव, नक्काशी, प्रागंण ,तहखाने ,दुर्ग के चारो ओर का जंगल, वृक्ष और झांड़ियां, दुर्ग में पाई जाने वाली खिडकियाँ, छज्जे, बुर्ज, छतें, झरोखे, रोशनदान आदि उन सभी का सम्बन्ध दुर्ग की स्थापत्यकला एवं सैन्य दृष्टि से है। दुर्ग की स्थापत्यकला में दुर्ग में प्राचीन मूर्तियां, शिलालेख, चित्रों, सिक्कों, कीर्ति स्तम्भ, विजय स्तम्भ एवं विशाल मीनारें व गुम्बदें भी दुर्ग की स्थापत्यकला में अपना विशेष स्थान रखती हैं।

दुर्गों की स्थापत्य कला का पटाक्षेप करने पर मानव की गतिविधियों एवं दुर्ग की स्थापत्य कला में उसका जो दृष्टिकोण रहा है, दुर्गों की, सुरक्षात्मक दृष्टि से, मजबूती की दृष्टि से और गुप्तचरों की दृष्टि से स्थापत्य का रूप दिया जाता था। स्थापत्य कला शब्द दुर्गों के विकास से एवं महत्व से जुड़ा हुआ है।

डा0 चक्रवर्ती के अनुसार युद्धों का कारण और उनसे बचाव करने के लिये वुद्धजीवियों, पुरातत्वविदों, कलाविदों, एवं दुर्ग निर्माताओं के द्वारा स्थापत्यकला का धीरे धीरे विभिन्न चरणों में विकास होता रहा। प्राचीन भारत में दुर्ग सैन्य संचालन, सैन्य गतिविधियों, राज्य एवं नगर की रक्षा करने के स्तम्भ थे। डॉ0 चक्रवर्ती के अतिरिक्त डॉ0 मंडला ने भी दुर्ग स्थापत्यकला के सिद्धान्त पर सही आयाम दिये और दुर्ग स्थापत्यकला को क्रमोत्तर शोधार्थियों तथा सैन्य शास्त्रियों को अवलोकनार्थ एवं शोधनार्थ के लिये प्रेरित किया।
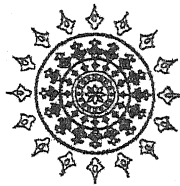
तृतीय अध्याय

बुन्देलखण्ड में विभिन्न दुर्गों की स्थिति

बुन्देलखण्ड में विभिन्न दुर्गों की स्थिति

विश्व की विकासशील परम्परा में बुन्देलखण्ड पाषाण युग से सम्बन्धित रहा है जो वेतवा नदी के किनारे ललितपुर और वनगुवां (बरूआसागर–झाँसी) तथा धसान नदी के किनारे लहचूरा (झाँसी) हरपालपुर एवं बांदा जिले से प्राप्त पाषाणयुगीन पुराअवशेषों के प्रमाणों से गौरान्वित है।

त्रेतायुग में अयोध्या के युवराज श्री राम चन्द्र के चौदह वर्षीय वनवास में चित्रकूट प्रवास और उसके उपरान्त उनके राजा बनने के बाद उनके द्वारा किये गये अश्वमेंघ यज्ञ का घोड़ा देमापुर (जबलपुर) के पुत्र द्वारा पकड़ लिये जाने का स्थल बुन्देलखण्ड में ही है।

सहस्त्रवाहु अर्जुन और जमदग्नि ऋषि से सम्बन्धित स्थल हंडिया होशंगाबाद में है। भगवान शंकर भी भस्मासुर के वरदान के डर से पंचमणि (म०प्र०) में छिपते फिरे। राजा बलि जिन्होंने वावनरूपी भगवान को तीन पग भूमि दान देने का दर्प दिया था, बिलहरी (जिला नरसिंहपुर) का राजा था।

महाभारत काल में भगवान श्रीकृष्ण ने जिस वक्रदन्त दानव का वध किया था, वह वर्तमान दतिया का राजा था। भगवान श्रीकृष्ण का प्रतिद्वन्दी राजा शिशुपाल चन्देरी का राजा था तथा जहां से युद्ध में हार कर रण छोड़कर भगवान श्रीकृष्ण को भागना पड़ा, वह स्थान भी जीराखोह धार्रा (ललितपुर) में है।

महाभारत काल में पाण्डवों ने अपनी अज्ञात वास की अवधि पन्ना एवं विजावर छतरपुर में बिताई। पाण्डव प्रपात, भीम कुण्ड, अर्जुन कुण्ड और वहां की गुफायें साक्षी हैं। युधिष्ठर का अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा भी विदिशा तथा भांडेर (ग्वालियर) पहुंचने का जिक्र पुराणों में है।

चन्देलों के यशस्वी वीर आल्हा, ऊदल के पिता की राजधानी बोहनी (नरसिंहपुर) थी जहां उनकी हत्या कर दी गई थी। ऊदल की भतीजी ने जिस स्थल को वसाया वह रायसेन और जहां माण्डवगढ़ के राजा और ऊदल का युद्ध हुआ वह स्थान टिगुवां (जबलपुर) में है।

---

1. ''बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ'' श्री राम सेवक रिछारिया, पेज–16, ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा– बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

प्राचीन स्थलों के अतिरिक्त कालिंजर, बांदा, चौरागढ (नरसिंहपुर), धामौनी (सागर), सिगौरगढ़ (जबलपुर), ओरछा और झाँसी के किलों एवं गढ़ियों से मण्डित, विशाल वनों से व खनिज पदार्थों से सम्पन्न प्रदेश के किले एवं गढ़ियों को देखकर इनके निर्माताओं को मैं सादर नमन करता हूँ।

महेश्वरी दयाल खरे, स्मारक, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण व नई के मत के अनुसार आदि मानव ने जंगली पशुओं से सुरक्षित रहने की आवश्यकता का अनुभव करके भीत (दीवार) बनाना प्रारम्भ किया। ताम्र–पाषाण युग में अपनी सुरक्षा के लिये अत्यन्त सुदृढ़ किले बनाये जाने लगे थे। मजूमदार ने सिंध नदी और बलूचिस्तान की सीमा के मध्य में विशाल दीवारें तथा बुर्ज देखकर अनुमान लगाया कि यहां किले बनाये गये थे। चक्रवर्ती का कहना है कि ताम्र पाषाण युग के लोगों को किलेबन्दी के सिद्धान्तों का ज्ञान था। किलेबन्दी की कला में दस्यु लोग अत्यन्त प्रवीण थे। उनके पास लोहगढ़ी भी होती थी। इसमें लकड़ी और मिट्टी का उपयोग होता था और एक खाई होती थी।[1]

किलों एवं गढ़ियों की संरचना के सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारों का अलग अलग मत है। बुन्देलखण्ड में किले एवं गढ़ियों की कुल संख्या 338 है। बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियों में उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश दोनों ही आते हैं। उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड प्रान्त में प्रमुख नगर झाँसी (बुन्देलखण्ड का हृदय) में छत्तीस गढ़ियाँ, जालौन में 28, बांदा तथा कर्वी में 18, हमीरपुर महोबा मे 19 तथा ललितपुर में 25 हैं ।

मध्य प्रदेश के अलग–अलग जिलों में किलों एवं गढ़ियों की स्थिति भिन्न है। टीकमगढ़ में 50, छतरपुर में 37, पन्ना में 8, दमोह में 18, सागर में 23, जबलपुर में 15, विदिशा में 5, रायसेन में 4, नरसिंह पुर में 12, होशंगाबाद में 10, गुना में 6, शिवपुरी में 7, ग्वालियर में 14, तथा दतिया में 5 इस प्रकार से सम्पूर्ण योग 338 है। बुन्देलखण्ड में किले एवं गढ़ियों का जोड़ दोनों प्रान्तों से मिलाकर बनाया गया है, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश।

---

1. ''बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ'' श्री राम सेवक रिछारिया, पेज–17, 18, ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा– बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

"उत्तर वैदिक काल में नगरों को विशाल दीवारों तथा परकोटे के साथ बुर्जों तथा अति विशाल द्वारों से सुरक्षित रखा जाता था। वैशाली, मिथला तथा पोताली इसके उदाहरण थे। महाउम्मद जातक में परकोटे तथा बुर्जों के अतिरिक्त तीन खाइयों का वर्णन है। एक खाई में पानी, दूसरे में कीचड़ तथा तीसरी सूखी रखी जाती थी।[1]"

मैंगस्थनीज ने पाटिलपुत्र (पटना) के सम्बन्ध में लिखा है कि काष्ठ प्राचीर में 61 द्वार तथा 557 बुर्ज थे। बाहर की खाई में सोन नदी का पानी भरा रहता था।

ईशापूर्व की छठी शताब्दी में राजा के नगर में दो विशाल दीवारें बनाई गई थीं। अगले भाग में अनगढ़ पत्थर लगाये गये थे जिनकी लम्बाई 3–5 फीट थी तथा उनके गड़े हुये पत्थरों को दृढ़ता पूर्वक लगाया गया था। कहीं भी गारे का उपयोग नहीं किया गया।

एरियन का कहना है कि किला नगर के एक ऐसे कोने में होता था जो विशेषरूप से सुरक्षित हो। नगर की चाहर दीवारी और दुर्ग के बाहरी भाग की दीवार एक ही होती थी। किला राज्य के सात अंगीकृत तत्वों में से एक कहा जाता है। यह सबसे अधिक महत्वूपर्ण न होने पर भी कोष और सेना आदि के लिये महत्वूपर्ण है।

कौटिल्य के अनुसार शासकों से अपेक्षा की है कि अपने राज्य की सीमा का सुरक्षात्मक प्रबन्ध करें। दुर्ग के चारों ओर तीन खाइयों का निर्माण करना, सुरक्षा का एक आवश्यक अंग है। दुर्ग के भीतर शस्त्रागार को विकसित करना और शस्त्रों का निर्माण कराना अच्छे शासक की पहचान है।

महाजनपद काल के राजनीतिक परिवर्तनों के अनुसार सामूहिक जीवन ने भी नया रूप लिया। गुप्तकाल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहा जाता है। भारत मुसलमानों के प्रवेश के साथ एक नये दृष्टिकोंण में बदलता चला गया। महमूद गजनबी जैसे मुसलिम लुटेरों ने भी अपार सम्पत्ति लूटी। कला की उत्कृष्ट मूर्तियों को खण्डित किया तथा तमाम नागरिकों को प्रताड़ित करके बन्दी बनाकर यहां की संस्कृति, सभ्यता तथा प्राचीन ग्रन्थों को जला कर नष्ट कर दिया तब फिर नये–

---

1. "बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ" श्री राम सेवक रिछारिया, पेज–18, ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा– बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

नये किलों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। इन किलों की किलेबन्दी को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। शत्रु से सुरक्षा के लिये, सामरिक दृष्टि से किले का पर्वत या पहाड़ी स्थलों पर खाइयों, परकोटों, बुर्जों, नदी–नाले या तालाब के समीप बनाये जाते थे।

बुन्देलखण्ड में कालिंजर (बांदा), सिंगौरगढ़ (जबलपुर), चौरागढ (नरसिंहगढ़), धामौनी (सागर), ओरछा (टीकमगढ़), विद्यमान हैं। आपत्तिकाल में सामरिक महत्व के किलों की सुरक्षा के लिये झाँसी और डिमरौनी के किलों का निर्माण हुआ। कुछ ऐसे किले हैं जिसे अधिपति ने अपनी सुरक्षा और निवास के लिये निर्माण कराया। शेष का वे किले हैं जो राजपरिवारों ने अपनी जागीरों में आर्थिक स्थिति के अनुरूप निर्माण कराया। इस प्रकार तीसरी और चौथी श्रेणी के किले एवं गढ़ियाँ बुन्देलखण्ड में विद्यमान हैं।

जिला झाँसी के किले एवं गढ़ियाँ

झाँसी – "झाँसी दुर्ग का प्रथम चरण अथवा मूल भाग वीरसिंह देव द्वारा पूरा कराया गया था। दुर्ग के अन्दर दक्षिणी द्वार से प्रवेश करने पर बायीं ओर सीढ़ियों द्वारा चढ़ने पर मुख्य प्रवेश द्वार, जो सर्वोच्च तोरण के रूप में है, के अन्दर दाहिनी ओर से लेकर बायीं ओर तक के घेरे में जो भाग ऊँची–2 बुर्जों तथा कंगूरों से शोभायमान है, मोटी–2 व चौड़ी दीवार से युक्त दिखायी देता है। यही मूल भाग वीरसिंह द्वारा सर्वप्रथम बनवाया गया था। इस भाग को इन्होंने मंज महल की संज्ञा दी थी।[1]"

दूसरे चरण में शंकरगढ़ वाला भाग है जो पूना के पेशवा बाजीराव द्वितीय द्वारा झाँसी में नियुक्त मराठा सूबेदार नारूशंकर (1742–56 ई0) ने बनवाया था। इसी भाग के दक्षिण दिशा में ऊँची चाहर दीवारों में विशाल शिव मन्दिर का निर्माण भी नारूशंकर ने करवाया था।

---

1. "बुन्देलखण्ड का इतिहास" डा0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 149–150, सुशील प्रकाशन, मेरठ।

किले के तीसरे चरण में जो निर्माण कार्य हुआ, उसमें उत्तर दिशा में गणेश मन्दिर एवं उसके समीप में बने राज प्रासाद है जिनके अवशेष आज भी देखने को मिलते हैं। 1858 में अंग्रेजी आधिपत्य में आ जाने पर इसे आंग्ल स्थापत्यकला में बदल दिया गया था तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व इन तीन खण्डों में से एक में रसोई घर तथा शेष दो खण्डों में भारतीय सैनिक रहा करते थे।[1]"

देगारा— यह झाँसी—कानपुर मार्ग पर लगभग 10 किमी0 है। यह छोटी पहाडी पर अर्द्धनिर्मित खण्डहर रूप से गढ़ी है। इसे कब और किसने बनवाया, इतिहास मौन है। यहां ग्रेनाइट पत्थर की गिट्टी सड़क बनाने हेतु तैयार होती है। एक किंवदंती से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण झाँसी दुर्ग की सुरक्षा व्यवस्था को दृष्टिगत रखते हुये गुप्त संदेश भेजने एवं संकेतों आदि से सूचनायें भेजने हेतु किया गया था।

डिमरौनी— दिगारा वस्ती से दाहिनी ओर दो किमी0 पर डिमरौनी का किला अच्छी स्थिति में खड़ा है। किसने बनवाया इतिहास मौन है। यह गांव सन् 1501 रुद्र प्रताप से लेकर 1742 सावंत सिंह के बुन्देला राज्य में फिर सन् 1742 से 1858 तक नारोशंकर से लेकर रानी लक्ष्मीबाई और 1858 से 1947 तक अंग्रेजों के अधिकार में रहा। यह एक छोटा सा गांव है।

बड़ागाँव— यह स्थान झाँसी—कानपुर सड़क मार्ग पर है। सन् 1606—1627 तक वीरसिंह देव ओरछा के राजा थे उन्होंने अपने 12 पुत्रों में छठवें पुत्र हरदौल को इस बड़ेगाँव की जागीर दी थी। इन्होंने यह किला बनवाया जो अर्द्धखण्डित अवस्था में है। हरदौल के बाद विजय सिंह, प्रताप सिंह और राम सिंह यहां की गद्दी पर बैठे। इस गांव का किला असुरक्षित होने के कारण खण्डहर हो गया।

वराठा— यह बड़ागांव से 5—6 किमी0 पर नदी वेतवा के किनारे बसा था। "यह दागियों की गढ़ी थी। सन् 1800 के लगभग कालपी के सूबेदार आसफ खां ने दागी राजा की कन्या का अपहरण करने हेतु आक्रमण किया। दागी राजा उसमें मारा गया तथा कन्या ने वेतवा नदी में डूब कर अपने को विधर्मी होने से बचाया।[2]"

चिरगांव— यह मध्य रेलवे की झाँसी कानपुर शाखा पर तीसरा रेलवे स्टेशन है। सड़क मार्ग से झाँसी कानुपर सड़क पर है। "बड़ागांव के जागीरदार हरदौल के वंशज रामसिंह ने

---

1. "बुन्देलखण्ड का इतिहास" डा0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 149—150, सुशील प्रकाशन, मेरठ।
2. "बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ" श्री राम सेवक रिछारिया, पेज—33, ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा— बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

अपने आठ पुत्रों में सन् 1763 में जागीर का बटवारा कर मौकम सिंह को चिरगांव की जागीर दी थी। मौकम सिंह के पश्चात पंजन जू और फिर गणेश जू चिरगांव की गद्दी पर बैठे।[1]"

चिरगांव के किले पर अंग्रेजी फौज द्वारा गोलीबारी और आक्रमण हुये जिससे किला ध्वस्त हो चुका था। वर्तमान समय में मात्र इसके खण्डहर मौजूद हैं।

रामनगर— चिरगांव से रामनगर सड़क मार्ग पर है जो वेतवा नदी के तट पर वसा हुआ है तथा यह तहसील मोंठ के अन्तर्गत आता है। यहां पर गढ़ी है जो 1817 में कालपी के आसफ खां द्वारा नष्ट कर दी गई थी।

भरतपुर— भरतपुर तहसील मोंठ में आता है, जो चिरगांव के पास छोटा गांव है एवं वेतवा नदी का किनारा है। इसे 1817 में आसफ खां ने नष्ट कर दिया था।

गरारी— यह चिरगांव के पास छोटा गांव है जो वेतवा नदी के किनारे वसा हुआ है। यहां भी छोटी गढ़ी है। इसे भी 1817 में आसफ खां ने तहस—नहस कर दिया था।

मोंठ— 17वीं शताब्दी में बुन्देलखण्ड में गोसाइयों का प्रबल संगठन था। मोंठ का किला गोसाइयों द्वारा बनवाया गया था। यह किला गोसाइयों से बुन्देलों फिर मराठा तथा ब्रिटिश शासन के आधिपत्य में रहा। प्राणगिरि, मच्छगिरि एवं सिंहगिरि, प्रमुख रहे। ध्वस्त किला अभी भी मौजूद है।

अम्बरगढ़— अम्बरगढ़ झाँसी कानपुर मार्ग पर मोंठ के पास है। यह गांव पहले बुन्देलों के अधिकार में था। ओरछा राज्य की गृह कलह और पतन अवस्था के समय समथर के राजा विष्णु सिंह ने अम्बरगढ़ पर चढ़ाई करके कब्जा कर लिया था। वर्तमान में यह गढ़ी मौजूद है तथा स्थिति भी सामान्य है।

समथर— "अकबर के सूबेदार शमशेर खां ने यह किला बनवाया था तथा यह पहले शमशेर गढ़ कहा जाता था। यह समतल भूमि पर है इसलिये इसे समथर कहने लगे। वर्तमान

---

1. "बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ" श्री राम सेवक रिछारिया, पेज—34, ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा— बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

समय में इस किले में रणजीत सिंह जू देव का निवास स्थान है जो कि गुर्जर वंश से सम्बन्धित हैं। इस किले को गुर्जर वंश से पहले रामसिंह, जो दतिया राज्य से सम्बन्धित थे, उनका इस पर कब्जा था, अर्थात समथर 1711 में दतिया राज्य के अन्तर्गत आता था। छत्रसिंह 1864–1896 तक समथर के राजा रहे तथा इन्होंने राज्य किया और आय बढ़ाने के लिये समथर स्टेट स्टाम्प चालू किये। पूर्व समय में राजा रंजीत सिंह उत्तर प्रदेश में मंत्री रहे तथा आज भी रंजीत सक्रिय राजनीति में बने हुये हैं।"[1]

लोहागढ़– यह किला समथर राज्य के अन्तर्गत आता था। सन् 1857 के विप्लव के समय यहां कुछ विद्रोही मुस्लिम सैनिक आश्रय लिये हुये थे। उन्होंने तीन अंग्रेजों को मारकर बोरों में बन्द करके इस किले में छिपा दिया था। छत्रसिंह का अधिकार इस किले पर था। वर्तमान में यह किला विक्षिप्त और जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है।

गड़ूका– वीरसिंह देव ओरछा नरेश के चौथे पुत्र तुलसीदास को सन् 1657 में जागीर दी गई थी वर्तमान में यह किला ध्वस्त है।

ऐरच– "धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर यह प्रहलाद के पिता हिरण्याकश्यप की राजधानी थी। भूचाल के कारण यहां बड़ा उलट फेर हुआ। किला एवं गढ़ी स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ती है परन्तु वेतवा नदी के तट पर अव्यवस्थित प्राचीन चिन्ह मिलते हैं। इस किले पर मुहम्मदबिन तुगलक का साला आमी सेफ्लूमुल्क शासक रहा तथा बाद में यहां के शासक वीरसिंह जू देव रहे।"[2]

वरेठी– यह प्राचीन राज्य ओरछा का स्थान था यहां मधुकर शाह ओरछा नरेश के समय का किला है। वेतवा नदी का वनोच्छादित स्थल यह किला सम्भवतः दुश्मनों के ओरछा पर आक्रमण होने की स्थिति में गोरिल्ला युद्ध के समय पनाह के रूप में उपयोग करने हेतु निर्मित कराया गया था। वर्तमान में यह किला खण्डहर है।

वनगुवां– वेतवा नदी से झाँसी मऊरानीपुर सड़क पर पुल से पहाड़ियों के पीछे बसा हुआ

---

1. "बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ" श्री राम सेवक रिछारिया, पेज–38–39 ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा– बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

2. वही, पृष्ठ 41।

गांव है। रामशाह और वीरसिंह देव का वरेठी में समझौता न होने पर यहां रहने लगे थे। इस गांव में एक छोटी गढ़ी है जो रेलवे पुल से दो किमी0 दूर बनी है।

बरूआसागर– यह नगर तहसील एवं जिले का विशिष्ट स्थान है। मध्य रेलवे की झाँसी–मानिक पुर शाखा पर दूसरा स्टेशन है।बरूआसागर का किला ओरछा नरेश उद्यैत सिंह ने अपने राज्य काल सन् 1689–1736 के बीच निर्मित कराया था। सन् 1774 में यहां पेशवा व बुन्देला की सेना में युद्ध होने पर महाराज महाद जी सिन्धिया के बड़े भाई ज्योति भाऊ को मार डाला गया था। वर्तमान में यह किला सामान्य स्थिति में है।

कटेरा– झाँसी–मऊरानीपुर सड़क मार्ग पर बंगरा है। बंगरा से कटेरा के लिये सड़क मार्ग है। यह किला ओरछा राज्य गद्दी से सम्बन्धित रहा है तथा 1857 के सैनिक विद्रोह में इस किले का विशेष योगदान रहा है।

मऊरानीपुर– यह झाँसी जिले की तहसील है तथा मध्य रेलवे की झाँसी–मानिकपुर शाखा पर सातवां स्टेशन है। मराठा काल में यहां पर किला था, इस किले में महारानी लक्ष्मीबाई का किलेदार लखपत राव भाऊ रहता था। किला वर्तमान में खण्डहर अवस्था में है।

टोड़ी–फतेहपुर– मऊरानीपुर से गुरसरांय सड़क मार्ग के मध्य से टोड़ी–फतेहपुर सड़क मार्ग पर स्थित है। हरदौल के वंशज बड़गांव झाँसी के जागीरदार रामसिंह ने अपने राज्य को अपने आठ पुत्रों में बांट दिया । इस किले को हिन्दूपति बुन्देला ने बनवाया था परन्तु बाद में इस किले पर कब्जा मराठाओं ने कर लिया था। यह किला वर्तमान में जीर्ण–शीर्ण और ध्वस्त अवस्था में है।

विजना :– "विजना मऊरानीपुर से टोड़ी–फतेहपुर और टहरौली सड़क मार्ग पर स्थित है । विजना के किले पर बुन्देला, मराठा और अंग्रेजों का अधिकार रहा। हिम्मत सिंह तथा छत्रपति सिंह विजना के शासक हुए थे। जिसमे छत्रपति सिंह अंतर्राष्ट्रीय

पखावज वादक रहे जो कि राष्ट्रपति पुरस्कार तथा अन्य कई पुरस्कारों से विभूषित किये गए थे। वर्तमान में किला ध्वस्त एवं खण्डहर स्थिति में है।[1] "

दुरबई :– यह पुराना राज्य रहा है जो टहरौली और टोड़ीफतेहपुर के पास है। मानसिंह बुन्देला दुरबई के शासक थे। इस समय दुरबई राज्य के किले की स्थिति दयनीय है।

बंका पहाड़ी:– " यह टहरौली और गुरसरॉय मार्ग पर स्थित है। उम्मेद सिंह बुन्देला यहाँ के शासक रहे तथा वे बहादुर व सुन्दर सजीले थे इसीलिए उन्हें बंका की उपाधि दी थी।"[2] वर्तमान में यह गढ़ी अंतिम साँस ले रही है।

भसनेह :– यह स्थान मऊरानीपुर से गुरसरॉय सड़क मार्ग पर बड़वार बाँध की पहाड़ियों के पास अवस्थित है। यहाँ के शासक महरबान सिंह बुन्देला रहे । भसनेह का किला वर्तमान समय में खण्डहर हो चुका है।

गुरसरॉय :– यह नगर मऊरानीपूर से 38 किमी0 दूरी पर स्थित है। इसको बसाने वाले प्रमूख रूप से गिरि (गुसांई) थे। बाद में यहॉ का किला मराठा शासकों के अधिकार में आ गया । इस समय यहॉ का किला क्षतिग्रस्त है।

गरौठा :– सावन्त सिंह ने मराठों के आक्रमण के कारण झाँसी किले का किलेदार, राजेन्द्रगिरि गुसांई को बनाया था। वर्तमान में गरौठा का किला बिल्कुल नष्ट हो गया है। अब खण्डहर के नाम पर बाजार के पीछे टीला रह गया है।

तैदोल :– यह बरूआसागर के पास 4 मील की दूरी पर छोटा सा गॉव है। यहाँ की पहाड़ियों पर एक खण्डहर किला है। इस किले का इतिहास अज्ञात है कि इसका निर्माता कौन है ?

हरपुरा :– हरपुरा बरूआसागर के पास उजड़ा सा एक गॉव है। यह कभी एक सम्पन्न नगर था , परन्तु वर्तमान में न आबादी है और न किला ।

---

1. "बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ" श्री राम सेवक रिछारिया, पेज–45 ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा– बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

2. वही, पृष्ठ 49 ।

कारी – दाऊड़पुर :– इस किले पर फतेहसिंह बुन्देला का शासन था जो कि नि :सन्तान स्वर्ग वासी हो गए थे। वर्तमान में इसके खण्डहर शेष हैं।

पसारी :– पसारी के शासक भुजबल सिंह बुन्देला थे जो कि नि :सन्तान स्वर्गवासी हो गए थे। किला पूरा ध्वस्त हो चुका है।

गढ़वई :– यहाँ पर किला था लेकिन वर्तमान समय में इस किले का नामोनिशान नहीं है ।

विराटा, रामनगर, भरतपुर, गिरारी :– बेतवा नदी के किनारे बसे हुए छोटे गॉव दांगी , अहीर और गुसाई जागीरदारों के थे, लेकिन गजेटियर तथा एतिहासिक पुस्तकों में इनके द्वारा निर्मित किले एवं गढ़ियों का उल्लेख नहीं मिलता है।

टहरौली :– यह झाँसी –बरूआसागर घुघुवा धमना और गुरसराय सड़क मार्ग पर अवस्थित है। यहां पर बुन्देलों का शासन रहा है। इतिहास इस सम्बन्ध में मौन है कि वास्तव में यह किसकी जागीर थी।

बमनुआँ :– यह टहरौली के पास स्थित है। यहाँ का किला बुन्देलों और मराठा शासकों के आधिपत्य में था। लक्ष्मण सिंह ने इस किले को बनवाया था परन्तु वर्तमान में धूल धूषित हो चुका है।

जिला जालौन के किले एवं गढ़ियाँ

जालौन जिले में 26 किले व गढ़ियाँ हैं। यहां पंचनद्या का घनघोर जंगल और बीहड़ है। जो भी इस क्षेत्र में शक्तिशाली हुआ इसने यहां पर किले या गढ़ी का निर्माण कराया। 1858 के महान विप्लव के समय अंग्रजों ने बहुत से किले एवं गढ़ियों को ध्वस्त कर दिया वर्तमान में अवशेष या खण्डहर के रूप में सांस ले रहे हैं।

पहाड़गॉव :– यह गॉव झाँसी से कानपुर सड़क मार्ग पर पूँछ और एट के पास अवस्थित है। सन् 1800 में पहाड़ सिंह ने इस किले को बनवाया था।

पिंडारी :– यह स्थल झाँसी से कानपुर सडक मार्ग पर है । एक किला बना हुआ है जो खण्डहर की स्थिति में है।

नदीगाँव :– यह झाँसी से कोंच सड़क मार्ग पर है। अतीत में दतिया रियासत के जागीरदार बुन्देला एवं वर्तमान में उ0 प्र0 के जनपद जालौन की कोंच तहसील में आता है। वर्तमान समय में इस किले में इण्टर कॉलेज है।

खासगी – बँगरा :–यहां के शासक रघुनाथ सिंह बुन्देला थे। यहाँ का किला ध्वस्त हो चुका है।

कोंच :– झाँसी–एट से कोंच सड़क मार्ग पर पुराना ध्वस्त किला है। जिसे सन् 1857 में तात्या –टोपे और अलीबहादुर नवाब ने मोर्चा स्थल बनाया था।

गूजर हरदोई :– यह जनपद जालौन के उरई मुख्यालय से कोंच मार्ग पर 16 किमी0 की दूरी पर स्थित है। सन् 1858 के विद्रोह के समय सर ह्यूरोज की फौज ने इसे नष्ट कर दिया था।

उरई :– जालौन जिले का प्रमुख नगर उरई है जिसे उद्दालक ऋषि ने बसाया था। किले का रूप वर्तमान में विद्यालय व महा विद्यालय में बदल गया है लेकिन इसके पूर्व सर ह्मयूरोज की फौज ने इस किले को ध्वस्त कर दिया था।

महौनी :– झाँसी–कानपुर सड़क मार्ग पर उरई के पास सन् 1071 में यहाँ तातार खाँ को वीर भद्र ने हराया।सन् 1182 में पृथ्वीराज चौहान ने सिरसागढ़ जीतकर महौनी को लूटा। यहां के शासक वीरभद्र , कर्णपाल, कन्नरशाह तथा अर्जुनपाल रहे। किला ध्वस्त है।

जालौन :– जालौन जनपद है परन्तु जिले का समस्त कार्य उरई में होता है। यहां मराठा शासक रहे । यहां का किला ध्वस्त हो चूका है।

छिरिया सलेमपुर, बंगरा, सरावन, माधौगढ़, ऊमरी ,बाबई ,चुखी, छौंक एवं बबीना

ये समस्त जनपद जालौन के अन्तर्गत आते हैं । इन सभी ग्रामों के किले व गढ़ियां खण्डहर हो चुके हैं, लेकिन बाबई व सरावन की गढ़ियां अभी भी सामान्य

अवस्था में हैं तथा इनमें विद्यालय चले रहे हैं, इन किलों को सर ह्यूरोज की फौज ने नष्ट कर दिया था।

कदौरा :- कदौरा छौंक सड़क मार्ग पर है। यहां एक पुराना किला है। पेशवा बाजीराव के साथ हैदराबाद के नवाब आसिफशाह निजामुलमुल्क का नाती गाजीउद्दीन बुन्देलखण्ड आया था। पेशवा ने उसे बावन गॉव की जागीर दी थी। जो कदौरा बावनी कहलाती रही। वर्तमान में यह किला छतिग्रस्त है।

सैंदनगर, कोटरा, टिमरान, सिरसागढ़ तथा बेरी :- इन सभी जगहों के किले ध्वस्त हो चुके हैं। परन्तु सिरसागढ़ पृथ्वीराज चौहान और चन्देलों की रण स्थली के लिए , आल्हा ऊदल की स्मृति जाग्रत करने की भूमि है।

कालपी :- यह मध्य रेलवे का झाँसी –कानपुर शाखा का पर्यटक एवं धार्मिक स्थल है। इसे बुन्देलखण्ड की काशी कहा जाता है। यह नगर यमुना नदी के दक्षिणी तट पर स्थित है। यहां चन्देलकालीन राजा वासुदेव ने एक किला बनवाया था। किले के चारों ओर पक्की खाइयाँ बनी हुई है जो किले की सुदृढ़ता का प्रमाण है। यह बाहर 125 फीट तथा अन्दर 80 फीट ऊँचा है। "मराठों के शासन काल में यह राज्य न्याय का कोषागार था। 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय में इस भवन में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई , पटवा के राजा कुँवरसिंह, बिठूर के नाना साहेब और तात्या टोपे ने युद्ध भूमि के सम्बन्ध में मंत्रणा की थी।[1]"

जगम्मनपुर :- यह किला पंचनद्या के संगम से 4 किमी0 दूर है।सेंगर क्षत्रियों की राजधानी रही । राजा जम्मनशाह, उदितशह,मानशाह, भीमशाह, प्रतापशाह, सुमेरशाह, रतनशाह, वखतशाह, महीपतशाह, रूपशाह, लोकेन्द्रशाह,वीरेन्द्रशाह तथा वर्तमान समय में महाराजा राजेन्द्रशाह इस राज्य के शासक रहे। किले के मुख्य द्वार पर पीतल जड़े तथा नुकीले सूजों लगे लकड़ी के किवाड़ लगे हैं। इस किले में

---

1. "बुन्देलखण्ड का राजनैतिक तका संस्कृतिक इतिहास", अब्दुल क्यूम मदनी, पृ0 96, Kimi offset Jhansi 440066

विभिन्न प्रकार की चित्रकला देखने योग्य है तथा यह किला पतली ईंटों तथा गारे चूने की जुड़ाई का बना है। वर्तमान समय में विद्यालय चल रहा है। जो कि श्री राजमाता वैष्णवी जूदेव इण्टर कॉलेज , जगम्मनपुर के नाम से है।

रामपुरा :- रामपुरा के शासक जयपुर (आमेर) कछुवाहवंश से सम्बन्धित थे। महाराजा रामचन्द्र के पुत्र उसके वंशज कुशवाहा क्षत्रियों के राजा दूल्हादेव नरवर के राजा के दो पुत्र.कंकाल देव और वीकल देव थे। इस गढ़ी के चारों ओर 150 फुट चौड़ी तथा 20 फुट गहरी खाई है। प्रवेश द्वार 20 फुट ऊँचा है। वर्तमान समय में इस गढ़ी में विद्यालय चल रहा है जो कि राजा समर सिंह इण्टर कॉलेज, रामपुरा के नाम से है तथा अधिकांशतः भाग ध्वस्त हो चुका है, परन्तु कुछ भाग सामान्य है

गोपालपुरा :- कोंच तहसील में पहूज नदी के किनारे उरई से पश्चिम बंगरा होते हुए 44 किमी0 पर स्थित है। यह गोपाल बाबा की तपोभूमि गोपालकर भी कहा गया है।इस जागीर की स्थापना लहार (भिण्ड) म0 प्र0 के राजा रूपपाल सिंह के छोटे पुत्र आलमराव द्वारा की गई थी। आलमराव ने गोपाल पुरा गढ़ी का निर्माण 1574 में कराया था। यह गढ़ी पहुज के किनारे 150फुट ऊँची कगार पर अवस्थित है। मुख्य द्वार की दीवार 15 फीट चौड़ी है।

जिला बादाँ के किले एवं गढ़ियाँ

बाँदा मुख्य रूप से दो बातों में प्रसिद्ध है पहली बात तो यह है कि राजा राम ने अपने वनवास काल का अधिकांश समय चित्रकूट मे व्यतीत किया, इसलिए चित्रकूट विश्व प्रसिद्ध स्थाल है। दूसरी बात यह है कि सामरिक महत्व का किला कालिंजर में है, जिस पर मुगलों ने कई बार आकमण किए "जहाँ शेरशंह सूरी बारूद से झुलस कर मर गया था । अंग्रेजो ने सन् 1853 में तारोहा अपने कब्जे में कर लिया था। सन् 1858 के विप्लव के समय बाँदा की छावनी के सिपाही विद्रोह में शामिल हो गए थे। अंग्रेज अपनी सुरक्षा के लिए चरखारी

और आजमगढ़ की ओर भाग गए थे । अंग्रेज सेनापति मिटलाक ने बाँदा के नबाव अली बहादुर की 8 तोपें और 800 सैनिक नष्ट कर दिये थे। बाँदा नबाव अपनी सम्पत्ति लेकर जलालपुर होकर कालपी पहुँचा। मिटलॉक के कर्वी पहुचने के पूर्व नारायणराव, माधवराव कर्वी छोड़कर भाग गए थें।"[1]

कालिंजर :- कालिंजर का किला चन्देलयुगीन किलों में से सबसे प्रसिद्ध किला है। मध्यकाल भारत में यह अद्वितीय माना जाता था। यह किला इलाहाबाद से 90 मील दक्षिण–पश्चिम में एक पहाड़ी की चौरस चोटी पर बना हुआ है यह दुर्ग आयताकार है इसकी लम्बाई लगभग डेढ़ किमी0 है। किले में दो मुख्य द्वार तथा इसके अलावा सात दरवाजे और हैं।

मड़फा :- " यह किला कालिंजर से उत्तर –पूर्व 18 किमी0 की दूरी पर है। यहाँ का किला बहुत बड़ा है। इस किले का किसी भी मुस्लिम इतिहासकार ने वर्णन नहीं किया। इस तथ्य के आधार पर कनिंघम का अनुमान है कि कालिंजर के पतन के बाद ही इसकी ख्याति हुई । अब यह किला बस्ती से दूर तथा जंगल में है।"[2]

रसिन :- रसिन ग्राम बदोसा और मड़फा के बीच में है इसकी स्थापना चन्देल शासक राहिल ने करायी थी। छत्रसाल के समय यहाँ रघुवंशी राजा राज्य करते थे। इस गॉव में ईट व चूने का पुराना किला है। वर्तमान में यह किला ध्वस्त हो चुका है।

भूरागढ़ :- केन नदी के किनारे बाँदा शहर के पास भूरागढ़ का किला है इस किले को छत्रसाल के नाती गुमान सिंह ने निर्मित कराया था।

अगासी :- यह बबेरू अगासी सड़क मार्ग पर अवस्थित है। इस किले को राजपूतों ने बनवाया था।

बाँदा :- यह बाँदा जिले का मुख्यालय है जो केन नदी के किनारे बसा हुआ है। यहाँ दो प्रमुख रेलवे मार्ग गुजरते हैं झाँसी इलाहाबाद तथा कानपुर चित्रकूट । प्रसिद्ध

---

1. "बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ" श्री राम सेवक रिछारिया, पेज–74 ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा– बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

2. "बुन्देलखण्ड का राजनैतिक तथा संस्कृतिक इतिहास" अब्दुल क्यूम मदनी, पृ0 95, Kimi offset Jhansi 440066

कवि पद्माकर का जन्म 1750 में इसी नगर में हुआ था। यहां पर मराठा और नबावों का शासन रहा है। यहाँ का किला रनगढ (बॉदा)नाम से जाना जाता है।

बरगढ़, भौनरी, तारोहा, जसपुरा, कल्यानपुर :– इन सभी जगहों के किले खण्डहर हो चुके हैं। कल्यानपुर का पुराना नाम कल्यानगढ रहा है तथा बुन्देलों का शासन रहा है।

चित्रकूट धाम कर्वी :– यह बाँदा से इलाहाबाद सड़क मार्ग पर है तथा इस नगर का महत्व धार्मिक अधिक पर एतिहासिक कम रहा है। अमृतराव के निधन के पश्चात् उनके पुत्र विनायक राव ने यहाँ सुन्दर किला बनवाया था। जो बाड़ा कहलाया ।

लौड़ी, मुरबल, पैलानी, सिहुन्डा, तिन्दवारी :– इन सभी नगरों के किले ध्वस्त हो चुके हैं तथा इन किलों का कोई विशेष अस्तित्व नहीं रहा है। लौड़ी को लोखरी भी कहा जाता है। सिहुन्डा बॉदा जिले की तहसील नरैनी में आता है। जो राजा पिथौरा के द्वारा बसाया गया था।

जिला हमीरपुर तथा जिला महोबा संयुक्त

जिला हमीरपुर एवं जिला महोबा में संयुक्त में 20 एतिहासिक किले एवं गढ़ियॉ है। यह चन्देल राजाओं का प्रसिद्ध स्थल है। आल्हा ऊदल की प्रसिद्ध कर्मभूमि रही। इस क्षेत्र में अनूपगिरि गुसाई तथा पं0 परमानन्द जैसे महान व्यक्तित्वों की कर्मभूमि , रणभूमि, एवं असहयोग आन्दोलन में इन लोगों का विशेष त्याग रहा है।

हमीरपुर :– बॉदा से कानपुर रेलमार्ग जिले का मुख्यालय है इसे हमीरदेव जो अलवर के कलचुरी राजपूत थे , हमीरपुर बसाया था। हमीरपुर के बसाने के सम्बन्ध में विवाद है। पृथ्वीराज चौहान ने हमीरपुर का किला बनवाया था।

पचखुरा , सुमेरपुर , सुरौली–बुजुर्ग , सायर :– इन सभी नगरों के किले ध्वस्त हो चुके हैं तथा ईटों के टीले के रूप में रह गये हैं। सुमेर पुर की सभ्यता यूनानी है जिसका पता टूटी ईटों के टीलों से प्राप्त होता है।

मौदहा :– हमीरपुर से 32 किमी0 बॉदा से जलालपुर सड़क पर। कहा जाता है कि मिश्र निवासी शेख महमूद ने इसे बसाया था लेकिन मुख्य किला विजय बहादुर चरखारी नरेश ने बनबाया था।

जलालपुर और मझगुवां :– किले दोनों जगहो के ध्वस्त हो चुके हैं। मझगुवां को आबू पर्वत से नाहरराव के वंशज ने रामगढ़ का किला बनवाया था । जो धसान नदी के किनारे बना हुआ है ।

राठ :– यह हमीरपुर और झॉसी से सड़को द्वारा जुड़ा हुआ है इस नगर को राठौर क्षत्रियों द्वारा बसाया गया था ।यहॉ दो किले थे । दोनों ही वर्तमान में खण्डहर हो चुके हैं। एक जैतपुर के राजा का दूसरा चरखारी के राजा का ।

जैतपुर :– यह झॉसी–मानिकपुर मध्य रेलवे के वेलाताल स्टेशन से 2 किमी0 पर स्थित है । वर्तमान में यहॉ एक खण्डहर किला है जो केशरी सिंह का बनवाया हुआ था।

कुलपहाड़ :– यह हमीरपुर से 96 किमी0 है पहले इसका नाम कोल्हूपारा था। 18वीं शताब्दी में इसे कुलपहाड़ कहा जाने लगा । वर्तमान में यहॉ किला है , सेनापति महल है । यहां दो भूमिगत सुरंगे हैं एक सुंगरा की ओर और दूसरी चरखारी की ओर जाती है।

सुंगरा :– यह चरखारी से 26 किमी0 है यह पहले कुँवरपुरा कहलाता था। यहां का किला वर्तमान में खण्डहर है।

महोबा :– महोबा की चन्देल राजधानी का प्राचीन किला मदनसागर से उत्तर की ओर एक छोटी पहाड़ी पर बना हुआ है। इसकी लम्बाई 1625 फीट तथा चौड़ाई लगभग 600 फीट है। इसके मुख्य दो दरवाजे हैं– एक भैंसा दरवाजा तथा दूसरा दरवाजा पूरब की ओर ।

श्रीनगर, सूपा :– इन दोनों नगरों के किले आबाद हैं परन्तु कुछ हिस्सा खण्डहर भी हो चुका है। सूपा के किले में इस समय भी लोग रहते हैं। यहाँ सुगरा के पवार नौने अर्जुन सिंह का बनवाया हुआ किला है। श्रीनगर का किला 1825 के लगभग मोहनसिंह बुन्देला ने बनवाया था।

जिगनी :– जिगनी बेतवा धसान नदी के किनारे का संगम है जो सरीला के पास है। "जिगनी पर पद्म सिह रसन का अधिकार रहा था। इसके अतिरिक्त पृथ्वीसिंह , भोपालसिंह,लक्ष्मण सिंह द्वितीय , भानुप्रताप सिंह तथा भूपेन्द्र विजय सिंह प्रमुख रहे। 29 अप्रेल 1948 को इस राज्य का विलय विंध्य प्रदेश में हुआ[1]।"

सरीला :– इस राज्य का 26 अप्रेल 1948 को विध्यप्रदेश में विलय हुआ था। यह राज्य जैतपूर के राजा पहाड़ सिंह ने सन् 1755 में अपने छोटे पुत्र मानसिंह को जागीर में दिया था।

चरखारी :– चरखारी का प्राचीन नाम चरखानी है क्योंकि यहाँ आस–पास घना जंगल था । यह स्थान पन्ना के राजा छत्रसाल का था ।विजय बहादुर ने मोन्दाहा किला, झील और विश्राम गृह का चरखारी में निर्माण कराया था। वर्तमान समय में चरखारी का किला सामान्य व ठीक स्थिति में है।

बीहट,कोनिया तथा पसैला :– इन तीनों नगरों की गढ़ियाँ नष्ट हो चुकी हैं। यहाँ बुन्देलों की गढ़ियाँ थीं। इनको ध्वस्त किसने किया इतिहास मौन है।

जिला ललितपुर के किले एवं गढ़ियाँ

ललितपुर पहले झाँसी जिले में आता था, परन्तु स्वर्गीय हेमबती नन्दन बहुगुणा के मुख्य मंत्रित्व काल में ललितपुर जिला बनाया गया था। इस जिले में 25 किले एवं गढ़ियाँ हैं। यहाँ के सारे शासक बुन्देला थे। अंग्रेजों ने महान विप्लव के समय मदनपुर, मड़ावरा, मानपुर, तालबेहट, कैलगुवाँ तथा बाँसी के

---

1. "बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ" श्री राम सेवक रिछारिया, पेज–97, ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा– बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

किले ध्वस्त कर दिए थे।

राजनीतिक दृष्टि की बजाय यह किला पुरातात्विक एवं एतिहासिक दृष्टि से अधिक सम्पन्न है।वर्तमान समय में 50 गावों में प्राचीन अवशेष अभी भी विद्यमान हैं।

ललितपुर :— ओरछा नरेश मधुकरशाह ने ओरछा राज्य का विस्तार किया तथा इनका विस्तार प्रभावी और न्याय संगत था। ललितपुर के इतिहास का अधिकतर सम्बन्ध मुगल सरदारों तथा बुन्देलाओं से रहा है । ललितपुर के चारों ओर म0 प्र0 की सीमा टकराती है। वर्तमान समय में यहाँ का किला धूल धूसित हो चुका है। जिसका अस्तित्व समाप्ति की ओर है।

बार :— बार ललितपुर जिले के अंतर्गत आता है तथा यहां पर भी बुन्देलाओं का शासन रहा है। भरतसिंह यहां के प्रमुख शासक रहे तथा चन्देरी को अपनी राजधानी बनाया था और 1618 में तालबेहट में किला बनवाया जिसे भरतगढ़ कहा जाता है।

केलगुवां :— बार के पास राजा मोर प्रहलाद ने सन् 1830 में केलगुवां को अपनी राजधानी बनायी थी। सर ह्ययूरोज ने केलगुवा , बार , बॉसी , तालबेहट के किलों को ध्वस्त किया था।

तालबेहट :— तालबेहट , झाँसी – सागर मार्ग पर स्थित है तथा यहां से राष्ट्रीय राजमार्ग तथा रेलवेमार्ग दोनों ही निकलते हैं। तालबेहट के किले को भरतसिंह ने बनवाया था जिसे भरतगढ़ कहा जाता है। किले के चारों ओर पहाड़ी और घने जंगल प्राकृतिक सौन्दर्यता का प्रतीक हैं। किले की स्थिति सामान्य है।

बांसी , बिजरौठा , ककराना , खड़ेसरा , जामुनधाना , बरोदा :— इन सभी किले एवं गढ़ियों के निर्माता भरतसिंह थे । वर्तमान में यहॉ के किले एवं गढ़ियॉ पूर्णरूप से ध्वस्त हो चुके हैं।

पाली , बम्हौरी (बार) ,बानपुर :– इन ग्रामों के किले एवं गढियों को भरतसिंह ने बनवाया था । वर्तमान में यहां के अधिकतर किले एवं गढियों नष्ट होने की कगार पर है।

महरौनी :– महरौनी को चन्देरी के राजा मानसिंह ने 1736–50 में मराठों से डरकर अपने भाइयों को जागीर दी थी । अपनी सुरक्षा के लिए महरौनी का किला बनवाया था।

डोंगरा :– डोंगरा वर्तमान समय में ललितपुर जिले में आता है तथा यहां बुन्देलों का शासन रहा है, यहाँ की गढ़ी ध्वस्त हो चुकी है।

चॅदेरी :– चंदेरी को 1630–63 तक भरतसिंह ने अपनी राजधानी बनाया था। इसके अतिरिक्त चंदेरी की गद्‌दी पर दुर्गसिंह ,दुर्जनसिंह , मानसिंह ,अनुरूद्ध सिंह , रामचन्द्र प्रजापाल और मोर प्रहलाद शासक हुए । चन्देरी के अधिकतर किले एवं गढ़ी ध्वस्त हो चुके हैं। बाद में चन्देरी मराठों के हाथ रहा ।

कैलगुवाँ :– " सन् 1736–50 में मानसिंह से पेशवा के सूबेदार ने दक्षिण पश्चिम का कुछ भाग छीना और मोर प्रहलाद के चंदेरी की गद्‌दी पर आसीन होते ही सम्पूर्ण चंदेरी राज्य को सिंधिया द्वारा हड़प लिया गया। चंदेरी से आने पर मोर प्रहलाद ने कैलगुवाँ राजधानी बनाई जो सन्1813 से 1830 तक राजधानी रही। 15 मार्च सन्1858 को वायलो ने कैलगुवां के किले को तोप के गोलों से ध्वस्त कर दिया था।[1] "

जाखलौन (ललितपुर) :– सन् 1775 में यहां के जागीरदार धुरमंगल थे जिन्होंने चंदेरी के अवयस्क राजा रामचन्द्र को गद्‌दी पर बैठाया था।

मसौरा खुर्द (ललितपुर) :– चंदेरी के राजा अनुरुद्ध सिंह सन् 1750–1775 तक गद्‌दी पर रहे। इनकी मृत्यु के बाद उनका पुत्र रामचन्द्र नाबालिग गद्‌दी पर बैठा और काका हर्ष सिंह उनके संरक्षक बने।

---

1. *"बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ" श्री राम सेवक रिछारिया, पेज–123, ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा– बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।*

मड़ावरा– सन् 1858 में मड़ावरा के किलेदार जगदेव माहौरकर थे जिन्होंने सर ह्यूरोज के पहुंचने पर 8 मार्च को उनकी सहायता की थी।

बुन्देलों की अन्य जागीरें– इस क्षेत्र की अन्य जागीरें सिन्ध वाहा, गौना गिरार, मैलौनी, गिदवाहा, गदयाना, रजवाहा, और दैलवारा हैं। सभी जागीरदारों के निवास गढ़ी कहलाते रहे। पुरानी गढ़ियाँ खण्डहर हो गई हैं।

यह सम्पूर्ण जिला सन् 1841–42 के बुन्देला बिद्रोह या सन् 1857–58 के महान विप्लव के समय मर्दन सिंह वानपुर के बिद्रोह में उल्लिखित रहा अन्यथा यह क्षेत्र रहा।

जिला छतरपुर के किले एवं गढ़ियाँ

छतरपुर, पन्ना–झाँसी मार्ग पर स्थित है।यहाँ से खजुराहो, महोबा, टीकमगढ़, हरपालपुर पहुंचा जा सकता है। समीपस्थ मध्य रेलवे की झाँसी–मानिकपुर शाखा का रेलवे स्टेशन हरपालपुर है। इस नगर का सम्बन्ध महाराजा छत्रसाल से जुड़ा हुआ है। महाराजा छत्रसाल ने इस जंगली क्षेत्र को अपनी कर्मठता से अभिसिंचित करके मऊ सहानियाँ के पास एक नया गॉव, अपनी पुरानी जागीर महेवा – नुना के नाम पर महेवा बसाकर किला और अपना रनवास बनाया था। फिर सुरक्षा की दृष्टि से पन्ना को राजधानी बनाया। इस जिले में जितने भी किले थे वे प्रायः छत्रसाल के वंशजो के ही थे।

सिंदुरखी, वसारी, वमारी, इमिलिया, बिक्रमपुरा, मनकारी, लालपुर, टटम्, बरौही, पहरा एवं बिलहरी

"इन सभी जागीरों के जागीरदार क्रमशः लल्ला पहाड़सिंह, रानी नन्हीं दुलैया, दिमान कीरत सिंह, दिमान अमान सिंह, राव बैंकटराव, दिवान उमराव सिंह, दिवान रघुनाथ सिंह, दिवान अमान सिंह, दिवान मानसिंह एवं बिलहरी के माफीदार दीक्षित माधवराम थे। इन सभी जागीरदारों की गढ़ीं थीं।

आलीपुर– यह झाँसी–छतरपुर सड़क मार्ग पर स्थित है। इसका निकटस्थ रेलवे स्टेशन हरपालपुर है। यह परिहारों का अकेला राज्य रहा है। इस राज्य के राजवंश का सम्बन्ध ग्वालियर के परिहार राजाओं से था। " 1226 में जुझार सिंह परिहार को ओरछा की जागीर दी गई थी तथा इनके पुत्र धागचन्द्र के अधिकार में मऊसहानियां से आलीपुर का क्षेत्र रहा। इसके बाद अनेक शासक गरीबदास, अचल सिंह, प्रताप सिंह, पंचम सिंह, हिन्दूपत, क्षत्रधारीसिंह, हरपाल सिंह, रघुराज सिंह थे इनके बाद यादवेन्द्र सिंह और अब मानवेन्द्र सिंह हैं।"

गरौली– यह स्थान धसान नदी के किनारे नौगांव छावनी के पास है। यहां का राजघराना ओरछा के राजा रुद्रप्रताप (सन् 1946 से 48) के तृतीय पुत्र उदयादित्त जागीरदार नुना महोबा के छठवें पुत्र प्रेमचन्द्र के तृतीय पुत्र मानसिंह के वंशज उत्तराधिकारी, इन्द्रमणि, सहमणि, बखत सिंह, जयसिंह, अनुरूद्ध सिंह, के बाद भगवन्त सिंह के पुत्र गोपाल सिंह हुये। इनके बाद भी कई शासक हुये परन्तु अब राजा रवेन्द्र सिंह जू देव हैं।

बिजावर – पन्ना के राजा हिन्दूपत ने सन् 1758–76 के बीच महाराजगंज बिजावर का किला बनवाया। इसके बाद अन्य शासक केसरी सिंह, रतन सिंह, लक्ष्मण सिंह, भानु प्रताप सिंह, सावंत सिंह तथा 1940 में गोबिन्द सिंह गद्दी पर बैठे। गोबिन्द सिंह नाबालिग थे, अतः अंग्रेजी सरकार ने पन्ना के महाराज यादुवेन्द्र सिंह को प्रबन्धक बनाया। 29 अप्रैल 1948 को बिजावर राज्य का विन्ध्य प्रदेश में विलय हो गया। गोबिन्द सिंह को किला, कोठी, फार्म के साथ 70700 रू0 प्रीवीपर्स प्रदान की गई। सन् 1983 में उनका निधन हो गया। इनके एक पुत्र था।

लुगासी– यह नौगांव के पास है, यहां के शासक अमर सिंह, नवल सिंह, गन्धर्व सिंह, धीरज सिंह, सरदार सिंह, हीरा सिंह, खेत सिंह, छत्रपति सिंह तथा अन्तिम शासक 1935 में भोपाल सिंह हुये।

नैगुवां–रिवई– यह झाँसी मार्ग पर मध्य रेलवे की घुटई स्टेशन के पास है। इस राज्य का निर्माता लक्ष्मण सिंह दौआ था। नैगुवां रिवई के अन्तिम शासक (1937–48) रतन सिंह रहे।

गौरिहार– यह लौंड़ी के पास है। यह ब्राह्मण राज्य रहा है। इसके संस्थापक पं0 राजाराम थे तथा अन्तिम शासक अवधेश प्रताप सिंह (1935–48) रहे। फिर इस राज्य का विन्ध्य प्रदेश में विलय हो गया।

मऊ सहानियां– यह नौगांव छतरपुर के मध्य स्थित है। छत्रसाल के समय में यह स्थान बेहद महत्वूपर्ण रहा। छत्रसाल ने यहां महल बनवाये तथा इसके पास महेवा में किला बनवाया, रनवास बनवाया, नई वस्ती बसाई।

मनियां गढ़– यह स्थान राजगढ़ (चन्दन नगर) के पास है, यहाँ प्राचीन स्थल व किला है। चन्देल शासक धंगदेव ने सन् 1925–40 तक शासन किया। यहां पर वहलोल लोधी ने 9000 सैनिकों के साथ आक्रमण किया।

महेवा– छत्रसाल ने छतरपुर से 10 मील दूर अपनी पुरानी जागीर नुना महेवा की स्मृति में नया महेबा बसाया तथा किला बनवाया। यहां की आबादी बाद में चरखारी चली गई थी।

राजनगर– यह स्थान खजुराहो के पास है। हिन्दूपत ने यहां की गढ़ी बनवाई थी। सोने जू पवार का सम्बन्ध राजनगर परिवार के लोगों से अधिक था।

ईसानगर खटोला– चरखारी के राजा विजय बिक्रमजीत बहुदर सन् 1782–1829 ने यहाँ किला एवं तालाब बनवाया था जो सन् 1841–42 के बुन्देला बिद्रोह के विप्लव के समय बिद्रोहियों को शरण देता था।

भगवा, कीपिया (कूपी), सीलोनी, दलीपुर, बरेठी– इन सभी स्थानों पर विभिन्न जागीरदारों ने गढ़ियाँ बनवाई थीं। वर्तमान में इन सभी स्थलों की गढ़ियां सामान्य स्थिति में है।

लखनगुवां:– यहां पर राजा केशरी सिंह बिजावर ने सन् 1783 को अपने भाई खुमान सिंह को जागीर दी थी। वर्तमान में गढ़ी सामान्य अवस्था में है।

मुगावरी, जशपुरा, पवई, लटैनी:– मुगवारी को छोड़कर जशपुरा, पवई और लटैनी पर ओरछा वंश के शासक सावन्त सिंह ने इन सभी स्थानों पर शासन किया था तथा गढ़ियां भी बनवाई थी।

खजुराहो :– यह विश्व प्रसिद्ध स्थान है तथा यह गुप्त वंश से सम्बन्धित है। हूणों ने यहां पर आक्रमण किया था। यह एक सांस्कृतिक नगरी है। यहां पर विश्व प्रसिद्ध मंदिर हैं, तथा प्रतिवर्ष हजारों विदेशी पर्यटक आते हैं।

राजगढ़:– यह छतरपुर पन्ना मार्ग पर चन्दनगर के पास पहाड़ी पर निर्मित किला है। इसे पन्ना के राजा हिन्दूपत ने सन्1758–76 में बनवाया था। कर्नल लेसरी का स्मारक बना हुआ है।

सौंप :– छतरपुर तहसील का छोटा गाँव छतरपुर महोबा मार्ग पर छतरपुर से 8 किमी0 है। यहां छोटा भवन किला है।

महाराजपुर:– छतरपुर तहसील का महत्वपूर्ण नगर है।यहॉं चामुण्डाराय की हवेली व समाधि है। यहॉं पान की प्रसिद्ध मण्डी है।

उपरोक्त स्थानों के अतिरिक्त अवटोहा , ऊतरपुर अचर , अमरौनिया, किशनगढ़, किसुनपुर, कुसमा, खैर, खरोही, गुलगंज, धुवारा, ज्योराहा, देवराहा, दमौतीपुर, धरमपुरा, निवारी, पहाड़गंज, पनौठा, पुनगुवां, पुनवारी, बड़ामलहरा, बछौन, विसवां, वरदुवाहा, गढ़ीमलहरा, मतगुवां, रमपुरा, रंगौली,रामटौरिया, लौड़ी, रामपुर ,सूरजपुरा, सटई, सिमरिया, सैंधवां, हीरापुर, हटवाहा, जोरनपुर में किले है।इनके सम्बन्ध में न तो किसी इतिहास में उल्लेख मिला,न इस जिले के गजेटियर में विवरण उपलब्ध है यह उपरोक्त किले एवं गढ़िया ध्वस्त हो चुके हैं।

जिला दमोह के किले एवं गढ़ियां

यह स्थान बीना –कटनी मध्य रेल शाखा का स्टेशन है। इसका नाम राजा नल एवं दमयन्ती से जोड़ा जाता है। यहाँ एक किला है जो खण्डहर है। सन् 1383 के शिलालेख से विदित होता है कि यहां मुसलमानों का आधिपत्य था। सन् 1480 में ग्यासुद्दीन ने उसमें सुधार करवाया जो मालवा का खिलजी शासक था। अकबर बादशाह के समय धरमपुर, खैरपुर दो भवनों को बनाया जहाँ साधू फकीरों को सुविधाएं प्राप्त होती थीं। सन् 1838 में हटा की बजाए दमोह को वरीयता प्राप्त हुई। यहाँ हिन्दू मंदिरों को तोड़कर किला बनाया गया था। यहां का फुटेरा ताल, मुरेना ताल, बेलाताल, तथा बड़ाताल मशहूर है।

बालाकोट:– यह दमोह के दक्षिण पश्चिम में 19 किमी0 बालाकोट पर्वत के बीच में है। यहां का शासक तखत सिंह लोधी था। अब किला नष्ट हो चुका है।

बटियागढ़– हटा तहसील का यह गाँव दमोह से 34 किमी0 पर है। यहाँ मुसलमानों और मराठों का शासन रहा है। ग्यासुद्दीन तुगलक ने यहां महल बनवाया था।

बोतराई– यह दमोह से 33 किमी0 तथा पथरिया से 6 किमी है। यहां एक पुराना किला है जो कि खण्डहर है।

फतेहपुर:– दमोह से उत्तर 43 किमी0 तथा हटा से 15 किमी0 है। यह हठा तहसील का बड़ागांव है। यहां 12वीं शताब्दि में लड़े गये युद्ध के स्मारक स्तम्भ हैं।

जटाशंकर:– यह स्थान फतेहपुर से 6 किमी0 उत्तर में है।यहां एक सुदृढ़ किला है जो शाहगढ़ के राजाधिकारी फतेहसिंह ने 1634 में बनवाया था। उसी के नाम से इस गांव का नाम पड़ा। फिर काल नामक किसी योद्धा को, जो इस किले का प्रभारी था, विजयपाल ने हराकर अधिकार किया।

हटा –तहसील हटा:– यह सोनार नदी के तट पर बसा,दमोह से उत्तर में 40 किमी0 सड़क से जुड़ा स्थान है। 11वीं शताब्दि में हटे सिंह गौड़ राजा ने इसे बसाया और

किले को 17वीं शताब्दि में बुन्देलों ने बनवाया जो खण्डहर हैं। विशाल बुर्ज और दीवारें कंगूरेदार है। किले का द्वार बुलंद है जो मुस्लिम ढंग का है।

बाड़ी–कनौरा:– यह हटा से 20 किमी0 उत्तरपश्चिम में एक गांव है। यहां शाहगढ के राजा का मिट्टी का बना ध्वस्त किला है। यहां पर बुन्देलों द्वारा निर्मित महल है जो कि खण्डहर है।

हिन्डोरिया:– यह दमोह से उत्तर पूर्व 16 किमी0 और बाँदकपुर बीना कटनी मध्य रेलवे के स्टेशन से 5 किमी0 है। इस गांव के दक्षिण में सन् 1600 बुध सिंह ने, जो इस गांव का संस्थापक था, किला बनवाया था। सन् 1857 में विद्रोहियों का सरदार किशोरसिंह यहां रहा।

लुहारी:– यह हटा से 10 किमी0 तथा दमोह से 22 किमी0 है। यहां एक प्राचीन गढ़ी है, जो कि गौड़ राजाओं द्वारा बनवायी गई थी।

मड़ियादो:– यह हटा से 19 किमी0 उत्तर में है। जोगी डाबर छोटी नदी के किनारे है। यहां एक पुराना खण्डहर किला है। पहले यह चरखारी के राजाओं के अधिकार में था। यहां छत्रसाल के पुत्र जगत सिंह और गहलोल सिंह के बीच घमासान युद्ध हुआ था।

नरसिंहगढ़:– यह सोनार नदी के किनारे दमोह से 19 किमी0 बटियागढ़ सड़क पर है। सन् 1486 में यहां मालवा के ग्यासुद्दीन खिलजी का शासन रहा। हाकिम शाह तैयब ने यहां एक किला और मस्जिद बनवाई थी जो अब खण्डहर है। मराठों के समय उनका यह एक परगने का मुख्यालय रहा। मराठों द्वारा बनवाया हुआ किला सन् 1857 के विद्रोहियों के कब्जे में होने से ब्रिटिश सेना ने उसे ध्वस्त किया।

नोहटा:– यह दमोह से दक्षिण पूर्व 21 किमी0 जबलपुर मार्ग पर है जो गुरैंया और व्यारमा नदी का संगम है। 12वीं शताब्दि में यह चन्देल राजाओं की राजधानी थी। यहां चारों ओर मंदिरो के अनेक स्थल हैं।

रानेहः— यहा हटा से 13 किमी0 पूर्व में है। यहां एक अत्यन्त पुराना कुआँ तथा छोटा भवन है जिसे किसी शासक का निवास कहा जाता है। गांव में कई कुए हैं, जो गर्मियों में सूख जाते हैं। कहावत है कि 'बावन कुआं, चौरासी ताल, तऊ रानेह में पानी को काल' ।

रानगीर :— यह छोटा सा गॉव दमोह से 19 किमी0 उत्तर में स्थित है। यहां एक प्राचीन किला जटाशंकर के किले के समान है। यह छत्रसाल के अधिकार में रहा । यहां 361 मी0 ऊँचाई पर तीन कोणें का केन्द्र बना हुआ है।

सिंगोरगढ़ :— यह दमोह से दक्षिण—पूर्व सिंग्रामपुर से 6 किमी0 पर पहाड़ी पर बना किला है। जबेरा का दर्रा किले के नीचे से आता है। यहां पश्चिम में कभी बहुत बड़ी झील थी। जिसमें अब 28 गॉव बसे हुए हैं। इस किले को चंदेल राजा बेलों ने बनवाया था। किले पर लगे एक शिलालेख में गजसिंह दुर्ग अंकित है। इसकी स्थापना दशहरे के दिन सन् 1307 में की गई थी। अब किला खण्डहर है। इसके अवशेषों से पता चलता है कि यह किला बड़ा विशाल और सुदृढ़ था।

सिंग्रामपुर :— दमोह तहसील का यह ग्राम दमोह से दक्षिण—पूर्व 54 किमी0 जबलपुर मार्ग पर है। यहां पर गढ़ा मंडला की रानी दुर्गावती और कड़ा मानिकपुर के शासक आसफ खॉ के बीच पहला युद्ध हुआ था ।

तेजगढ़ :— यह स्थान दमोह से 22 किमी0 दक्षिण में है जो मुरैया नदी के किनारे है। यहां एक किला है जो 17वीं शताब्दी में तेजसिंह लोधी ने बनवाया था पर अब खण्डहर हो गया है। किले की पश्चिमी दीवार ,और किले से नदी तट को जाने वाला मार्ग सुरक्षित है।

विशेष :— इस जिले में 27 देखने योग्य स्थान हैं। जिनमें 18 स्थानों में किले हैं, बॉकी 9 स्थान पुरातत्व की सामग्री से सम्पन्न हैं। जिसमें बादकपुर , चोपरा, दमोह, हिन्डोरिया, किशनगंज, तहसील दमोह विशेष दर्शनीय हैं। बनगॉव, हरतखास , कुडलपुर ,मगरौन, साकौर, सतशुभी पुरातत्व सामग्री एवं प्राकृतिक दृश्यों से

अवलोकनीय हैं किन्तु संग्रह में सम्मिलित नहीं किये गए है। क्योकि इस संग्रह में केवल किलों की जानकारी संग्रहीत की गई है।

जिला सागर के किले एवं गढ़ियाँ

सागर :– यह जिला ओर तहसील का मुख्यालय है। मध्य रेलवे की बीना कटनी शाखा का स्टेशन है। यह महत्वपूर्ण छावनी है। इसे 1660 में निहालशाह के वंशज सदनशाह ने बसाया था तथा यहां किला भी बनवाया था । 18वीं शताब्दी में कुरबाई के नवाव के अधिकार में रहा । उसने पुराने किले की जगह किला बनवाया। अमीर खॅा पिण्डारी ने इसे दो बार लूटा। सन् 1814 में सिन्धिया ने लूटा और विनायक राव को बंदी बनाया । सन् 1857 में विद्रोंह के समय अंग्रेजी सेना ने आश्रय लिया। किले में 20 बुर्ज हैं जो काफी ऊँचे है जो 400 गज लंबी और 150 गज चौड़ी चतुष्कोणीय दीवार से जुड़े हैं।

बरेठा:– यह सागर से 37 मील, बंडा बरेठा मार्ग पर बंडा से 18 मील दूर है। यहां पहाड़ी पर पुराना किला है।

बरौदिया कला :– यह सागर से 30 मील पर है। यहां मध्यकाल का एक किला है, जो खण्डहर है। 31 जनवरी 1858 को यहां विद्रोहियों और अंग्रेजी सेना में युद्ध हुआ। विद्रोही राहतगढ़ के किले की पराजय के बाद यहां इकट्ठे हुए थे।

विनायक :– यह सागरसे 24 मील उत्तर की ओर है। 15वीं शताब्दी में यह गोंड राजाओं के अधिकार में रहा । इसके बाद ओरछा के राजा वीरसिंह देव ने इसे जीता, 1730 में छत्रसाल ने इसे मराठो को दिया । यहां सूवेदार विनायक राव ने किला बनवाया। 1842 में नारहट के मधुकरशाह और चन्द्रपुर के बुन्देला ने इसे लूटा ।

देवरी :– यह सुकचैन नदी के किनारे सागर से नरसिंहपुर सड़क पर 40 मील है। यह रामगढ़ या आजमगढ़ कहलाता था। एक मंदिर बन जाने के कारण इसे मंदिर की देरी या देवरी कहा जाने लगा । इसे कभी चंदेल राजा ने बसाया था। तथा किला बनवाया था । फिर यह गौड़ शासक दुर्ग सिंह के अधिकार में रहा, उसी

ने इस किले को फिर से बनवाया ।देवरी का अंतिम शासक रामचन्द्रराव था।"[1]

धामौनी :- सागर से 29 मील दूर उत्तर की ओर झॉसी मार्ग पर स्थित यह ऐतिहासिक गाँव है, गढ़ा, मंडला वंश के सूरतशाह ने यहां किला बनवाया। अब्दुल फजल यहीं पैदा हुआ था। यह सन् 1605से1627 तक वीरसिंह देव ओरछा के अधिकार में रहा । उन्होने किले का फिर से निर्माण कराया।

"स्लीमेन ने लिखा है कि यहां एक मात्र सुन्दर असाधारण किला है जो पहाड़ की नुकीली जगह पर बना है। दो ओर गहरी खाइयाँ, जिसके बीच में धसान नदी की दो धारायें ऊँची समभूमि से निकलकर मैदान में बहती हैं। इन गहरी खाइयों के तल तक सूर्य की किरणें नहीं पहुंचती हैं। वीर सिंह देव का इस किले के निर्माण में दस लाख से अधिक व्यय हुआ था। किला एक ऊँचे महत्वपूर्ण स्थान पर निर्मित है जो अनुमानित 52 एकड़ में फैला हुआ है। इसका निर्माण 15वीं शताब्दी में हुआ था।"[2]

ऐरन:- यह बीना और खेता नदी के संगम पर बसा हुआ झॉसी भोपाल मध्य रेलवे के बामौरा स्टेशन से 6 मील दूरी पर है। यह ईसा पूर्व का आवास स्थल है। यहां खण्डहर रूप में किला है जो दांगियों का बनवाया हुआ है।

गढ़ाकोटा :- यह गधेरी और सोनार नदियों के संगम पर बसा है। सागर से 26 मील पूर्व निकट पथरिया रेलवे स्टेशन है। यह पहले गौड़ों के अधिकार में था। चन्द्रशाह के अधिकार में आने पर 17वीं शताब्दी में उसने किला बनवाया । यह किला चन्द्रशाह के बाद तमाम शासकों के अधिकार में रहा। 11 फरवरी 1858 को ह्मयूरोज किले के सामने पहुँचा। विद्रोहियों और अंग्रेजी फौज में भयंकर युद्ध हुआ, विद्रोही रात भर युद्ध करते रहे पर असफल रहे।

---

1. "बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ" श्री राम सेवक रिछारिया, पेज--161, ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा-- बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

2. वही, पृष्ठ 164 ।

सर रावर्ट हैमिल्टन ने लिखा है कि "इतने सुदृढ़ और दुर्गम किले पर अधिकार कर लेना सौभाग्य की बात है। इतना दुर्गम किला मैंने भारत में दूसरा नहीं देखा । जिसे अजेय समझा जाता था। यहां उच्च्य भूमि पर किला है। "

गढ़ोला :- यह सागर से 22 मील पर है, बड़ा गॉव है, पत्थर की दीवार से घिरा है। यहां एक छोटा किला है। सम्भवतः यह किला किसी दांगी सरदार का बनवाया हुआ है।

गढ़पहरा :- झाँसी सड़क मार्ग पर सागर से 6 मील उत्तर की ओर है। यह कभी दांगियों की राजधानी थी। यहां गौड़ राजा संग्रामशाह का एक गढ़ रहा । सन् 1689 में पृथ्वीराज मुगलशासन का जागीरदार यहां का शासक था। वह अपने पागलपन के लिये प्रसिद्ध था रात में महल की छत से चन्द्रमा पर तीर चलाया करता था। कामुक और लम्पट था। नगर की प्रत्येक बहू के सुहागरात अपने साथ मनाने को बाध्य करता था। उसे छत्रसाल के पुत्र ने अधिकार छीनकर सागर स्थित परकोटा में रखा।

गौर झामर :- यह करेली सागर मार्ग पर सागर से 28 मील दक्षिण में बड़ागांव है। यहां संग्राम शाह के साम्राज्य का गढ़ रहा। सागर के मराठा शासकों ने गौरझामर के किले में सुमेरशाह को कैद कर दिया था।

हीरापुर- यह कानपुर मार्ग पर सागर से 47 मील की दूरी पर है। इसमें एक छोटा किला और तालाब है।

जयसिंह नगर- सागर से 21 मील दक्षिण-पश्चिम में है। इसे गढ़ पहरा के शासक जयसिंह ने बसाया और किला बनवाया जोकि खण्डहर हो चुका है।

कंजिया- यह सागर से 69 मील, उत्तर-पश्चिम में है। इसका पुराना नाम करंजिया था। सन् 1594-95 में शमहीर खां के बंशज गुलाब खां ने यहां एक मस्जिद बनवाइ थी।

खिमलासा– यह स्थान सागर से उत्तर पश्चिम में 41 मील है। इसकी नींव मुसलमान सरदार ने डाली थी जो मालवा सूबे के रायसेन महाल में शामिल था। फिर पन्ना के राजा अनूप सिंह के पास रहा। नगर के बीच में एक बुर्जदार किला है। किले के दोनों ओर मंदिर और कचहरी प्राचीन नहीं लगती। नगीना महल खण्डहर है।

मालथौन– यह सागर–झाँसी मार्ग पर सागर से 40 मील उत्तर–पश्चिम की ओर है। मालथौन में एक ध्वस्त किला है। कमल दुर्ग मीना के अलावा कुछ नहीं है। सन् 1808 में शाहगढ़ के राजा मर्दन सिंह (1785–1810) ने यहां का किला बनवाया था।

नरयावली– यह खुरई मार्ग पर सागर से 12 मील है। बीना की ओर जाने वाली रेलवे लाइन पर सागर से पहला स्टेशन है। यहां पहाड़ी पर स्थित एक किला है। "यहां पर सन् 1857 में वानपुर के राजा मर्दन सिंह और अंग्रेजी फौज का कर्नल डलमेल के बीच मुठभेड़ हुई, यह स्थान दुर्गम होने के कारण कर्नल डलमेल मारा गया और लेफ्टीनेंट प्रायर घायल हो गया। अंग्रेजों की फौज भाग खड़ी हुई।"[1]

पिठौरिया– यह गांव सागर से 15 मील उत्तर–पश्चिम में है। पहले यह पिठौरिया जागीर का मुख्यालय था। यहां एक पुराना किला है, तालाब है।

राहतगढ़– यह सागर से 25 मील पश्चिम की ओर है। यह प्राचीन दुर्ग के नीचे बसा है। "राहतगढ़ वीर–बुन्देलों की युद्ध भूमि तथा वीर भूमि रही है। यह किला बुन्देला युग का प्रसिद्ध किला रहा है। यह किला बहुत मजबूत और कलापूर्ण है। इसमें 27 बुर्ज हैं। ये देखने में अति सुन्दर है। यहां का बादल महल तथा जोगिन बुर्ज देखने लायक है। यहां कई सुन्दर तालाब भी है।"[2]

रामगिरि– यह गांव, सागर–रहली मार्ग पर रहली से 10 मील और सागर से 21 मील देहार नदी के किनारे है। छत्रसाल बुन्देला और धामौनी के मुगल फौजदार

---

1. "बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ" श्री राम सेवक रिछारिया, पेज–170–171, ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा– बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

2. "बुन्देलखण्ड का राजनैतिक तका संस्कृतिक इतिहास", अब्दुल क्यूम मदनी, पृ0 94, Kimi offset Jhansi 440066

खालिक के बीच हुये युद्ध का स्थल है। यह मराठा सुबेदार गोबिन्दराव पंडित के अधिकार में रहा।

रहली– यह सोनार और दोहार नदियों के संगम पर, सागर से 26 मील दक्षिण–पूर्व में स्थित है। यहां पर बना किला सोनार नदी के किनारे पर है। इसे अहीरों ने बनवाया था व मराठों ने इसका पुनर्निर्माण किया था। किला खण्डहर है।

सानौधा– यह सागर–दमोह मार्ग पर है। यहां एक छोटा किला है जिसे मेजर लैम्ब ने 1818 में जीता था। यहां बेवसी नदी पर झूले का पुल था जो अब नहीं है। यह पुल 1944 की बाढ़ में नष्ट हो गया।

शाहगढ़– यह स्थान सागर से छतरपुर–कानपुर सड़क पर 43 मील है। यह लांच नदी के किनारे है। यहां ऊँचा छोटा सुरक्षित किला था। पहले यह गौड़ शासकों का था। इसके पश्चात छत्रसाल, हृदेशाह, तखत सिंह आदि शासक रहे।

विशेष– सागर जिले के प्रसिद्ध 36 स्थानों में से 23 स्थानों में किले हैं। शेष स्थानों में आवचन्द, भापेल, विलहरा, पाली, तहसील सागर, बलेह, जेतपुर, तहसील रहली, वामौरा, इटावा, तहसील खुरई। झागड़ी और उल्दन तहसील बंडा विभिन्न कारणों से प्रसिद्ध है।, इन्हें इस संग्रह में शामिल नहीं किया गया।

जिला जबलपुर किले एवं गढ़ियाँ

जबलपुर मध्य प्रदेश का एक प्रमुख नगर है। यह नगर नर्वदा नदी के किनारे बसा हुआ है तथा रानी दुर्गावती ने इस नगर को बसाया था। जबलपुर में 30 प्रमुख स्थान हैं जिनमें 15 स्थलों में किले या गढ़ियां हैं। बांकी 15 गांव पुरातत्व की सामग्री के अवशोषित स्थल हैं। यह एक औद्योगिक नगर है। यहां पर सेना के शक्तिमान नामक टंकर तथा यहां की आर्डिनेन्स फैक्ट्री बहुत प्रसिद्ध है। इस पूरे क्षेत्र में गौड़ों का आधिपत्य रहा है। इसलिये इस क्षेत्र को गौंड़वाना भी कहा जाता है।

आमोड़ा– तहसील सिहौरा– यह सिहौरा से 30 किमी0 है तथा कैमूर पहाड़ की चोटी पर स्थित है। यहां गोंड़ राजा प्रेमनरायन का बनवाया हुआ किला है जो खण्डहर है।

देमापुर– यह सिहौरा से 16 किमी0 पूर्व में है। यहां कई भग्नावशेष हैं जिनका सम्बन्ध हिन्दू एवं जैन मन्दिर से है, इसको वीरमान राजा ने बसाया था।

रूपनाथ– यह सिहौरा तहसील के पड़रिया गांव का एक भाग है। यह सिहौरा स्टेशन से 30 किमी0 पर स्थित है। यहां तीन कुण्ड हैं, जिन्हें राम, लक्ष्मण, सीता कहा जाता है।

कुम्ही– यह सिहौरा से दक्षिण–पर्व 16 किमी0 हिरन नदी के तट पर बसा हुआ है। यहां एक पुरानी गढ़ी है, जहां पर मराठों का सैनिक अड्डा था।

सिहौरा– यह इटारसी–कटनी मध्य रेलवे का स्टेशन है जो शहर से 3 किमी0 है। यह कभी सिंधोरगढ़ की गढ़ी के नाम से जाना जाता था। वर्तमान में मात्र अपभ्रंश है।

तिगुवां– यह गांव बोहरीवन के उत्तर में 3 किमी0 है और सिहौरा से 27 किमी0 है। यह गांव झांझनगढ़ ही माना जाता है।

वरगी–तहसील जबलपुर– यह छोटा सा गांव जबलपुर से 29 किमी0 जबलपुर–नांगपुर सड़क मार्ग पर है। यहां एक गढ़ी है, खण्डहर हो चुकी है, जिसे संग्राम शाह ने बनवाया था।

गढ़ा– जबलपुर– जबलपुर–नांगपुर सड़क पर गढ़ा की वस्ती जबलपुर नगर निगम के क्षेत्र में है। गढ़ा वर्षो तक गौड़ राजाओं की राजधानी रहा। यहां राज मदन सिंह ने मदन महल बनवाया था जिसके मात्र अवशेष हैं।

कटगी– यह जबलपुर से उत्तर–पश्चिम में भाड़ेर पहाड़ियों के नीचे है तथा जबलपुर–सागर सड़क मार्ग पर 36 किमी0 है। यहां गौड़ तथा मराठा राजाओं का आधिपत्य रहा। यहां पर प्रमुख रूप से कपड़ों की रंगाई–छपाई और बीड़ी उद्योग है।

कुंडम– यह जबलपुर तहसील से पूर्व की ओर जबलपुर–शाहपुर डिंडोरी मार्ग पर 46 किमी0 है। यह हिरन नदी का उद्गम स्थल है। यह गौड़ राजा कल्यान सिंह ने वसाया था।

तेवर (त्रिपुरी)– यह जबलपुर भेड़ाघाट सड़क पर 12 किमी0 दूर है। "बहुत प्राचीन गांव है। इसका वर्णन महाभारत, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में भी मिलता है। यहां कलचुरी राजाओं की राजधानी रही है। तथा अथियागढ़ का किला मशहूर है।"[1]

विजय राघौगढ़– यह तहसील मुड़वारा से 33 किमी0 सड़क मार्ग पर अवस्थित है। यहां का निकटतम रेलवे स्टेशन जुकेही, जबलपुर से इलाहाबाद जाने वाली मध्य रेलवे से 26 किमी0 है। यहां का किला ठाकुर प्रयागदास ने बनवाया था।

बिलहरी– यह तहसील मुड़वारा से 12 किमी0 दक्षिण–पश्चिम में स्थित है। प्राचीन समय में यह ग्राम पुष्पावती नगर कहा जाता था। यहां का किला लक्ष्मण सिंह ने बनवाया था तथा उनके नाम से लक्ष्मण तालाब भी है। 1858 के विद्रोह के समय इसे सुरंगों द्वारा उड़ा दिया गया था।

कन्हवाड़ा– यह मुड़वारा से 14 किमी0 उत्तर मुड़वारा–विजय राघौगढ़ सड़क मार्ग पर स्थित है। यहां कई भग्नावशेष मिले हैं। कम्बोद सिंह बघेल ने नक्काशी दार पत्थरों से दक्षिण में एक गढ़ी का निर्माण करवाया था।

कैमूरी–तहसील पाटन– "यह हिरन नदी के किनारे भाड़ेर पहाड़ी के निकट है। पाटन से 6 किमी0 दूर 17वीं शताब्दी में सन् 1679–1727 तक गढ़ा मण्डला के राजा नरिन्द्र सिंह शाह गौड़ के सेनापति राव चूरामन ने इसे स्थापित किया था। सीमावर्ती पहाड़ियों के नाम पर इस गांव का नामकरण किया गया जो बाद में मराठों द्वारा अधिकृत की गई। सन् 1858 के महान विद्रोह में अंग्रेजों की सहायता में यहां के जागीरदार को करमुक्त 10 ग्राम दिये गये।"[2]

---

1. "बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ" श्री राम सेवक रिछारिया, पेज–177–178, ऊषा प्रकाश, 90 सनौरा– बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

2. वही, पृष्ठ 179 ।

जिला नरसिंहपुर के किले एवं गढ़ियाँ

बचई– यह नरसिंह पुर से लखना दौन मार्ग पर 9 मील दूर है। यहां के तालाब से सिगरी नदी निकली है। यहां एक छोटा पुराना किला है जिसे तहसील गढ़ी कहते हैं।

बरहटा– यह नरसिंहपुर से 22 किमी0 पर है। यहां से 2 किमी0 शेर और माछा नदियों का संगम है। यहां एक पुराने महल के खण्डहर हैं जो राजा विराट का था और यही उसकी राजधानी थी। जैन तीर्थंकारों की मूर्तियां थीं जो संग्रहालय में भेज दी गई।

वारहा तहसील गाड़रवारा– यह गाड़रवारा से 27 कि0मी0 दूर है। यहाँ इटारसी जबलपुर मध्य रेलवे का बाबई स्टेशन है। यहां दौलतराव सिंधिया ने प्रसिद्ध पिंडारी चीतू को जागीर दी थी। उसने यहां किला बनवाया जो वर्तमान समय में खण्डहर है।

बरमान तहसील नरसिंहपुर– यह नर्मदा नदी के दोनों ओर बसा हुआ, गाड़रवारा से 30 मील है। नर्मदा के दक्षिणी भाग को वरमान कलां कहते हैं जो नरसिंह पुर तहसील में और उत्तरी भाग वरमान खुर्द कहा जाता है जो गाड़रवारा तहसील में है। यहां कोई किला तो नहीं है पर दक्षिणी वरमान में शिव का विशाल मन्दिर है जिसे रानी दुर्गावती ने निर्मित कराया। यहां पांच पाण्डवों के पांच तालाब और भीम का पदचिन्ह हैं।

बिलथारी– यह तहसील गाड़रवारा से 15 मील है, इसके दक्षिण में नर्मदा नदी है। कहा जाता है कि यह राजा बलि की यज्ञ भूमि है जिसे भगवान विष्णु ने वामनरूप में पाताल पहुंचाया।

बोहानी– यह तहसील गाड़रवारा से 9 किमी0 पूर्व में स्थित है। मध्य रेलवे की इटारसी जबलपुर शाखा का स्टेशन है। कहते हैं कि यह पुराना कोहानी नाम का ग्राम था। प्रसिद्ध वनाफर राजपुत, आल्हा ऊदल के पिता जसराज की राजधानी थी। यहां जसराज की हत्या हुई थी।

चौरागढ़– यह गाड़रवारा से 12 मील दूर है। इटारसी जबलपुर शाखा मध्य रेलवे का स्टेशन है। यहां ध्वस्त पहाड़ी किला है जो चौगार उजाड़ गांव में स्थित है। यह प्राचीन दुर्ग, गोंड़ तथा मराठा शासकों केसमय का प्रसिद्ध मजबूत और महत्वपूर्ण रहा। यह किला बहुत बुद्धिमानी से 800 फीट ऊँचे पठार और दो समीप की पहाड़ियों को घेरकर बनाया गया है। किले के भीतर जलापूर्ति हेतु कई पक्के तालाब हैं। घिरी हुई दोनों पहाड़ियाँ 300 फीट से अधिक खाइयों और दर्रों में बँटी हुई हैं। इस किले का निर्माण 15वीं शताब्दी में गौड़ राजा संग्राम शाह ने कराया था।

चावरपाठा–तहसील गाड़रवारा:– यह गाड़रवारा से 33 मील है। नरसिंहपुर 14 मील और बरमान से 3किमी0 दूर है। यहाँ पुराना गौड़ों का खण्डहर किला है ।

चिचली :– यह तहसील गाड़रवारा से 6 मील है। निकटतम रेलवे स्टेशन गाड़रवारा मध्य रेलवे की इटारसी –जबलपुर शाखा पर है। यह गौड़ परिवार की जागीर का मुख्यालय था।

गाड़रवारा :– यह तहसील का मुख्यालय है जो मध्य रेलवे की इटारसी –जबलपुर शाखा का स्टेशन है तथा नरसिंहपुर से 43 किमी0 है। यह कभी गड़रियों का गांव था, जो बाद में गाड़रवारा कहलाया। सन् 1806 में मराठों के शासक नवाब सादिक अली ने अपनी जागीर का मुख्यालय बनाया, तथा जिला बनवाया जो इस समय खण्डहर हो चुका है।

पलोहा :– यह गाड़रवारा से 16 किमी0 दूर शक्कर नदी के तट पर बसा है। सिंधिया राज्य में यह करीम खाँ पिंडारी को जागीर में दिया था तथा उसका मुख्यालय रहा। यहां एक तालाब है जिसमें कमल खिलते हैं।

पिथौरा :– यह नर्मदा नदी के तट पर नरसिंहपुर से 17 किमी0 है। गढ़ा मण्डला के गौड़ राजा का मुख्यालय था जिसे जागीर मिली थी। शिव और गरूड़ के प्राचीन मंदिर है।

श्री नगर :– यह तहसील नरसिंहपुर के गोटे गांव से 11 किमी0 उमर नदी पर बसा हुआ है। इसीलिए इसे उमरिया भी कहा जाता है। मराठों के समय यह प्रसिद्धि पर था, परगना भी रहा। मराठों के एक सूबेदार और अंग्रजों में युद्ध हुआ। इस गांव में बड़ी इमारतें, चहारदीवारी, कई कुएं, तालाब और बगीचों के अवशेष विद्यमान हैं।

विशेष :– इस जिले में 23 प्रसिद्ध स्थान हैं जिनमें 12 स्थानों पर किले हैं बांकी 11 गाँवों में न तो किले हैं न पुरातात्विक सामग्री उपलब्ध है।

जिला रायसेन के किले एवं गढ़ियाँ

बेगम गंज – गांव एवं तहसील मुख्यालय :– यह बीना नदी के किनारे बसा हुआ है जो पहले सीवान कहलाता था। यह रायसेन से 87 किमी0 उत्तर–पूर्व की ओर है। यहां एक पुराना खण्डहर किला है, इसे आल्हा–ऊदल की भतीजी ने बसाया था जो बनाफर राजपूत थे।

गढ़ी –तहसील गैरत गंज :– यह गैरतगंज से 11 किमी0 दक्षिण–पश्चिम में है। यहां एक पुरानी खण्डहर गढ़ी है। सम्भवतः इसीलिए इस स्थान का नाम गढ़ी पड़ा। इसे इस्लाम गढ़ भी कहा जाता है।

मल्हारपुर :– यह छोटा सा गांव तहसील गैरतगंज से दक्षिण –पश्चिम 30 किमी0 रायसेन से पूर्व की ओर 94 किमी0 है। यहां एक खण्डहर किला है जिसकी दीवालों का हिन्दू एवं जैन उपयोग कर रहे हैं।

रायसेन – जिला मुख्यालय :– यह जिला प्रशासन का मुख्यालय है। यह भोपाल से उत्तर – पूर्व तथा बेगमगंज सड़क मार्ग पर 30 किमी0 पर स्थित है। यह मालवा के इतिहास का प्रसिद्ध स्थान रहा । अबुल फजल ने लिखा कि यह स्थान और किला बहुत प्रसिद्ध रहा । इसे राजसिंह ने बसाया था। यह किला और शहर पत्थरों पर बसा हुआ है। किले के नीचे बस्ती बसी हुई है। इसमें बादल महल, रोहणी महल और अत्तारदार का महल है। यह अकबर के समय उज्जैन सूबा का एक मुख्यालय रहा ।

विशेष :- मुख्यतः यह जिला प्राकृतिक सौन्दर्य एवं हिन्दू ,जैन एवं बौद्धों के निर्माणों से परिपूर्ण है, भारकच्छ कला , दीप, भीम बैठका, जावरा , ननदूर आदि स्थल प्राचीन वास्तुकला के अवशेषों से भरे पड़े हैं। चूँकि यहाँ किले या गढ़ियाँ नहीं हैं, अतः संग्रह में इनको सम्मिलित नहीं किया गया।

जिला होशंगाबाद के किले एवं गढ़ियाँ

चरबा तहसील हरदा– यह खिरकी चरबा एओलिया सड़क पर 12 किमी0 खिरकी गांव से दक्षिण–पूर्व तथा छिपवाड़ से 8 किमी0 है। सन् 1750 में पेशवा के कामदार नारों बलाल मुसकुटे ने किला बनवाया जो दो एकड़ क्षेत्र में है जिसमें दो द्वार हैं एक पूर्व की ओर और दूसरा पश्चिमी की ओर है। किले के भीतर चन्द्रावती की समाधि है।

फतेहपुर–तहसील सुहागपुर– यह बानखेड़ी फतेहपुर सड़क पर 32 किमी0 पूर्व की ओर सुहागपुर से 9 किमी0 तथा बानर बेड़ी स्टेशन के दक्षिण में स्थित है। यहां गौड़राज परिवार के पुराने अवशेष हैं। सन्दिया घाट जाते समय सन् 1857–58 के प्रसिद्ध बिद्रोही तात्याटोपे ने यहां के गौड़ राजाओं से सहायता प्राप्त की थी।

हंदिया– तहसील हरदा :- यह हरदा तहसील का पुराना और प्रसिद्ध स्थान है जो हरदा से 21 किमी0 और होसंगाबाद से 111 किमी0 है। यह जमदग्नि तथा सहस्त्रबाहु अर्जुन की कथा से जुड़ा स्थान है। 15वीं शताब्दी में यहां मुहम्मदशाह गौरी ने किला बनवाया था जो इस समय खण्डहर है। यह अकबर के समय जंगली हाथियों के लिये प्रसिद्ध था।

होशंगाबाद –जिला मुख्यालय :- होशंगाबाद जिला मुख्यालय है जो नर्मदा नदी के किनारे बसा हुआ है। यह मध्य रेलवे का स्टेशन है। इटारसी यहां से 18 किमी0 है। यह 15वीं शताब्दी में होशंगाशाह गौरी का बसाया हुआ है। उसने यहां एक किला बनवाया था,जो कि वर्तमान में खण्डहर हो चुका है। होशंगशाह एक दरगाह में जल मरा जिसकी लाश माण्डु ले जाई गई थी। यह किला लगातार आक्रमणों से भरा रहा।

जोगा – तहसील हरदा :-

यह नर्मदा के तट पर बसा हुआ है जो हरदा से 46 किमी0 उत्तर पश्चिम में है। यहां मुगलों के समय का किला है जिसे होसंगशाह ने बनवाया था। यहां एक दूसरा किला है। यहां नर्मदा नदी का दृश्य वड़ा चित्ताकर्षक है।

महादेव – तहसील सुहागपुर :- यह मतकुली –पचमढ़ी –महादेव सड़क मार्ग पर सोहागपुर से दक्षिण–पूर्व 61 किमी0 है। यहां एक गुफा है , जो प्राकृतिक रूप में खड़ी चट्टान में बनी है जो कटोरे के आकार की 300 फीट तक पहाड़ी पर बनी है। यहां प्राकृतिक पत्थर की शंकर की मूर्ति बनी है ।

मकराई– तहसील हरदा :- यह हरदा से 36 किमी0 इटारसी –भुसावल मध्य रेलवे की रेलवे स्टेशन भिरगी से 24 किमी0 है। यहां एक पुराना किला है जो कि अब खण्डहर है जो राजगौड़ राजाओं के वंशजो का है।

पचमढ़ी :- यह सतपुड़ा पहाड़ी का ग्रीष्मकालीन स्थल है। यह सोहागपुर से 68 किमी0 है तथा इटारसी –जबलपुर मध्य रेल शाखा की पिपरिया स्टेशन से 17 किमी0 तथा सोहागपुर–पचमढ़ी सड़क से 52 किमी0 है। पचमढ़ी के सुन्दर स्थान हैं हांडी खो और जम्बूद्वीप। कहा जाता है कि भगवान शंकर तिलक सिंदूर स्थल से भस्मासुर से बचने के लिये सुरंग में घुसकर भागे थे।

सिवनी मालवा–गांव एवं तहसील मुख्यालय :- यह खण्डवा–होशंगाबाद सड़क पर 55 किमी0 है तथा इस स्थान का रेलवे स्टेशन बानापुरा है। सन् 1750 में इस क्षेत्र के चारों ओर रघुजी भोंसले नागपुर और मराठों के प्रबन्धक यहां रहते रहे। रघुजी भोंसले ने यहां किला बनवाया जो खण्डहर है। सन् 1818 में खण्डो पंडित, जो यहां का प्रबन्धक था , उन्होंने बिना विरोध के किले को तोपों से नष्ट कर दिया था।

सोहागपुर नगर – तहसील मुख्यालय :– यह सोहागपुर –रीवा वनखेड़ी सड़क तथा

होसंगाबाद – पिपरिया सड़क पर 51 किमी0 है । यह पिशाचराज वाणासुर की राजधानी थी , इसकी पुत्री ऊषा पिता के साथ रहती थी। 18वीं शताब्दी में नागपुर के भोंसले के एक मुस्लिम जागीरदार फौजदार खाँ ने यहां किला बनवाया। विरोध में भोपाल बजीर मुहम्मद ने 1803 में आक्रमण किया।

टिमरनी – तहसील हरदा :– यह हरदा से 15 किमी0 पूर्व में है। यह मध्य रेलवे का एक स्टेशन है। यह मराठा भुसकुटे सरदार की जागीर थी। भुसकुटे ने यहां एक किला बनवाया था जो अब खण्डहर है।

जिला दतिया के किले एवं गढ़ियाँ

दतिया :– यह दतिया राज्य का मुख्यालय मध्य रेलवे की झाँसी – दिल्ली मार्ग पर स्टेशन है। कहा जाता है कि दानव राज जिसका कृष्ण ने वध किया था, यहां का था। दन्तानगर से बिगड़कर दतिया कहा जाने लगा । कुछ का कहना है कि दन्ती अर्थात गनेश के नाम से दतिया हुआ। वास्तव में दतिया की कहानी वीर सिंह देव प्रथम (सन् 1605–27) से प्रारम्भ होती है। इनके बाद तमाम शासक दतिया राज्य के अधिकारी रहे । दलपत राव ने दतिया में नई बस्ती बसाई थी, जो दिलीप नगर कहलाई । प्रतापनगर किला बनवाया। अन्त में 23 मार्च 1948 में बी0 पी0 मेनन ने सभी राजओं के विलय का समझौता किया । गोविन्द सिंह जो कि 1907 से 52 तक दतिया के राजा रहे को 1 लाख 54 हजार वार्षिक प्रीबीपर्स लेना पड़ा । रामचरन लाल वर्मा ने 24–04–1948 को उत्तरदायी शासन सम्हाला। विलय विन्ध्य प्रदेश में हुआ। सन् 1952 में गोविन्द सिंह की मृत्यु हुई। ज्येष्ठ पुत्र बलभद्र सिंह को दतिया राजा की विशेष सुविधाएं प्रीवीपर्स आदि

स्वीकृत हुए । सन् 28 मार्च 1978 को 71 वर्ष की आयु मे बलभद्र सिंह की मृत्यु हुई ।इनके पाँच पुत्र और पुत्रियाँ हुई ।ज्येष्ठ पुत्र कृष्ण सिंह राजा बने ।

इन्दरगढ़– तहसील स्यौढ़ा :– यह स्यौंढ़ा से 35 किमी0 दक्षिण–पश्चिम में है। 29 किमी0 दतिया है। सन् 1736–62 में महाराज इन्द्रजीत सिंह ने इसे अपने आधिपत्य में लिया और यहां उन्होने किला बनवाया जो अब खण्डहर है। यह स्थान जाटों से छीना गया था।

स्यौढ़ा तहसील मुख्यालय :– यह दतिया के मुख्यालय से 69 किमी0 उत्तर–पूर्व की ओर सिंध नदी के किनारे है। मुगलों के समय यह आगरा सूबा में सम्मिलित था। यहां एक पुराना खण्डहर किला है जिसे कन्हरगढ़ कहा जाता है। सन् 18 18 में यह महमूद गजनवी के अधिकार में रहा। 2 जून 1801 में सिंधिया के सेनापति ने यहां आग लगाकर नष्ट किया था।

जिला ग्वालियर के किले एवं गढ़ियाँ

ग्वालियर – जिला एवं तहसील मुख्यालय :– यह प्राचीन नगर है यहां तीन बस्तियाँ हैं जो गवालियर ,लश्कर , व मुरार नाम से प्रसिद्ध हैं। ग्वालियर की बस्ती पहाड़ी किले की उत्तर दिशा में है ,जहां अनेक स्मारक हैं। ग्वालियर को गोपगिरि ,गोपाद्रि तथा गोपाचल कहा जाता रहा। 9वीं शताब्दी मे गूजर प्रतिहार के अधिकार में रहा । ग्वालियर किले का निर्माण सूरज सेन ने करवाया था। प्रतिहारों के बाद यह किला कई शासकों के अधिकार में रहा। अन्त में सन् 1886 से 1948 तक ग्वालियर पर सिंधिया का अधिकार रहा । सन् 1948 के बाद मध्य भारत और सन् 1958 में मध्य प्रदेश का विलय हो गया । विशाल किला है , दो दरवाजे है ,एक ग्वालियर की ओर दूसरा उरबाई दरबाजा। यहां कई पुरातत्व की वस्तुए हैं। बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र है। विभिन्न प्रकार के कई कारखाने ,विशाल मेले का मैदान , हवाई अड्डा व हर प्रकार के शिक्षा संस्थान हैं।

आंतरी – तहसील डबरा :– यह डबरा से मकोड़ा – आंतरी सड़क मार्ग पर , मकोड़ा से 3 मील दूर गजने पहाड़ी के नीचे बसा है। इसका मूल नाम अंतकपुरी था। यह 15वीं शताब्दी में बसा था । यहां खण्डहर किला है।

भितरवार –तहसील डबरा :– यह डबरा से पश्चिम में शिवपुरीमार्ग पर 19 मील पार्वती नदी पर स्थित है। 250 वर्ष पूर्व किरारों ने बसाया था। भितरबार का किला पहाड़ी पर बना हुआ है जो कि मेराजशाह जाट सरदार द्वारा 18 वीं शताब्दी में कभी बनवाया गया था। इसमें एक बावड़ी है। बीच के भाग में निवास स्थल बने हैं जो वर्तमान में खण्डहर हैं। इस पहाड़ी के दूसरी ओर एक और किला है जो लक्ष्मण गढ़ के नाम से जाना जाता है । ऐसा कहा जाता है कि इस किले को भी मैराजशाह जाट सरदार ने बनवाया था।

हिम्मतगढ़ –तहसील डबरा :– यह नरवर और ग्वालियर के बीच परिहार दर्रे के समीप 100 फीट ऊँची पहाड़ी पर पहाड़ी किले के कारण प्रसिद्ध है। इसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण 1200 फीट तथा चौड़ाई 250 फीट है। पश्चिम की ओर से ढालू तथा टेढ़े–मेढ़े मार्ग से किले तक पहुँचा जा सकता है। यह जाटों के द्वारा बनवाया हुआ किला पिछोर व भितरवार के किलों के समय का है। इसकी रिहायशी इमारतें व मंदिर नष्ट हो गए हैं जबकि दीवारें व बुर्ज सुरक्षित हैं। इस किले में 5 पुरानी तोपें पड़ी हुई हैं।

जखौदा –तहसील डबरा :– आगरा–मुम्बई मार्ग पर घाटी गाँव के दक्षिण–पश्चिम में 10 मील दूर डंडे के खिरक के दक्षिण –पूर्व 1 मील की दूरी पर है। यहाँ ग्वालियर सरकार का एक महल था। गॉव के किनारे की पहाड़ी पर एक गढ़ी है जो क्षतिग्रस्त है। यह 16वीं शताब्दी में गूजर ठाकुरों ने बनवायी थी।

करहैया–तहसील डबरा :– भितरवार हरसी सड़क पर एक गॉव है यहां एक गढ़ी है जो खण्डहर है, जिसे परमार राजपूतों ने 18वीं 17वीं शताब्दी में बनवायी थी।

महाराजपुर :– यह ईस्ट इंडिया कम्पनी तथा सिंधिया की सेनाओं के बीच 29 दिसम्बर 1843 के युद्ध के कारण प्रसिद्ध है। यहाँ एक मकबरे में मृत ब्रिटिश सैनिकों की एक कब्र और दूसरे मकबरे में जनरल पुरट्रिक सी0 बी0 बंगाल इंजीनियर्स के लेफ्टी0 कर्नल एडवर्ड सेण्डर्स के अवशेष हैं।

मस्तूरा :– यह डबरा से पश्चिम में 25 मील दूर है। यह परगना ग्वालियर गिर्द का मुख्यालय था। यहां 18वीं शताब्दी का जाट सरदार मेराजशह हा बनवाया हुआ एक छोटा सा किला है। किला मैदान में बना हुआ है । किले के भीतर दो इमारतें अच्छी स्थिति में हैं।यहॉं एक कचहरी और दूसरा जनाना महल है।

पंवाया :– यह ग्वालियर से दक्षिण पश्चिम 42 मील पर है डबरा से भी पवाया जाने का रास्ता है ।यह सिन्ध व पार्वती नदियों के संगम पर स्थित है। इसे पद्मावती नगरी कहा जाता रहा है।यहां एक विश्वविद्यालय था। यहाँ एक किला परमारों द्वारा बनवाया गया था। इसकी प्राचीनता परखने के लिए कई बार खनन कार्य सम्पन्न किए गए ।

पिछोर :– डबरा तहसील बनने के पूर्व यह स्थान तहसील का मुख्यालय था। जिसे तहसील पिछौर कहा जाता था। यह ग्वालियर से 23 मील दक्षिण में है। इसे कंवलपुर कहा जाता रहा । यहाँ एक गढ़ी है जो राजा मानसिंह ने बनवायी थी।

सालवई :– डबरा भितरवार मार्ग पर पश्चिम की ओर स्थित है। यहाँ एक गढ़ी है जो भदौरिया राजाओं का गढ़ था। यह स्थान ईस्ट इंडिया कम्पनी और महाराज सिंधिया के बीच हुई सन् 1782 की संधि के लिए प्रसिद्ध है। दक्षिण–पश्चिम में एक टूटी फूटी गढ़ी है जो कि जाट सरदारों द्वारा बनवायी गई थी।

सिरोही :– यह गाँव डबरा से चीनौर सड़क के पास 6 किमी0 है।यहां गुसाइयों के राज्य की स्मृति में एक गढ़ी है। जो इन्द्रगिरि गुसांई के समय में निर्मित हुई थी। जो शिष्य परम्परा में आज भी गुसाइयों के अधिकार में है।

भाण्डेर – तहसील भाण्डेर :– यह स्थान चिरगाँव – भाडेंर सड़क मार्ग से जुड़ा जिसका निकटतम स्टेशन चिरगांव है , जो झाँसी–कानपुर मध्य रेलवे का स्टेशन है। यहां पहूज नदी तथा उसकी सहायक में से एक नदी पर बॉध बनाकर बड़ी झील निर्मित की गयी । प्राचीन नगर भूचाल से नष्ट हो गया था। यह महाभारत कालीन भग्नाश्व राजा की राजधानी थी जो पहाड़ी पर भग्न रूप में विद्यमान है। प्राचीन काल में यहां युधिष्ठिर ने अश्वमेघ यज्ञ किया था। 15वीं शताब्दी में मालवा के सुल्तानों के अधिकार में रहा ।फिर अकबर के समय सूबा मुख्यालय रहा। 17वीं शताब्दी में यह ओरछा राज्य में अंग्रेजों को सौंपा गया । 1886 में यह मुरार और झाँसी के बदले सिंधिया को वापिस मिला।

नागदा –तहसील गिर्द ग्वालियर :– यहां कोई किला नहीं है ,पुराना गॉव है। पुरानी इमारतों के अवशेष हैं। यह लश्कर से 11 मील पश्चिम में सॉक नदी के किनारे है। यह राजा मानसिंह की प्रिय गूजरी रानी मृगनयनी का गांव कहा जाता है।

पनिहार :– यह आगरा–बम्बई मार्ग पर 15 मील लश्कर है। यह क्षेत्र नरवर के राजा ने कोने राव को दहेज में दिया था। दो शताब्दियों तक यह कोनेराव के वंशजों के पास रहा। सन् 1869 में यहां के राजा सूरज सिंह के दो पुत्रों रघुनाथ सिंह और जगन्नाथ सिंह में कलह हो गया। जगन्नाथ सिंह ने अलग होकर पानी का हार, पनिहार बसाया और एक किला बनवाया । फिर इस पर सिंधिया ने अधिकार किया ।

विशेष :– इस जिले में 27 दर्शनीय स्थल हैं। जिनमें 14 स्थानों में किले या गढ़ियाँ हैं ।शेष 13 स्थान पुरातत्व सामग्री से परिपूर्ण है। जिनका उल्लेख इसमें समावेश नहीं है। उनमें अमरोल ,बरई, चेट, देवरी , देवखों , डूडापुरा , ग्वालियर , हरसी, तिगरा और टेकनपुर जैसे बाँध और सैनिक केन्द्र का विवरण नहीं दिया गया है।

जिला विदिशा के किले एवं गढ़ियाँ

कुरबाई – गाँव एवं तहसील :– यह बेतवा नदी के पश्चिम में भोपाल एजेन्सी की स्वतन्त्र रियासत थी। यह बिदिशा से 77 किमी0 उत्तर–पूर्व की ओर मध्य रेलवे की बीना–भोपाल शाखा का स्टेशन है। यहाँ पत्थरों का बना एक किला है जो छोटी पहाड़ी पर बस्ती के पूर्व है।

शमशाबाद –तहसील बासौदा :– यह बासौदा से दक्षिण –पश्चिम में 38 किमी0 उत्तर–पश्चिम विदिशा से है। कहा जाता है कि शम्सर खां ने इसे बसाया था। यह 17वीं शताब्दी के मध्य सांयन नदी के किनारे पर बसाया गया। सन 1641में फिर किसी शाम्श खाँ ने यहां किला बनवाया । तब यह शम्शगढ़ कहलाया। जो वर्तमान समय में खण्डहर है।

सिरोंज –गाँव एवं तहसील :– यह विदिशा से उत्तर –पश्चिम में स्थित है। यह मई 1948 से अक्तूबर 1956 तक राजस्थान में सम्मिलित रहा । इसका निकट रेलवे स्टेशन बीना–भोपाल मध्य रेलवे का स्टेशन है जो 48 किमी0 दूर है यह ऐतिहासिक एवं पुरातत्व की सामग्री से भरा पड़ा है। अकबर के समय में यह एक महल था जो चन्देरी सरकार के अन्तर्गत था। यशवंतराव होल्कर ने सन् 1798 में अमीर खाँ को दिया।जिसका परिवार टोंक में बसा , जो सन् 1948 तक रहा।

उदयपुर –तहसील बासौदा :– यह बरेठ मध्य रेलवे की बीना–भोपाल शाखा की स्टेशन से 6 किमी0 है। यह विदिशा से 55 किमी0 है। इसे परमार राजा उदयादित्य ने बसाया था।

विदिशा– जिला तहसील मुख्यालय :– यह मध्य रेलवे की बीना–भोपाल शाखा का स्टेशन है। पुराना नाम लेसनगर था और 1956 तक भेलसा कहा जाता रहा। यह भोपाल से 56 किमी0 दूरी पर है। युधिष्ठिर के अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा यहीं से ही छोड़ा गया था। यहां बाकाटक गुप्त ,कलचुरी , परमार तथा मालवा के सुल्तान गौरी आदि के शिलालेख उपलब्ध हुए हैं।

विशेष:– इस जिले में 15 दर्शनीय स्थल हैं, 5 स्थानों पर किले हैं। बाँकी के स्थान पुरातत्वीय सम्पदा के लिए प्रसिद्ध स्थल हैं।

जिला पन्ना के किले एवं गढ़ियाँ

पन्ना :– यह झाँसी –रीवा सड़क मार्ग पर तहसील व जिला मुख्यालय है। वनाच्छादित प्रदेश होने के कारण यह डंगाई राज्य कहा जाता था। इतना घना जंगल था कि यहां हाथी पाये जाते थे, शेरों की बहुतायत के साथ यहां सफेद शेर भी पाए जाते हैं, जो एक दुर्लभ प्रजाति है। "यहां पन्ना नामक हीरा प्राप्त होने से इस स्थान का नाम पन्ना कहलाने लगा । पहले यहां उत्तरी–पश्चिमी भाग चन्देलों का, पूर्वी भाग बघेलों का, और दक्षिणी–पूर्वी भाग पर गौड़ राजाओं का आधिपत्य रहा। महाराज छत्रसाल के लगातार आकमणों से उनके राज्य का विस्तार होता गया छत्रसाल की मृत्यु के बाद जदशाह (1732–1739) पन्ना के राजा रहे । इनके बाद सभासिंह (1739–1752) , अमानसिंह (1752–1758) हिन्दूपत (1758–1776) ,अनिरूद्ध सिंह (1776–1780) ,सरकेत सिंह ,धौकल सिंह (1785–1798) ,किशोर सिंह ,हरवंश राय ,निरपतसिंह, रूद्रप्रताप, लोकपाल सिंह,माधवसिंह एवं अन्त में यादवेन्द्र सिंह(1902–1964) अधिकारी रहे। 28 अप्रेल 1948 को 1लाख 45हजार 300रूपया बार्षिक प्रीवीपर्स लेकर पन्ना राज्य का विन्ध्य प्रदेश में विलय कर लिया गया। 4 सित0 को यादवेन्द्र सिंह की मृत्यु हुई । राजा पद की उपाधि उनके पुत्र नरेंद्र सिंह को दी गयी ।"[1]

अजयगढ़:– जैतपुर राज्य कीरत सिंह को मिला था। उनकी मृत्यु के बाद उनके भाई पहाड़ सिंह और कीरत सिंह के पुत्रों में गृह कलह हुआ , अंत में पहाड़ सिंह ने कीरत सिंह के बड़े पुत्र गुमानसिंह को सन्1765 में बाँदा अजयगढ़ का क्षेत्र

---

1. "बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ, श्री रामसेवक रिछारिया, पृ0 223–227 ऊषा प्रकाशन 90, सनौरा, बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

दिया। उस समय गुमानसिंह अपने सेनापति नौने अर्जुन सिंह के साथ बाँदा में रहने लगे। इनके बाद तमाम शासकों का अजयगढ़ पर आधिपत्य रहा । बखत सिंह (1772–1837) माधवसिंह (1837–49) महीपत सिंह (1879–53), विजयसिंह (1853–55), रंजोर सिंह (1859–1918), भोपाल सिंह (1918–1941) एवं अंतिम शासक पुण्यपालसिंह (1941–1958) फिर 2 मार्च 1948 को नौगॉव छावनी बुन्देलखण्ड के सभी राजा इकट्ठे हुऐ । और अपनी रियासतें विन्ध्य प्रदेश में विलय करने पर सहमत हुऐ। 20 दिस0 1949 को महाराज पुण्यपाल सिंह को 1 लाख 4हजार की वार्षिक प्रीवीपर्स कृषिफार्म ,कोठियाँ, निजी सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुंई । 21 जून पुण्यपाल सिंह के निधन के बाद उनके पुत्र देवेन्द्र विजय सिंहको राजा के रूप में मान्यता मिली, जो लोकप्रियता के शिखर पर हैं।

शाहनगर :– यहाँ गोंड़ राजा का बनवाया हुआ किला है। सन् 1723–31 में केशरी सिंह के पुत्र नरेन्द्रशाह ने मुगलों की शाही सेना के आक्रमण के समय छत्रसाल से मदद माँगने के उपलक्ष्य में दे दिया था। यहां के बागी बहादुर सिंह ने कोटरा–जोधपुर क्षेत्र में सन् 1758 से 1884 में लूटपाट मचा रखी थी।

पवई:– यहाँ गोंड राजाओं द्वारा किला बनवाया गया। सन् 1723–31 में केशरीसिंह के पुत्र नरेन्द्र शाह ने मुगलों के आक्रमण के समय छत्रसाल से मदद माँगने की उपलक्ष्य में दे दिया था।

जोधपुर :– यहाँ गोंड राजाओं द्वारा किला बनवाया गया था। सन् 1723–31 में केशरी सिंह ने सन् 1732–39 में अपने भाई भारती चन्द्र को (सन् 1739–50) जागीर दी थी। इसके बाद हरीसिंह (1750–75) चेतसिंह (1775–86) , मूरत सिंह (1786–30) , ईश्वरी सिंह (1830–1860) ,रामसिंह (1860–65) ,शत्रुसिंह (1865–1869),गोपालसिंह (1869–88) , गजराज सिंह (1888–1905) , गिरवर सिंह(1905–1915) एवं रामप्रताप सिंह (1915–1942) जसों के राजा हुए।

रामप्रताप सिंह गिरवर सिंह के पुत्र थे , गद्दी पर बैठते समय अल्पायु के थे। शासन प्रबन्ध अंग्रेजों द्वारा संचालित होता रहा । सन् 1929 में राज्याधिकार प्राप्त हुए। इनके आनन्द प्रतापसिंह और भानुप्रताप सिंह दो पुत्र थे। सन् 1942 में यह स्वर्गवासी हुए। अन्तिम शासक आनन्द प्रतापसिंह (1942–48) जसों के राजा रहे । 27 अप्रेल 1948 को यह राज्य 8600 रू0 वार्षिक प्रीवीपर्स देकर कोठी, महल और कृषि भूमि देकर विन्ध्य प्रदेश में विलीन हो गया ।

वघौरा (बनघौरा) :– पन्ना के राजा हृदयशाह ने (1732–39) में भारती चन्द को जसों की जागीर दी थी। भारती चन्द्र की मृत्यु 1750 में होने के बाद इनका एक पुत्र हरीसिंह जसों की गद्दी पद बैठा तथा दूसरा पुत्र दुर्जन सिंह बघौरा में रहने लगा था। दुर्जन सिंह के बाद मेदनीमल बघौरा की गद्दी पर बैठे। दुर्जन सिंह की मृत्यु होने पर जसों के राजा चेतसिंह ने बघौरा को विलय किया।

सिमिरिया :– यहां की गढ़ी के अधिकारी जैतपुर के राजा थे। जब 1857 में विद्रोह हुआ तब विरोधियों ने जैतपुर पर चढ़ाई की तो रानी राजों अपनी सिमिरिया गढ़ी में पहुँची । पन्ना नरेश नृपति सिंह ने बल पूर्वक सेना भेजकर जैतपुर की निराश्रित महारानी को सिमिरिया से भाग जाने को मजबूर किया था।

जिला टीकमगढ़ के किले एवं गढ़ियाँ

महाराजा विकमाजीत सन् 1776–1817 ने मराठों ओर पिंडारियों के लगातार आकमणोंके कारण सन् 1787 में ओरछा की बजाय टेहरी को टीकमगढ़ का नाम देकर किला और राजधानी का निर्माण किया और सन् 1817 में उन्होने अपने पुत्र धर्मपाल सिंह को गद्दी सौंप दी , जो कि 1834 तक टीकमगढ़ के राजा रहे। इनके बाद राजा तेजसिंह (1834–41), सुजानसिंह द्वितीय (1841–50) , हमीर सिंह 1874 तक , प्रतापसिंह 1930 तक रहे। अंत में ओरछा राज्य का विंध्य प्रदेश में विलय हो गया और वीर सिंह देव द्वितीय को 1 ,85 ,300 (एक लाख पचासी हजार तीन सौ) वार्षिक प्रीवीपर्स, विशेषाधिकार एवं निजी सम्पत्ति में किला

आदि दिए गऐ। वीर सिंह के बाद देवेन्द्र सिंह उत्तराधिकारी माने गए।

कुड़ार :– यह स्थान झाँसी–मऊरानीपुर सड़क मार्ग से निवाड़ी तिगैला ओर निवाड़ी तिगैला से कुड़ार जानेकी सड़क है। चन्देल राजा परमाल ने सन् (1165–1202) के समय उनके किलेदार सियाजू परमाल और उप किलेदार खूबसिंह खंगार को किले पर नियुक्त किया था। इसके अतिरिक्त यहां पर सहजेन्द्र, नौनक देव, पृथ्वीराज, रामसिंह तथा रामचन्द्र इत्यादि लोगों ने यहां पर शासन किया। कुड़ार के बाद ओरछा को राजधानी बनाया।

ओरछा– ओरछा का पुराना नाम गंगापुरी था। परिहारों की राजधानी थी। परिहारों का प्रभाव कम हो जाने पर मुगलों ने यहां पर आक्रमण किया। राजा रूद्रप्रताप ने यहां पर किले की नींव डाली थी तथा नगर बसाया था। ओरछा के आस–पास घ़नघोर जंगल था यहां पर खूँखार जंगली जानवर रहते थे। रूद्रप्रताप के बारह पुत्रों में से भारतीय चन्द्र ज्येष्ठ पुत्र और खण्डेराव सबसे छोटे पुत्र थे। वीर सिंह और जुझार सिंह ओरछा के शासक हुये थे। विक्रमाजीत सिंह ओरछा की गद्दी के अंतिम शासक हुये थे। उन्होंने मराठों और पिण्डारियों की लूटपाट रोकने हेतु आठ किले बनवाये थे जहां सेना और किलेदार रखे थे। ओरछा की वजाय टहरी को राजधानी बनाया।

निवाड़ी– "कुड़ार के बुन्देलाराज्य शासन के अन्तिम राजा मलखानसिंह (1468–1501ई0) रहे। इनके छः पुत्र थे। सन् 1754 में इनके वंशजों पर नारो शंकर मराठा ने आक्रमण करके किले को ध्वस्त कर दिया था।"[1]

पृथ्वीपुर– महाराज पृथ्वीसिंह ने यहां पर किले का निर्माण कराया था। पृथ्वी सिंह तथा ओरछा राज्य के शासकों के बीच अच्छे सम्बन्ध थे तथा 1843 में पृथ्वीपुर अंग्रेजों के आक्रमण का केन्द्र रहा है।

---

1. "बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ, श्री रामसेवक रिछारिया, पृ0 257 ऊषा प्रकाशन 90, सनौरा, बरूआसागर, झाँसी (उ0प्र0)।

महेवा नुना– यह झाँसी के बंगरा–कटेरा के पास सुखनई नदी के किनारे स्थित है। महाराज रूद्रप्रताप के तीसरे पुत्र उदयादित्त को महेवा नुना की जागीर दी गई थी जिनके महल अभी भी खण्डहर स्थिति में हैं। इनके 6 पुत्र थे, उनमें प्रेम चन्द्र को नुना महेवा की जागीर मिली थी। यहाँ ध्वस्त किला है।

लिधौरा– यहां एक किला है जिसमें स्कूल लगता है। सन् 1772–75 में महेन्द्र महारानी ने उदोत सिंह के पंती मानसिंह को ओरछा का राजा बनाया था।

मोहनगढ़– महाराजा उदोत सिंह के पुत्र अमरेश राजा खनियां धाना ने मराठों की आक्रमण नीति के अनुसार सन् 1751 में मोहनगढ़ पर अधिकार जमाया था। इस समय किला ध्वस्त है।

जतारा– महाराजा भारतीय चन्द्र ने शेरशाह सूरी के पुत्र इस्लामशाह सूरी से युद्ध किया। इसका पुराना नाम इस्लामाबाद था। बाद में इसका नाम जतारा हुआ। यहाँ किला है जो खण्डहर हो चुका है।

पलेरा– महाराजा वीरसिंह देव के सातवें पुत्र भगवानदास को सन् 1627 में पलेरा की जागीर मिली थी। यहां पर किला है जो ध्वस्त हो चुका है।

खरगापुर, पचेरा, रावली, असाटी– खरगापुर पर बुन्देलों का शासन था। यहां का किला ठीक स्थित में है। पचेरा में गौड़ राजाओं द्वारा किला बनवाया गया था जो ध्वस्त हो चुका है। रावली में बुन्देला शासन के अन्तिम राजा मलखान सिंह थे तथा किला ध्वस्त है। असाटी में मलखान सिंह का शासन था, किला ध्वस्त है।

वंधा वरेठी, वराना, वम्हौरी, रायगढ़, जतारा, वम्हौरी कला, अस्तौना, मजना, बड़ागाँव, बल्देव गढ़, चन्दपुरा–

यह सभी किले महाराज बिक्रमजीत सिंह ने सन् 1776–1817 के बीच अपने शासनकाल में मराठों पिण्डारियों की लूट से सुरक्षा के लिये बनवाकर उसमें सेना रखी थी। बल्देव गढ़ के किले को छोड़कर सभी किले खण्डहर हो चुके हैं। लिधौरा, दिगौड़ा मवई एवं खरगापुर के किले ठीक स्थिति में हैं।

टेहरका, मड़वा राजगढ़, धौर्रा, जेरौन, सकेरा, जतारा, नदनवारा, केशवगढ़, कुम्हेरी, खैरा, मालपीथा, भोरगढ़, मस्तापुर, दरगांव, धामा, माचीगढ़, कसबरी, पगारा, माड़ूभर, पठा, लार, कुड़ेरा एवं फुटेर–

यहाँ सभी जगह किले हैं जो खण्डहर स्थिति में हैं।

जिला शिवपुरी के किले एवं गढ़ियाँ

शिवपुरी– जिला एवं तहसील का मुख्यालय है। जो हवाई जहाज मार्ग से 112 कि0मी0 ग्वालियर इन्दौर मार्ग पर स्थित है। वर्तमान समय में शिवपुरी मध्य प्रदेश का प्रमुख जिला है, यह ग्वालियर सम्भाग के अन्तर्गत आता है। यह सिंधिया वंश की ग्रीष्मकालीन राजधानी रही है। सिंधिया से पहले मधुकर शाह यहां के जागीरदार थे। प्राकृतिक सौन्दर्यता, घने जंगल, घनी पहाड़ियां और खूँखार जानवर यहां की भव्यता को प्रदर्शित करते हैं। शिवपुरी का सम्बन्ध मराठा वंश के कई सूबेदारों से है तथा रानी झाँसी लक्ष्मीबाई के सहयोगी तात्याटोपे की जन्मभूमि शिवपुरी थी। यहां राजा और रानी की विशाल छतरियां हैं।

करेरा– ओरछा के राजा रूद्रप्रताप सन् 1501–31 ने अपने 12 पुत्रों में सातवें पुत्र चन्दनदास को करेरा की जागीर दी थी। पेशवा सरदार नारोशंकर ने करेरा पर आक्रमण करके बुन्देलों से किला जीत कर नये राज्य का निर्माण किया था।

अलगीर– यह झाँसी–शिवपुरी मार्ग पर दिनारा के पास बुन्देले जागीरदारों के अधिकार में था। यहां के जागीरदार ने सन् 1856 में टीकमगढ़ की फौज तथा महारानी लक्ष्मीबाई का साथ दिया था। यहां की गढ़ी ध्वस्त है।

दिनारा– झाँसी–शिवपुरी मार्ग पर बसा हुआ है। गढ़ी खण्डहर है, यहां बुन्देलों का राज्य था।

कटीली– दिनारा के पास छोटी जागीर थी जिसे सन् 1742 में नारोशंकर मराठा ने जीत लिया था। शुरूआत में यहां के शासक बुन्देला थे, परन्तु बाद में सिंधिया यहां

के शासक हो गये थे।

पिछोर– यह पहले बुन्देलों की जागीर थी जिसे 1742 में मराठा सरदार नारोशंकर ने आक्रमण करके नया राज्य स्थापित कर लिया था।

नरवर– यह शिवपुरी से 41 किमी0 दूर है। यह राजा नल की राजधानी थी। सन् 990 में कीर्तिराज कछवाहे यहां के शासक थे। यहां विशाल दुर्ग है परन्तु ध्वस्त हो चुका है। नरवर के बारे में एक जनश्रुति है–

नरवर चढ़े न वेढ़नी, एरच पके न ईंट।

गुदनौटा भोजन नहीं, बूंदी छपे न छींट।।

जिला गुना के किले एवं गढ़ियाँ

वर्तमान समय में गुना म0 प्र0 के ग्वालियर संभाग में आता है। गुना का सम्पर्क उत्तर मध्य और पश्चिम मध्य रेलमार्ग से जुड़ा है। गुना की सीमा राजस्थान के समीपस्थ जिला बारा से मिलती है। गुना के आस–पास प्राकृतिक सुन्दरता एवं घने जंगल हैं जो कि इस जिले की भव्यता एवं गौरवता प्रदर्शित करते हैं।

चन्देरी:– महाभारत काल में यह चेदि राज्य की राजधानी थी। यहां का राजा शिशुपाल था जो श्री कृष्ण का प्रतिद्वन्दी था। बाबर नेअपनी वीरता का प्रदर्शन कर चन्देरी के राजा मेदनीमल को हराया था। वर्तमान समय में यहां के किले एवं महल जीर्ण– शीर्ण स्थिति में हैं।

मुगावली :– यह पहले मुगलों के अधिकार में चन्देरी के सूबेदार गोदेराय के शासन में था। सन्1748 में मराठा सरदार नारोशंकर ने आक्रमण किया था। बाद में सिंधिया ने इसे हड़प लिया।

सैराई:– यह पहले मुगल सम्राट शाहजहां के अधिकार में चन्देरी के सूबेदार गोदेराय के अधीन था। इसके प्रमुख शासक दुर्गसिंह, दुर्जन सिंह व मानसिंह रहे।

ईसागढ़ :– यहां के शासक मुगल थे। दुर्गसिंह, दुर्जन सिंह और मानसिंह भी यहां के शासक रहे। बाद में मराठा सरदार नारोशंकर ने आक्रमण करके ईसागढ़ को अपने क्षेत्र में कर लिया।

अचलगढ़:– यहां मुगलों का शासन था। सन् 1616 में चन्देरी की सूबेदारी में था जिसे नरेश भरतसिंह ने जीता था। भरत सिंह के वंशज यहां के शासक रहे।

राघौगढ़:– पुराना किला है, ध्वस्त हो चुका है। शेष इतिहास मौन है।

बुन्देलखण्ड भारत देश का एक अंग होने के कारण सांस्कृतिक , राजनैतिक, धार्मिक ,एतिहासिक , शैक्षणिक, साहित्यिक, और सामाजिक समायोजनों में पूरी तरह से रंगा हुआ है। लेकिन बु0 खण्ड केन्द्रवर्ती होने के कारण अनेक राजवंशों, हिन्दूराज वंश, मुस्लिम राजवंश तथा अंग्रेजी राजवंशों के द्वारा समय–2 पर शासन रहा । बु0 खण्ड में प्रमुख रूप से हिन्दू राजवंशों में चन्देला, बुन्देला और मराठा रहे। मुस्लिम आक्रमणों तथा उनका आधिपत्य होने के कारण हिन्दू राजाओं विशेष तौर से चन्देला ओर बुन्देलाओं को विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा।

बुन्देलखण्ड में चन्देला और बुन्देला क्षत्रियों का शासन होने के कारण हिन्दू धर्म की रक्षा हो सकी ,तथा धार्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को प्रधानता दी जा सकी। बुन्देलों का सामाजिक व आर्थिक जीवन का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि बुन्देला शासकों ने अपने जीवन में विषम, प्राकृतिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों का मुकाबला, बड़ी वीरता के साथ किया।बुन्देलखण्ड के सभी क्षत्रियों और युद्ध प्रिय जातियों के लोग अपने बाहुबल से अपने राज्यों का विस्तार करते रहे। उन्होने मुगलों से आक्रमण करके अपने राज्य का विस्तार उत्तरोत्तर एवं कमोत्तर दृष्टि से बढ़ाया।

खजुराहो चन्देला वंश का प्रमुख केन्द्र रहा है तथा ओरछा और टीकमगढ़ बुन्देलवंश तथा झाँसी मराठाओं का। मराठाओं से पहले मध्य प्रदेश और

उत्तर प्रदेश के कई जिलों में बुन्देलाओं की जागीरदारी थी परन्तु बुन्देलाराजवंशों में आपस में वैमनुष्यता ,फूट, प्रतिद्वन्दिता , मनमुटाव था, इन्हीं सब बिन्दुओं के कारण बुन्देला रजवाड़े धीरे–धीरे क्षीण होते चले गये और उनके स्थान पर मराठाओं ने अपना राज्य स्थापित कर लिया । पेशवा बाजीराव, बाबूराव, महादजी सिंधिया तथा नारोशंकर जैसे मराठा अपने वीरत्व के द्वारा बुन्देला रजवाड़ों की शक्ति को दुर्बलता की ओर ले गये और अपना एक छत्र राज्य स्थापित कर लिया।

युद्धनीतियों में, प्रशासन नीतियों में तथा कूटनीतियों में मराठा शासक चन्देला एवं बुन्देलाओं से अधिक योग्य एवं श्रेष्ठ थे। चन्देलाओं ने बुन्देलखण्ड में अपना विस्तार किया, चन्देलाओं से पहले बुन्देलखण्ड के इतिहास के बारे में भारतीय धर्मग्रन्थों में बुन्देलखण्ड को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया। जैसे चेदि, जुझौती आदि। परन्तु बुन्देलखण्ड को अग्रसारी बनाने में बुन्देलाओं का चन्देलाओं की अपेक्षा अधिक योगदान रहा ।

बुन्देलखण्ड के इतिहास में विभिन्न प्रकार की गौरवगाथायें, लोक कथायें एवं वीर कथायें छिपी हुई हैं जिनका सम्बन्ध चन्देला, बुन्देला एवं मराठा शासकों से है। इन शासकों के बारे में बहुत सी जनश्रुतियां, लोकोक्तियां एवं क्विदंतियां हैं। बुन्देलखण्ड के शासक केवल बुन्देलखण्ड में ही सीमित नहीं थे बल्कि ये शासक साहित्य एवं शोध की दृष्टि से राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता की ख्याति अर्जित कर चुके हैं। इन शासकों की राजतांत्रिक नीतियों को वर्तमान समय में प्रजातांत्रिक नीतियों से मेल करके देश के हित में बनाई जा सकती है, जिनका कि योगदान भारत के विकासात्मक दृष्टिकोंण से उपयोगिता और सार्थकता का प्रतिनिधित्व करता है।

चौथा अध्याय

जिला झाँसी एवं झाँसी दुर्ग का भौगोलिक वर्णन :–

(1) झाँसी दुर्ग का स्थापत्य

(2) झाँसी दुर्ग का इतिहास

(3) झाँसी दुर्ग का सैनिक महत्व

(4) चित्रावली

जिला झाँसी एवं झाँसी दुर्ग का भौगोलिक वर्णन :-

झाँसी की वीर वसुन्धरा भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की अमरदीप शिखा झाँसीश्वरी महारानी लक्ष्मीबाई की विशाल वैभव एवं कीर्ति से गौरवान्वित है। झाँसी बुन्देलखण्ड की प्रमुख नगरी है जो मान मर्यादा एवं स्वतन्त्रता हेतु सहर्ष बलिदान करने वाली अगणित नरपुंगवों की लीला भूमि है।

"झाँसी जनपद उ0प्र0 के दक्षिणी–पश्चिमी पठारी भाग में स्थित है। यह 24°11′ से 25°57′ उत्तरी अक्षांश में तथा 78°10′ से 79°25′ पूर्वीय देशान्तर के समानान्तर के मध्य स्थित है । इसके उत्तर तथा पूर्व में कमशः जालौन और हमीरपुर है तथा दक्षिण और पश्चिम में मध्यप्रदेश के जिलों की सीमायें मिलीं है। झांसी जिले का क्षेत्र 10,2642 वर्ग किमी0 है । इस जनपद के अन्तर्गत 6 तहसीलें .(प्राचीन भौगोलिक मत के अनुसार)हैः–

(1)झाँसी (2) मोंठ (3) गरौठा (4) मऊ (5) ललितपुर (6) महरौनी।[1]

वर्तमान समय में ललितपुर झांसी से अलग हो गया ।अधिकांश पठारी एवं वनस्थल संयुक्त होने के कारण आर्थिक दिशा में यह क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ है तथा बड़े उद्योगों का अभाव है ,किन्तु रेल एवं सैना का विशेष केन्द्र होने के कारण यह क्षेत्र प्रगति की ओर उन्मुख है। इस समय झाँसी में भारत हैवी इलैक्ट्रीकल्स,डायमण्ड सीमेण्ट फैक्ट्री ,पारीछा तापीय विद्युतगृह इत्यादि बड़े प्रतिष्ठान हैं।

जिला झाँसी की प्रमुख नदियाँ बेतवा, धसान,जामिनी तथा पहुज है। बेतवा झाँसी के दक्षिणी–पश्चिमी कोने से प्रवेश करती है। पहूज जिले के पश्चिमी भागों से बहती हुई म0प्र0 से गुजरती है।जिला झाँसी के चारों ओर माताटीला बाँध, कमलासागर, सुकवाँ, ढुकवाँ, गोविन्दसागर(ललितपुर), पारीछा(झाँसी), आदि बाँधों का निर्माण किए जाने से सिचाई व विद्युत प्रसारण की दिशा में प्रगति हो रही है।

---

1. "' झाँसी दर्शन " श्री मोती लाल त्रिपाठी "अशान्त" ,पेज–116, लक्ष्मी प्रकाशन ,86 पुरानी नझाई , झाँसी ।

जिला झाँसी की जलवायु का मूल्यांकन वर्षभर की अत्यधिक वर्षा से किया जाता है। गर्मी में अत्यधिक गर्मी पड़ती है जो प्राकृतिक चट्टानों के कारण होती है। गर्मी की ऋतु जल्दी प्रारंभ होती है। वर्षा का औसत 879 मिमी0 है। उत्तरी पूर्वी भाग में छोटी –2 लाल चट्टानें हैं।

झाँसी खनिज पदार्थ की दृष्टि से अधिक धनी (**Pyrophyllite**) है। यहां के आसपास ग्रेनाइट तथा ताबां कुछ मात्रा में पाया जाता है। झाँसी का ग्रेनाइट भवन सौन्दरीकरण के लिए बड़ा ही उपयोगी है।

जिले की जनसंख्या 1087479 है और इस दृष्टि से झाँसी उ0प्र0 में 39 वीं श्रेणी के अंतर्गत आता है। 1972 की गणना के अनुसार जिले की जनसंख्या 10,30,276 है। झाँसी जिले की कुल आबादी में साक्षरता का प्रतिशत 20 है। सम्पूर्ण प्रदेश में झाँसी 16वीं श्रेणी में आता है। पुरूषों की ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता 53.43% है तथा नगरीय क्षेत्रों में पुरूषों की साक्षरता 44. 90% है। इस प्रकार जनपद में पुरूषों की साक्षरता 49.43% है। तथा स्त्रियों की साक्षरता 79.43% है जो एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

जिले की अर्थव्यवस्था :–

बुन्देलखण्ड उ0प्र0 के दक्षिणी पश्चिमी कोने में स्थित है। और झाँसी मण्डल के अंतर्गत झाँसी, जालौन तथा ललितपुर आता है। झाँसी की अर्थव्यवस्था का सम्बन्ध रेलवे ,कृषि एवं पशुधन से है।

झाँसी की मिट्टी में दो प्रकार की फसलें पैदा होती हैं– खरीफ और रबी।खरीफ फसल में ज्वार, उर्द, मूँग, तिलहन एवं धान हैं, चना व गेंहूँ रबी में बोई जाती है।

जनसंख्या के आधार पर मबेशी, भेड़ व बकरी आते है। झाँसी में **Dead cattle utilisation center** है। **Poultry** तथा **Piggery** की दृष्टि से प्रदेश में बहुत कम आबादी है। झाँसी में कृषि अनुसंधान चारागाह संस्थान (IGFRI) तथा कृषि वानकीय विश्व प्रसिद्ध संस्थान जो कि कृषि सम्बन्धी समस्याओं का बुन्देलखण्ड में ही नहीं अपितु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का निराकरण करते हैं।

झाँसी तहसील में झाँसी शहर, नगरपालिका, झाँसी केन्टूमेन्ट (सदर बाजार तथा बबीना) और रेलवे सेटलमेंट का नोटीफाइड एरिया (नौ नम्बर नगरा, गढिया फाटक तथा पश्चिम रेलवे कॉलोनी)आते हैं। झाँसी शहर वर्तमान में शिक्षा की दृष्टि से कमोत्तर प्रगति कर रहा है। इंजीनियरिंग कॉलेज, मेडीकल कॉलेज, पॉलीटेकनिक आयुर्वेदिक, तथा विपिन बिहारी महाविद्यालय विज्ञान वर्ग, बुन्देलखण्ड कॉलेज (कला वाणिज्य तथा शिक्षा संकाय)एवं बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय द्वारा चलाये जाने वाले 117 व्यवसायिक पाठ्यकम जो कि व्यक्तियों को जीवन में जीविकोपार्जन अर्जित करने के लिए मार्गदर्शन दे रहे हैं। कई विषयों में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय में शोध कार्य भी चल रहा है।

आयुर्वेदिक औषधियों के लिये ग्वालियर रोड पर राजकीय आयुर्वेदिक शोध प्रक्षेत्र खोला गया। बैजनाथ फार्मेसी द्वारा आयुर्वेद निर्मित दवाइयाँ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर रही हैं। जिले मे 5 बेसिक प्रशिक्षण केन्द्र है जिसमें दो झाँसी में और दो ललितपुर में और एक मऊरानीपुर में है। 2 सेन्ट्रल स्कूल हैं और 3 ऐंग्लोइंडियन स्कूल हैं।

वर्तमान समय में बैंक झाँसी जिले में ग्रामीण और शहरी व्यक्तियों की सेवाकर रहे हैं जिसमें कि स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, पंजाब नेशनल बैंक , सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, कोऑपरेटिव बैंक, यूनाइटेड कॉमर्शियल बैंक, लेण्ड डवलपमेण्ट बैंक। झाँसी जिले का इलाहाबाद बैंक सबसे पुराना बैंक है, जिसकी स्थापना 1879 में हुई।

झाँसी जिले में सबसे बड़ी औद्यौगिक संस्था उ0म0 रेलवे की है। इसमें सेन्ट्रल रेलवे मैकेनिकल कैरिज एण्ड बैगन वर्कशाप है जिसमे 3000 मजदूर कार्य करते हैं।इसके अतिरिक्त सेन्ट्रल रेलवे ट्रांसपोर्टेशन कैरिज एण्ड बैगन वर्कशाप रिपेयरिंग डिपों, स्वदेशी सिल्क एण्ड रिविन मिल और ग्रेनाइट स्टोन क्रेशिंग कम्पनियाँ है। झाँसी जिले की तहसीलों की संख्या 6, विकास क्षेत्रों की संख्या 14, न्याय पंचायतों की संख्या 113, ग्राम सभाओं की संख्या 649, निर्वाचित ग्रामों की संख्या 1863, नगरपालिकाओं की संख्या 5, केन्द्रीय बोर्ड की संख्या 3, नोटीफाइड एरिया की संख्या 2, टाउन एरिया की संख्या 6, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 34 ,संस्कृत पाठशालाओं की संख्या 9, मकतबो की संख्या 10।

झाँसी जिले का स्वरूप चित्र

तहसील	क्षेत्रफल (वर्ग किलोमीटर में)	जनसंख्या
झाँसी	11634	301565
मोंठ	11683	132792
गरौठा	15186	134424
मऊरानीपुर	10846	145703
ललितपुर	27416	221625
महरौनी	21254	151370
6	98019	1087479

सन् 1971–72 1350000

1. "' झाँसी दर्शन " श्री मोती लाल त्रिपाठी "अशान्त" ,पेज–128, लक्ष्मी प्रकाशन ,86 पुरानी नझाई , झाँसी ।

झाँसी जिले का अंकचित्र

विषय	अंक
1. जनसंख्या (1971)	1350000
2. क्षेत्रफल (वर्ग किलोमीटर)	98019
3. तहसील	6
4. सिंचाई क्षेत्रफल (रबी)	103527
5. सिंचाई क्षेत्रफल (खरीफ)	3242
6. बिजली (कस्बों)	8
ग्रामों में	70
7. साक्षरता (प्रतिशत) पुरुष	30.5
नारी	8.3
8. उद्योग (Estates)	2
लघु उद्योग	337
9. बैंकिंग दफ्तर (1970–71)	22
10.उद्योगों में प्रदेश की सहायता इकाइयाँ	581
वितरित राशि	1211500
11.खाद्यनिगम द्वारा गोडाउन की संख्या	8
(Capacity) वि0 टन	12257

1. "" झाँसी दर्शन " श्री मोती लाल त्रिपाठी "अशान्त" ,पेज–129, लक्ष्मी प्रकाशन ,86 पुरानी नझाई , झाँसी ।

झाँसी जिला बुन्देलखण्ड का हृदय है। बुन्देलखण्ड के वातावरण में झाँसी की कसक, दतिया की ठसक, बाँदा की अकड़, और जालौन की पकड़ आज भी अपनी वास्तविकता का परिचय देती है। झाँसी का इतिहास व इसकी प्राकृतिक सौन्दर्यता, सजीवता की छटा को विखेर देती है। झाँसी की प्रातःकाल मनमोहक और बसंत के मौसम में खिले हुए टेसू (पलास), महुआ तथा ग्रामीण क्षेत्रों के तड़ागों और कुण्डों में खिली हुई कुमोदनी मन को मोहित कर लेती है।

"यूनेस्को की महासभा ने 1972 ई0 में विश्व सभ्यता एवं प्राकृतिक धरोहर के संरक्षण हेतु उत्साहवर्द्धक प्रस्ताव पारित कर महत्वपूर्ण कदम उठाया । इसके अन्तर्गत यूनेस्को की एक शाखा " अन्तर्राष्ट्रीय स्मारक एवं स्थल परिषद" ने प्रतिवर्ष 18 अप्रेल को विश्व दिवस धरोहर दिवस मनायें जाने की घोषणा की । 1977 से भारत विश्व धरोहर का सक्रिय सदस्य तथा 1985 से विश्व धरोहर समिति का निर्वाचित सदस्य है। अब तक भारत के 16 प्राचीन स्मारक स्थल तथा 4 प्राकृतिक स्थल विश्व धरोहर सूची में शामिल हो चुके हैं।

भारत की स्वतंत्रता के स्वर्ण जयंती वर्ष में विश्व धरोहर सप्ताह का आयोजन, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के हृदय स्थल झाँसी दुर्ग में 19–25 नवम्बर 1997 तक आयोजित किया गया था। झाँसी का दुर्ग शताब्दियों तक हमारे स्वतंत्र.ता संघर्ष के प्रतीक के रूप मे हमें प्रेरणा देता रहेगा।"[1]

"उत्तर प्रदेश के दक्षिण –पश्चिमी छोर पर स्थित झाँसी,($25^0 11'$– $25^0 57$अक्षांश $78^0 10'$– $79^0 25$देशान्तर) का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अतिमहत्वपूर्ण स्थान है।"[2]

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़े होने के कारण प्रत्येक भारतीय इस दुर्ग से भावनात्मक लगाव रखता है। यह दुर्ग मध्यभारत का एक सुदृढ़ एवं यौद्धिक रणनीति की दृष्टि से विशेष महत्व का था। तारे जैसा आकार होने से इसे तारा दुर्ग की भी संज्ञा दी गई है। इसका कुल क्षेत्र लगभग 49 एकड़ है जिसमे 15 एकड़ भूमि में मुख्य दुर्ग व दुर्ग प्राचीर निर्मित है। इसके दो तरफ रक्षा खाई

---

1. विश्व धरोहर सप्ताह (19–25 नवम्बर,1997) झाँसी दुर्ग, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, लखनऊ मण्डल, उ0प्र0, पंज नं0 1 ।

2. विश्व धरोहर सप्ताह (19–25 नवम्बर,1997) झाँसी दुर्ग, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, लखनऊ मण्डल, उ0प्र0, पंज नं0 2 ।

तथा कुल 22 बुर्ज हैं। इस दुर्ग के निर्माण में तीन प्रमुख चरण थे, जिनमें मुख्य थे बुन्देलकालीन, मराठा कालीन निर्माण तदोपरांत अंग्रेजों द्वारा कुछ छोटे–मोटे परिवर्तन आदि। अंग्रेजों ने नया प्रवेश द्वार बनवाने के साथ पंचमहल में एक अतिरिक्त तल बनवाया तथा दक्षिणी–पूर्वी बुर्जियों तथा दीवारों व मुंडेरों की मरम्मत भी करवाई। निर्माण की दृष्टि से दुर्ग को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :– बारादरी, शंकरगढ़ एवं पंचमहल। इसके अतिरिक्त दुर्ग के अन्दर कई अन्य महत्वपूर्ण भवनों के भी अवशेष हैं। नगर की दीवार में 10 द्वार थे– खण्डेराव द्वार, दतिया द्वार, उन्नाव द्वार, ओरछा द्वार, बड़गांव द्वार, लक्ष्मी द्वार, सागर द्वार, सैंयर द्वार, भाड़ेंर द्वार तथा झरना द्वार। पहले 8 द्वारों में अभी भी काष्ठ दरवाजे मौजूद हैं, अन्तिम दो द्वारों में से एक बन्द है तथा एक खुला है। सैंयर द्वार तथा झरना द्वार के बीच ह्यूरोज द्वारा दीवार तोड़कर बनाया गया मार्ग अभी भी दृष्टव्य है। इसके अतिरिक्त चार खिड़कियां क्रमशः गनपतगिरि की खिड़की, अलीगोल की खिड़की, सुजान खान की खिड़की तथा सागर खिड़की बनाई गई थी।

इतिहास का सम्बन्ध दुर्ग, गढ़ियों और आदर्श वीरों की रक्तिम गाथाओं का समन्वय है। इतिहास भूतकाल की घटनाओं का उज्ज्वल दर्पण है। दुर्गो में आदर्श वीरों तथा शत्रुओं को पराजित करने वाली विजय वैजन्ती फहराने वाले योद्धाओं का सम्बन्ध दुर्गो से रहा है। दुर्ग वीरत्व की कसौटी के आत्म विश्वास, कर्तव्यपरायणता, स्वाभिमान और धर्म निष्ठ के साक्षी हैं।

(अ) झाँसी दुर्ग का स्थापत्य

"झाँसी क्षेत्र प्रागैतिहसिक काल से ही मानव का कर्म स्थल रहा है। झाँसी के निकट बनगुवां से प्राप्त निम्न पुरापाषाण काल के उपकरण इसकी पुष्टि करते हैं। एरच से प्राप्त मृदभाण्डों के टुकड़ों से ज्ञात होता है कि ताम्र पाषाण काल में काले एवं लाल प्रकार के मृदभाण्डों का प्रयोग करने वाले मानव इस क्षेत्र में निवास करते थे।"[1]

झाँसी के बहुसंख्यक स्मारक मुगल तथा बुन्देला स्थापत्य शैली को सम्मिश्रित कर

---

1. "झाँसी" (इतिवृत्त, स्थापत्य कला, सांस्कृतिकी), डा0 रुद्र किशोर पाण्डेय, पृष्ठ सं0 1 आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1990।

निर्मित किये गये हैं। इनके अतिरिक्त कुछ स्थानीय नवीन गुणों का भी समावेश यहां के स्मारकों में देखने को मिलता है। मुगल शैली के अनुरूप तोरण द्वार पर सादा महराव कटावदार तथा बुन्देला स्थापत्य की शंकु आकार महरावों से झाँसी के स्मारकों के द्वार सुसज्जित किये गये थे। इसके अतिरिक्त गोल द्वार बनाकर कटावदार महराव को (चूने में) अलंकरण से सजाया जाता था। यह पूर्णतः स्थानीय परम्परा थी।

झाँसी दुर्ग प्रथम स्वतंत्रता युद्ध के अनेक स्वर्णिम अवसरों एवं उसके पूर्व के गौरवमय इतिहास की स्मृति अपने ह्रदय में संजोये बंगरा पहाड़ी पर गर्व से खड़ा है। इसका निर्माण ओरछा के बुन्देला महाराजा वीरसिंह जू देव ने मौज महल के रूप में करवाया था। झाँसी दुर्ग पर क्रमशः बुन्देला, उनके प्रतिनिधि रूप में गुसाइयों, मुगल तथा मराठों का आधिपत्य रहा है। अन्तिम चरण में ईस्ट इंडिया कम्पनी के सर ह्यूरोज ने इस किले पर कब्जा कर लिया था। स्वतंत्र भारत में इसकी व्यवस्था एक महत्वूपर्ण राष्ट्रीय स्मारक के रूप में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा की जाती है।

मुख्य रूप से झाँसी दुर्ग के तीन भाग हैं :– गणेश मन्दिर क्षेत्र, मौज महल तथा शंकरगढ़। गणेश मन्दिर क्षेत्र बंगरा पहाड़ी का उत्तरी ढलान है। नगर से दुर्ग में प्रवेश करने पर सर्वप्रथम यह क्षेत्र मिलता है, यह मौज महल के प्रवेश हेतु प्राचीन मार्ग है। चार विभिन्न स्थलों पर द्वार बनाकर इस मार्ग की सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ की गई थी। नगर की ओर से प्रवेश करने पर प्रथम एवं द्वितीय द्वार के मध्य एक खुली वीथिका है। इस वीथिका में बांयी ओर दुर्ग की बाह्य दीवार से सटा हुआ अर्द्ध वृत्ताकार मंच है। मंच पर बीचों–बीच ग्रेनाइट के शिला में दो बड़े छेद हैं, जो झाँसी राज्य के ध्वज दण्ड को स्थापित करने के काम में आते थे। द्वितीय द्वार के पश्चात भूमि का धरातल असाधारण रूप से ऊँचा है। यहां एक सुन्दर बारादरी का निर्माण इस प्रकार से किया गया था कि इसका एक कोना द्वितीय द्वार के ठीक ऊपर स्थित है। बारादरी के ऊँचे मंच पर स्थित चौकोर लघु कक्ष है, मंच का निर्माण तलघर के रूप में किया गया था जो जल भण्डारण हेतु प्रयुक्त होता था। बारादरी की छत कुण्ड के रूप में निर्मित है, इस कुण्ड से जल चारों दिशाओं में तीन–तीन गजमुख

फुब्बारों द्वारा निकलता था। बारादरी के वितान में लगे फुब्बारे में भी इस छत वाले कुण्ड से ही जल जाता था। बारादरी का फर्श भी चौकोर कुण्ड के रूप में निर्मित किया गया था।

प्रत्येक दिशा में कटावदार सुन्दर महराबों से सुसज्जित तीन–2 द्वारों का समायोजन बारादरी में है। महराबों के ऊपर प्रत्येक दिशा में टूड़ों पर आधारित कंगनी है। टूड़ों की रचना मयूर एवं शुक युगलों के रूप में की गई। इन टूड़ों के मध्य कोंड़ी के प्लास्टर से निर्मित श्वेत धरातल पर लता पत्रों तथा पुष्पों का चित्रण कत्थई रंग से किया गया था। बारादरी के पश्चिम में मुगल शैली का सुन्दर फुब्बारा है, मंच की दीवार पर मुगल शैली के अनुरूप छोटे–2 दीपक सजावट हेतु बनाये गये थे। समीप ही कक्षों एवं दल्लान के खण्डहर हैं। स्थापत्यीय विशेषताओं से प्रतीत होता है कि यह झाँसी के मराठा शासकों का दरवार स्थल था।

झाँसी किला बुन्देला एवं मुगल स्थापत्य कला का अनूठा एवं अनुपम उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है जो कि शिक्षाविदों, इतिहास विदों, शोध छात्र छात्राओं एवं पुरात्वविदों को फुब्बारों, बारादरियों एवं अन्य बारादरी से सम्बन्धित संरचनाओं को सोचने के लिये बाध्य कर रहा है। बारादरी के आगे तृतीय एवं चतुर्थ द्वार के मध्य ऊँचे मंच पर धनुषाकार वितान से आवृत एक कक्षीय गणेश मंदिर है। धनुषाकार वितान राजपूत स्थापत्य की विशेषता है। इस प्रकार के वितान राजस्थान एवं ग्वालियर के स्मारकों में देखने को मिलते हैं। मंदिर में दोनों पार्श्वों एवं सम्मुख भाग में कटावदार महराब का एक–एक द्वार है। कोंड़ी के प्लास्टर पर कत्थई फूलकारी का चित्रण कर मंदिर सुसज्जित किया गया था। इसमें चतुर्भुजी गणपति की विशाल प्रतिमा प्रतिस्थापित है। देव आसन पर विराजमान हैं, इनके दाहिने सामान्य हाथ में अक्षय सूत्र एवं दाहिने अतिरिक्त हाथ में अंकुश है, बांये सामान्य हाथ में स्वदंत एवं बाये अतिरिक्त हाथ में परशु है। सुण्ड वक्ष तक सीधी लटक कर टुण्ड पर दाहिनी ओर घूमती हुई कुण्डलित है।, इसी कुण्डली में मोदक फसा है। देव के सूपकर्ण बड़ी–बड़ी बालियों से सुसज्जित हैं, शीश पर सुन्दर क्रीटमुकुट है, मुकुट पर दो वृत्ताकार पुष्प अंकित हैं। दाहिने पुष्प पर अर्द्धचन्द्र शोभित है। देव के मस्तिष्क पर त्रिनेत्र हैं। हार–माला ब्याल, यज्ञोपवीत, कंकण तथा नूपुर से वे अलंकृत हैं। विज्ञान की दृष्टि से यह प्रतिमा महत्वपूर्ण है। देव के मस्तिष्क पर त्रिनेत्र एवं अर्द्धचन्द्र

का अंकन विशिष्टता प्रदान करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्द्ध चन्द्र तथा त्रिनेत्र अंकन की परम्परा भारतवर्ष के विभिनन भागों में गुप्तकाल से प्रारम्भ होकर वर्तमान काल तक प्रचलित है। मराठों के इष्ट देव गणपति हैं।

जनश्रुति के अनुसार यहां पर स्थित भवानी शंकर तोप में देवी भवानी की शक्ति व्याप्त थी। अतः इसे भवानी शंकर की संज्ञा दी गई। उत्तर–दक्षिण दिशा में अवस्थित इस तोप का मुख मकराकृत तथा पार्श्व भाग हस्ति–सदृश है। इसकी माप 5.00 मी0 x 0.60 मी0 तथा व्यास 0.52 मी0 है। तोप के मध्य भाग में अंकित 1781 ई0 के एक लेख में इस तोप का नाम भवानी शंकर, राजा उदित सिंह तथा गुरू जयराम का उल्लेख है।

मुगल स्थापत्य के अनुरूप तोरण द्वार पर मेहराव निर्मित कर चतुर्थ द्वार का समायोजन किया गया है। इसकी ड्योढ़ी में दोनों पार्श्वो में तीन–तीन द्वार वाले कम ऊँचाई के दालान हैं। इनकी छत पर पहुंचने हेतु जीने बने हैं। यह नौवत खाना है इस पर बैठकर मंगल वाद्य बजाये जाते थे। नौबत खाना राजपूतों के प्रसिद्ध स्थापत्य का विशिष्ठ अंग था। नौबत खाने में बजने वाले मंगल वाद्य राजा का यशोगान करते थे। ड्योढ़ी के पश्चात लघु आंगन है, इसमें दाहिनी ओर बड़ा दालान एवं बांयी ओर एक द्वार है, इस द्वार से प्रवेश करने के पश्चात झाँसी दुर्ग के सबसे बड़े मैदान में पहुंचते हैं, यह मौज महल के पूर्व में स्थित है। नौबत खाने तथा छोटे आंगन के दालान के द्वारों के मेहराब बीचों–बीच पूर्णतः शंक्वाकार अर्थात विशिष्ठ बुन्देला शैली के हैं। मराठों ने अपने आराध्य देव गणपति का मंदिर द्वार के बाहर निर्मित करवा दिया था। मार्ग के अन्य सभी द्वार मराठों ने दुर्ग विस्तार के साथ–साथ निर्मित करवाये थे।

मौज महल के पूर्व में झाँसी दुर्ग का सबसे बड़ा मैदान है। यह बंगरा पहाड़ी का पूर्वी ढलान था। इसको विशाल बुर्जों सहित ऊँची प्राचीर बनाकर सुरक्षित किया गया। यहाँ प्रसिद्ध तोप कड़क बिजली रखी हुई है। मैदान की दक्षिणी दीवार के सहारे बने दालान में चन्देल स्मारकों के स्थापत्यीय खण्डों को स्तम्भों के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

तोपों का दुनियां में एक विशेष इतिहास है। जयपुर के जयगढ़ में जयवाड़ नाम

की तोप विश्व प्रसिद्ध है जिसकी भव्यता देखने पर वीरों की क्षमताओं का पता चलता है। झाँसी के दुर्ग में कड़क बिजली तोप एक विशिष्ट स्थान रखती है। गंगाधर काल की यह तोप दुर्ग प्राचीर की पूर्वी दिशा में रखी है जो मुख्य द्वार से भीतर जाकर देखी जा सकती है। सिंह की मुखाकृति से शोभित यह तोप चलने पर बिजली सी कड़क उत्पन्न करती थी इसलिये सम्भवतः इसे यह नाम दिया गया। गुलाम गौस खां द्वारा संचालित यह तोप शत्रुओं को आतंकित करती थी। इसकी कुल माप 5.5 मी0 x 1.80 मी0 तथा व्यास 0.60 मी0 है।

बंगरा पहाड़ी के सम्पूर्ण उच्च क्षेत्र को विशाल बुर्जों सहित प्राचीर से आवेष्टित कर मध्य में मौज महल का निर्माण किया गया था। इस क्षेत्र में प्रवेश हेतु पूर्वी दिशा में मुगल शैली का विशाल द्वार (तोरण पर मेहराव का संयोजन) संयोजित है। द्वार के दोनों पार्श्वों में ऊपर से नीचे तक चार चौकोर संरचनाओं के मध्य एक एक लघु आला बनाया गया है। द्वार के ठीक ऊपर कमल पुष्प चित्रित है। उत्तर एवं पश्चिम दिशाओं में भी ठीक इसी प्रकार के एक–एक द्वार थे। उत्तर का द्वार बन्द है। इसे सम्भवतः मराठाकाल में बन्द करवा दिया गया था क्योंकि झाँसी दुर्ग की सुरक्षा हेतु मराठों द्वारा निर्मित दोहरी किले की दीवारें इस द्वार के ठीक सामने भी हैं। पश्चिम का द्वार अंग्रेजों द्वारा किये गये परिवर्तन के फलस्वरूप लघु द्वार में बदल गया है। इसकी ड्योढ़ी मेहराब विशिष्ट बुन्देला शैली की है। उत्तर एवं पश्चिम के इन द्वारों के निर्माण में चन्देल स्मारकों के स्थापत्यीय खण्डों को पुनः प्रयुक्त किया गया था। इन विशाल द्वारों के दोनों पार्श्वों में एक–एक विशाल बुर्ज बनाकर इन्हें सुरक्षित किया गया था। इस सुरक्षित क्षेत्र में महाराज वीरसिंह ने लाखौरी ईंटों से मौज महल का निर्माण करवाया था। वर्तमान में इसकी तीन मंजिलें अवशिष्ट हैं, इनमें मोटी दीवारों वाले अनेक कक्ष हैं। कहा जाता है कि यह पांच मंजिल का था, इसकी अन्य मंजिलें तथा भव्यता प्रदान करने वाले स्थापत्यीय अलंकरण 1857 ई0 की स्वतन्त्रता युद्ध में नष्ट हो गये थे। मौज महल के अतिरिक्त इस क्षेत्र में मराठाकालीन अन्य महल भी थे जो पूर्णतः नष्ट हो चुके हैं। उनके स्थापत्यीय खण्डों को अंग्रेजों ने अपने निर्माण कार्य में लगाया था। मौज महल के पश्चिम में अंग्रेजों द्वारा जल भण्डारण हेतु बनाये गये विशाल बन्द हौज में पाषाण के सुन्दर महराबों का प्रयोग किया गया था जो

मराठाकालीन है। मौज महल के समीप ही 1857 ई0 के स्वतन्त्रता संग्राम में वीरगति पाने वाले योद्धाओं, गुलाम गौस खां, खुदा वख्श तथा मोतीबाई की मजार हैं।

मौज महल क्षेत्र के पश्चिमी द्वार के आगे एक लघु मैदान है, यह बंगरा पहाड़ी का पश्चिमी ढलान था, इसे भी बुर्जो एवं प्राचीर से सुरक्षित किया गया है। इस मैदान की दक्षिणी दीवार में मौज महल क्षेत्र के प्रवेश हेतु एक विशाल द्वार है, इस द्वार के दोनों पार्श्वों में एक–एक दो मंजिली कोठरियां हैं जिनके निर्माण में प्रतिहार तथा चन्देलकालीन स्थापत्यीय खण्डों का पुनः प्रयोग किया गया था। प्रतीत होता है कि महाराजा वीरसिंह द्वारा बनवाये गये मौज महल का यह दक्षिणी बाह्य द्वार था और पहरेदारों के निवास हेतु इन कोठरियों का निर्माण किया गया था। वर्तमान में इस द्वार के दक्षिण में भूमि अत्यन्त नीची है, अतः मार्ग अवरुद्ध है। इसके समीप मराठों द्वारा निर्मित लघु द्वार है। इसके आगे खरंजे वाला लम्बा मार्ग है जो क्रमशः ढालू है, इस मार्ग से चलकर शंकरगढ़ क्षेत्र में पहुंचते हैं।

शंकरगढ़, झाँसी दुर्ग के पश्चिमी कोंण पर स्थित है। यहां का कुआं दुर्ग की जलापूर्ति का एकमात्र मुख्य साधन था। प्रथम मराठा शासक नारोशंकर ने इस मुख्य जलश्रोत एवं इसके समीपवर्ती क्षेत्र को बुर्जोवाली दोहरी दीवार से घेर कर झाँसी दुर्ग का हिस्सा बना लिया था। इसके बाहर भी पारिखा एवं प्राचीर से सुरक्षित बुर्ज का निर्माण सुरक्षा हेतु किया गया था। यहां गर्भ गृह तथा अर्द्धमण्डप से समायोजित लघु मन्दिर हैं। मन्दिर का गर्भगृह बुन्देला शैली के चपटे गुम्बज से अलंकृत है। मुख्य गुम्बज के चारों कोनों पर एक–एक लघु मन्दिर है एवं दो लघु मन्दिरों के मध्य धनुषाकार वितानवाले चौड़े द्वारों की संरचना कर मन्दिर को भव्यता एवं सौन्दर्य प्रदान किया गया है। गर्भगृह में काले पाषाण का भव्य शिवलिंग है। इस क्षेत्र का निर्माण नारोशंकर ने करवाया था तथा यहां शिवमन्दिर भी है। अतः यह क्षेत्र शंकरगढ़ कहलाता है।

झाँसी दुर्ग के दक्षिण में भी दोहरी सुरक्षा प्राचीर एवं पारिखा थी। वह प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में नष्ट हो गई थी।

इतिहास में स्थापत्यकला का विकास मौर्यवंश, पल्लव वंश, चालुक्य वंश, तथा मध्य

भारत में चंदेला, बुन्देला तथा मुगलों के द्वारा किया गया। मुगलों की और बुन्देलों की स्थापत्यकला कई बिन्दुओं और तथ्यों में समानता रखती है। बुन्देलों की स्थापत्यकला बुन्देलखण्ड के बहुत से दुर्ग एवं गढ़ियों में देखने को मिलती है। स्थापत्यकला समय–समय पर परिवर्तनशील होती रहती है। विभिन्न प्रकार के दक्षिण भारत के शासकों, उत्तर भारत के शासकों तथा पूर्व के शासकों ने स्थापत्यकला का समायोजन और विस्तारीकरण किया है।

स्थापत्यकला ऐतिहासिक, पुरातात्विक, वास्तुकला शास्त्र सम्बन्धी तथा भौगोलिक तथ्यों का प्रमाणीकरण और मानकीकरण करती है। स्थापत्यकला के द्वारा अतीत के इतिहास का मूल्यांकन कर उसकी जाँच कर सकते हैं कि किस शासक का उसको विकसति करने में कितना योगदान रहा ? स्थापत्यकला अपने आप में राजसी बिन्दुओं को प्रोत्साहित एवं प्रतीकात्मक करती है।

(ब) झाँसी दुर्ग का इतिहास

बुन्देलखण्ड की पुण्य एवं उज्ज्वल रत्नगर्भा वसुन्धरा ने अपनी कोख से अनेकों वीरों एवं दानी पुण्य आत्माओं को जन्म दिया है जिनके रक्त से इस धरती का कण–कण सना हुआ है। ऐसे वीर और दानी पुण्य आत्माओं में महाराजा वीरसिंह जू देव का नाम उल्लेखनीय है। महाराज वीरसिंह जू देव ने अपने राजत्वकाल में अनेकों उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय कार्य किये। उनके प्रशंसनीय कार्यों में एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी था कि एक शुभ मुहूर्त में 52 किले, 52 महल और 52 बावड़ी बनने के लिये नीवें खोदी गई थीं। झाँसी का दुर्ग भी महाराज की ऐतिहासिक प्रसिद्ध कृति है। मध्य रेलवे का जंकशन झाँसी है और झाँसी का प्रमुख ऐतिहासिक स्थल झाँसी दुर्ग है।

झाँसी दुर्ग का महारानी लक्ष्मीबाई के शौर्य व पराक्रम के साथ सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। इसलिये उनका नाम उनकी अमरता के साथ झाँसी का दुर्ग विश्व के इतिहास में प्रसिद्ध व अमर है अन्यथा वह भी अन्य उपेक्षित व धूमिल दुर्गो की तरह इतिहास के पन्नों में उपेक्षित व धूमिल रहा होता।

झाँसी दुर्ग का निर्माण 1610 ई0पू0 में ओरछा के महाराज वीरसिंह जू देव के द्वारा हुआ था। इस दुर्ग में अधिकांश प्राचीन परम्पराओं की इमारतें और मूर्तियों के अवशेष अभी भी विद्यमान

हैं। गणेश मन्दिर, बारादरी, शहर दरवाजा, गुलाम गौस खां, खुदावख्श, तथा मोतीबाई की कब्रें मौजूद है। ये सभी रानी लक्ष्मीबाई के सबसे बफादार साथी थे। गुलाम गौस खां तथा खुदावख्श रानी की सेना के सबसे योग्य, कुशल और दक्ष तोपची थे। पंच महल मूल्यतः पंचतलीय भवन है जो राजा वीरसिंह जू देव द्वारा निर्मित कराया गया था।

शंकरगढ़ रानी लक्ष्मीबाई के समय का है जहां पर रानी प्रतिदिन पूजा किया करती थीं। मराठा व बुन्देला स्थापत्य शैली के मिश्रण का यह सुन्दर नमूना मराठा शासक नारोशंकर के काल में निर्मित हुआ है। इसमें विभिन्न उत्सव व त्योहार मनाये जाते थे और रानी भी अपनी सखियों के साथ उसमें भाग लेती थीं। आज भी यह मन्दिर श्रद्धालुओं के आकर्षण का केन्द्र है। मुख्य शिवलिंग ग्रेनाइट पत्थर का बना है।

झाँसी दुर्ग का इतिहास भारत के अन्य दुर्गों के इतिहास से भिन्न है जैसे– चन्देरी दुर्ग, अजयगढ़, देवगढ़, ओरछा दुर्ग तथा कालिंजर दुर्ग इत्यादि। झाँसी दुर्ग का सम्बन्ध राजनीतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा पुरातात्विक सम्बन्धों से है। बुन्देलाओं द्वारा यह दुर्ग निर्मित किया गया किन्तु इसका सही उपयोग मराठाओं और ब्रिटिश सरकार ने किया। बुन्देलाओं द्वारा निर्माण हो जाने के पश्चात झाँसी दुर्ग मराठाओं के सम्पर्क में आया। इस किले में बुन्देला और मराठाओं का इतिहास, संस्कृति और सभ्यता छिपी हुई है। मराठाओं ने झाँसी दुर्ग को अपनी कर्मभूमि बनाया जिसके द्वारा उन्होंने दूर–दूर तक अपनी शक्ति के द्वारा अन्य राज्यों पर भी नियन्त्रण किया।

"झाँसी को मराठा राज्य की राजधानी बनाया गया। नारोशंकर की महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुये पेशवा ने उन्हें यहां का सूवेदार नियुक्त किया। नारोशंकर झाँसी राज्य का संस्थापक था। उसने सामरिक महत्व के झाँसी दुर्ग का विस्तार किया। समीप की वस्ती को नियोजित कर नगर का स्वरूप प्रदान किया एवं सुरक्षा हेतु उसके चारों ओर नगर कोट का निर्माण कराया तथा नगर के दस दरवाजे बनाये गये। नगर नियोजन के अतिरिक्त उसने दतिया राज्य से दमोह परगना छीनकर झाँसी राज्य का विस्तार किया। नारोशंकर ने झाँसी को मराठा बस्ती में

परिवर्तित करने के साथ ही साथ गुसाईयों को भी भूमिदान तथा अन्य सुविधायें देकर संतुष्ट किया[1]"

नारोशंकर, रघुनाथ राय द्वितीय ने झाँसी के दुर्ग एवं नगर का नियोजनीकरण एवं विस्तारीकरण किया। रघुनाथ राय द्वितीय ने झाँसी को सुन्दर व सुसज्जित बनाने का प्रयास किया तथा विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक और राजनीतिक संकटों से झाँसी नगर की रक्षा की।

"31 दिसम्बर,1802 में वैसीन में ईस्ट इण्डिया कम्पनी एवं वाजीराव के मध्य सन्धि हुई, इसके पूरक सन्धि पर 16 दिसम्बर,1803 ई0 में पूना में हस्ताक्षर हुये। इस सन्धि के फलस्वरूप ईस्ट इण्डिया कम्पनी को पेशवा के राजनीतिक उत्तराधिकारी के रूप में तथा मराठा साम्राज्य के शासन सूत्र प्राप्त हो गये थे।[2]"

रघुनाथ राव की शादी बिठूर में हुयी थी। 1851 ई0 में रानी लक्ष्मीबाई ने पुत्र को जन्म दिया। झाँसी दुर्ग के लोग एवं प्रजा आनन्दोत्सव में मगन हो गई थी। झाँसी दुर्ग, पुत्र की प्राप्ति पर सजाया गया और उसे अलंकृत किया गया किन्तु तीन माह पश्चात ही नवजात शिशु की मृत्यु हो गई जिससे समस्त दुर्ग की प्रजा शोकाकुल हो गई। पुत्र शोक से झाँसी के राजा गंगाधर राव को गहरा आघात हुआ तथा झाँसी दुर्ग कुछ समय के लिये अंधकार में डूब गया। गंगाधर राव भी अस्वस्थ हो गये और उनकी मृत्यु हो गई। झाँसी दुर्ग ने बड़े उतार–चढ़ाव देखे। इस किले का सम्बन्ध दो वंशों से है– बुन्देला और मराठा। बुन्देलाओं ने दुर्ग निर्मित कराया परन्तु वास्तविक इतिहास तो मराठाओं ने बनाया।

सर सैयद खां के अनुसार मनुष्य द्वारा निर्मित किये गये महल, अट्टालिकायें, किले, दुर्ग एवं गढ़ियां बड़े चाव के साथ बनवाये गये परन्तु समय परिवर्तनशील होने के कारण ऐतिहासिक इमारतें खण्डहर होती चली गई और उनका वर्चस्व भी धीर धीरे मिटता चला गया क्योंकि उनकी कोई देखभाल नहीं रही। प्राकृतिक परिवर्तन ने उनके सुन्दर स्वरूप को कुरूप बना दिया।

---

1. "झाँसी" (इतिवृत्त, स्थापत्य कला, सांस्कृतिकी), डा0 रुद्र किशोर पाण्डेय, पृष्ठ सं0 8 आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1990।

2. वही पृष्ठ 10।

झाँसी का दुर्ग अन्य दुर्गों की अपेक्षा, जैसे– फतेहपुर सीकरी ,चित्तौरगढ, ग्वालियर ,भरतपुर से बहुत छोटा है परन्तु ऐतिहासिक, राजनैतिक और पुरातात्विक दृष्टि से देखा जाये तो झाँसी दुर्ग अन्य दुर्गों की अपेक्षा श्रेष्ठ एवं उच्च है। झाँसी दुर्ग का सम्बन्ध विशेषतौर से मराठा वंश की कुलवधू रानी लक्ष्मीबाई से है। रानी लक्ष्मीबाई एक उत्कृष्ट विदुषी, योद्धा तथा विचारक थीं परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समक्ष झाँसी रानी का अस्तित्व धीर–धीरे कम हो गया और पूरे साम्राज्य पर ब्रिटिश हुकूमत ने अपना कब्जा कर लिया।

झाँसी की रानी ने अंग्रेजों से बड़ी वीरता व दृढ़ता पूर्वक संघर्ष किया। रानी झाँसी ने कभी कोई अमानसिक कार्य नहीं किया जिससे कि मराठावंश कलंकित व कलुषित होता। उनके विचारों में त्याग और झाँसी दुर्ग की रक्षा करना प्रमुख उद्देश्य था। झाँसी रानी ने अपने सहयोगी कान्तिकारियों को सही एवं नियोजित तरीके से मार्गदर्शन भी दिया था।

" झाँसी के विभिन्न जाति के पंचों व गणमान्य लोगों ने समर्थन देने का आश्वासन दिया। इस प्रतिनिधि मण्डल में 36 जाति के पंच उपस्थित थे। कवि मदनेश ने " बाई लक्ष्मी बाई रासों" में लिखा है–

जब सूनी झाँसी लखी एन ,जुर सचिव मंत्र कर गहे बैन।

श्री लक्ष्मीबाई करे राज ,सबको पूरन होय काज ।। जब आप साहब झण्डु आये चौधरी श्याम बगसी बुलाए नारायण राव तहां बेठै , बकां दीवान तहां बैठे, जो चुन्नी और जवाहर हे गनपति गिरि मु0 साहब हे, रनधीर सिंह नाजर जू आये , बस्ती के पंचलीने बुलाए"[1]

झाँसी के प्रमुख आपा साहब झण्डु , श्याम चौधरी ,नारायण राव ,बंकादीवान ,जवाहर,गनपति गिरि, मुन्ना साहब, रनधीरसिंह,नाजर, आदि सभी जातियों के पंचों ने रानी लक्ष्मीबाई का साहस स्वीकार कर युद्ध की तैयारियॉ प्रारम्भ कर दी थीं। झाँसी के दुर्ग में कान्तिकारियों का जमावड़ा बन गया था। इस युद्ध को वास्तविक रूप देने के लिए अजीम उल्ला खॅा और रंगे बापू प्रमुख

---

1. "जिला विकास पुस्तिका झाँसी, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झाँसी, उ0 प्र0 2002 पेज 10 ।

कान्तिकारी थे। झाँसी के दुर्ग में अंग्रेजों के खिलाफ रणनीतियाँ बनायी गई थीं। कई प्रकार की घोषणायें की गई परन्तु कुछ सफल कुछ विफल हुई। कान्तिकारियों ने झाँसी शहर के प्रत्येक घर मे जाकर लोगों में जागरूकता पैदा की तथा इसे वास्तविक रूप देने का प्रयास किया। अजीम उल्ला और नाना साहब का काफी अधिक योगदान रहा ।

रसेल अपनी डायरी में लिखते हैं ''नाना और उसके सहायक अजीम उल्ला विद्रोह होने के पूर्व यात्रा के बहाने ट्रंक रोड के अधिकांश सैनिक थानों को भेंट देकर लौट आए थे परन्तु निश्चित तिथि के पूर्व ही 29 मार्च 1857 को विद्रोह हुआ। 8 अप्रैल को महान कान्ति योद्धा मंगल पाण्डे को फाँसी के फन्दे पर झुला दिया गया । अब क्या था सम्पूर्ण भारत में क्रान्ति की लपटें फैल गई। झाँसी ,बसकण्डा,जाखौर ,ढाका, चटगॉव, खासी और जयन्ती पहाड़ियों में विद्रोह फूट पड़ा। अवध, रूहेलखण्ड, आगरा, मेरठ डिवीजन और पश्चिमी बिहार में जनता ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ उठ खड़ी हुई।''[1]

''फिर भला झाँसी इससे कैसी बच सकती थी। रानीलक्ष्मीबाई के नेतृत्व में कुँवर लक्ष्मण राव और खुदाबक्श ने भी झाँसी छावनी में हिन्दुस्तानी सिपाहियों से सम्बन्ध जोड़ लिए थे। कानपुर के साथी भी झाँसी के युद्ध में सम्मिलित हो गए थे। यह विद्रोह अंग्रेज छावनी स्टार फोर्ट से प्रारम्भ हुआ। इस छावनी में स्वदेशी पलटन की 12वीं रेजीमेन्ट और 14 अश्वारोही पलटन तथा एक तोपखाना था। इस सेना का मुख्य कमिश्नर स्कीन तथा डिप्टी कमिश्नर गार्डन था। सिपाहियों ने अपने हवलदार के आदेश पर आकमण कर स्टार फोर्ट एवं शस्त्रागार पर अपना अधिकार जमा लिया। यद्यपि इस समय अंग्रेज किलों की दीवारों से विद्रोहियों से युद्ध की तैयारी कर रहे थे। इसी बीच डल्लप और एनशाइन टेलर को भी मौत के घाट उतार दिया।''[2]

अंग्रेजी हुकूमत और 1857 के क्रान्तिकारी विद्रोहियों के बीच में एक सामन्जस्य और तालमेल की भावना का विरोध हो रहा था। रानीलक्ष्मीबाई ने प्रत्येक घटना और 1857के

---

1. ''जिला विकास पुस्तिका झाँसी, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झाँसी, उ0 प्र0 2002 पेज 11 ।

2. वही।

क्रान्तिकारियों की गतिविधियों पर अपनी दृष्टि लगा रखी थी। झाँसी की रानी 1857 के विद्रोह की मुख्य नायिका थी। रानी लक्ष्मीबाई का योगदान 1857 के विद्रोह में अनुपमीय और अतुलनीय रहा । रानी लक्ष्मीबाई विशेष तर्कशक्ति रखने वाली ,तीक्ष्ण एवं कुशाग्र बुद्धि वाली बुन्देलखण्ड के हृदय झाँसी की थी परन्तु 1857 के विद्रोह ने बुन्देलखण्ड में ही नही, अपितु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उन्होने ख्याति और प्रसिद्धि प्राप्त की ।

झाँसी के दुर्ग के सम्बन्ध में एक कहावत है– खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का और अमल रानीलक्ष्मीबाई का । 1857 के विद्रोह का मुख्य ह्यूरोज था जिसका कि आमना–सामना झाँसी की रानी से हुआ था। झाँसी की रानी के साथ राजा मर्दनसिंह और शिवपुरी के तात्याटोपे तथा उनके साथी खुदाबक्श , गुलाम गौस खाँ और मोतीबाई जैसी स्वतंत्रता सेनानियों ने रानी का पूर्ण समर्थन किया परन्तु परिस्थितियाँ रानीझाँसी के विरूद्ध बनती चली गंई और रानीझाँसी अग्रेजों के आक्रमण से अधोन्नति की ओर चली जा रही थी।

रानी के साथ दो प्रकार के लोग थे– विश्वसनीय और अविश्वसनीय क्योंकि युद्ध करते समय षड़यंत्रकारियों, साजिश रचने वाले, विश्वातघात करने वाले रानी के साथ न होकर अग्रेजों के साथ मिल गए थे। इस प्रकार के लोगों ने रानी झाँसी को धोखा देकर उनको परास्त करने का प्रयास किया था परन्तु उसी वक्त रानी झाँसी बौखला उठीं और 15 चुने हुए सैनिकों के साथ किले के नीचे उतर कर अंग्रेजों पर टूट पड़ी।

वीर सावरकर के शब्दों में रानी लक्ष्मीबाई अपना लक्ष्य पूरा कर गंईं, एक महिला जिसने जीवन के 23 वसंत देखे थे, उनके हृदय में देशभक्ति रत्नदीप की भाँति प्रकाशवान हो रही थी। अपने देश भारत पर उसे गर्व था। युद्ध कौशल में वे अद्वितीय थीं। विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश होगा जो ऐसी देवी को अपनी कन्या और रानी कहने का अधिकारी न हो। समस्त एशिया, यूरोप और संयुक्त राज्य अमरीका जैसे देशों को ऐसी महिला का जन्म लेना इतिहास के पन्नों पर स्वर्णिम छाप और अलंकरणता को प्रदर्शित करता है।

डा0 वृन्दावन लाल वर्मा के अनुसार– रानी लक्ष्मीबाई झाँसी के राजा गंगाधर राव

की विधवा पत्नी थीं। स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिये स्त्रियों की सेना संगठित करने वाली रानी थीं तथा हिन्दू मुसलमान में कौमी एकता स्थापित करने वाली रानी थीं।

रानी लक्ष्मीबाई को दीवान नत्थे खां ने काफी सहयोग दिया। नत्थे खां ने झाँसी युद्ध में अपने विशेष वीरत्व को प्रदर्शित किया। रानी झाँसी में सैन्य संगठित करने की कला थी। कायरता और कमजोरी उनके अन्तरमन में बिल्कुल नहीं थी, जो भी निर्णय लेती थीं उस निर्णय में पारदर्शिता थी। युद्ध के मैदान में वह द्रुतगति से युद्ध लड़ती थीं तथा उनके सहयोगी भी झाँसी की रानी को सफल और असफल देखते हुये विरह और वियोग की मनोदशा में उलझ जाते थे। झाँसी की रानी के साथ झाँसी दुर्ग के बहुत से सैनिकों का सैलाव भी साथ में था।

इतिहास झाँसी दुर्ग का और रानी का अपने आप में क्लिष्ट और परिशिष्ट है। रानी झाँसी का चरित्र परिशुद्ध और परोपकारी था। उन्होंने अपने जीवन को एक उच्चकोटि के क्रान्तिकारी के रूप में व्यतीत किया। उनकी तलवार और उनका नेतृत्व एक नाट्यशाला की सुन्दर गायिका और नायिका से कम नहीं थी। मराठा वंश में जितना सम्मान झाँसी रानी को दिया जाता है उतना सम्मान अन्य वंशों के शासकों को नहीं दिया जाता है चाहे वो इन्दौर के होलकर, बड़ोदा के गायकबाड़ और ग्वालियर के सिन्धिया क्यों न हों। रानी झाँसी के बलिदान और कुर्वानी के लिये शब्दकोष में विशेषण और क्रिया विशेषणों का अभाव है जिनके द्वारा सैन्य शास्त्री, पुरातत्वविद्, शिक्षाशास्त्री, विचारक तथा दार्शनिक उनके ऋण को पूरा कर सकें। वर्तमान में मात्र झाँसी का दुर्ग और उससे जुड़ी रानी अतीत के इतिहास का प्रतिनिधत्व कर रहीं हैं।

(स) झाँसी दुर्ग का सैनिक महत्व

"रानी लक्ष्मीबाई के नेतृत्व में झण्डु कुंवर लक्ष्मण राव तथा खुदावख्श ने झाँसी छावनी में भी हिन्दुस्तानी सिपाहियों से सम्बन्ध जोड़ लिये थे। कानपुर के साथ ही झाँसी सम्मिलित हो गई। यह विद्रोह अंग्रेज छावनी, स्टार फोर्ट से प्रारम्भ हुआ। इस छावनी में स्वदेशी पलटन की 12वीं

रेजीमेन्ट और 14 अश्वारोही पलटन तथा एक तोपखाना था। इस सेना का मुख्य कमिश्नर स्कीन तथा डिप्टी कमिश्नर गार्डन था। सिपाहियों ने अपने हवलदार के आदेश पर आक्रमण कर स्टार फोर्ट एवं शस्त्रागार पर अपना अधिकार जमा लिया। यद्यपि इस समय अंग्रेज किलों की दीवारों से विद्रोहियों से युद्ध की तैयारी कर रहे थे। इसी बीच डल्लप और एनशाइन टेलर को भी मौत के घाट उतार दिया।" 7जून 1857 को विद्रोहियों ने रिसालदार कालेखां और तहसीलदार मु0 हुसैन के नेतृत्व में दुर्ग पर स्वतन्त्रता की ध्वजा फहरा दी। झाँसी के प्रतिष्ठित नागरिक मुहम्मद के आश्वासन पर यदि अंग्रेज शरणागत हो जायें तो उन्हें प्राणदान दे दिया जायेगा। अंग्रेजों ने दुर्ग के किबाड़ खोल दिये। जिस समय अंग्रेज किले के बाहर जुलूस बनाकर ले जाये जा रहे थे झाँसी का मुख्य कमिश्नर स्कीन भी उनके साथ था। रिसालदार कालेखां के आदेश से झोकनबाग (जोगनबाग) के पास उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया था जिसमें 75 पुरुष, 12 महिला, व 23 बच्चे थे। इस प्रकार 4 जून से क्रान्ति के विस्फोट ने प्लासी के युद्ध का बदला लेकर झाँसी से अग्रेजी हुकूमत को नष्ट कर झाँसी का राज्य वापस लेकर रानी लक्ष्मीबाई को स्वतन्त्र सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया था।"[1]

अंग्रेज सरकार झाँसी की प्रत्येक घटना और रानी की सभी गतिविधियों पर पूरी नजर गड़ाये हुये थी। बुन्देलखण्ड में किले अंग्रेजों के गुप्तचर एलिस और जबलपुर के कमिश्नर स्किन को पूरा व्योरा भेज रहे थे। ह्यूरोज झाँसी के बिद्रोह को दबाने के लिये उतावला हो रहा था। उसने मध्य भारत की ओर से झाँसी की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। वह जबलपुर से सागर तथा राहतगढ़ को फतह करता हुआ ललितपुर की ओर बढ़ा। कानपुर के राजा मर्दन सिंह जो, रानी लक्ष्मीबाई को अपनी बहन मानते थे, उसे झाँसी की ओर बढ़ने से रोकने के लिये कड़ा युद्ध करना पड़ा परन्तु अंग्रेज फौज को वह आगे बढ़ने से नहीं रोक पाया।

झाँसी दुर्ग का सैनिक महत्व ऐतिहासिक ही नहीं बल्कि राजनीतिक भी है। सर ह्यूरोज की सोच और रानी झाँसी की सोच में काफी भिन्नता थी। सर ह्यूरोज ने अपना निशाना झाँसी

---

1. "जिला विकास पुस्तिका झाँसी, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झाँसी, उ0 प्र0 2002 पेज 11 ।

का दुर्ग बना रखा था। झाँसी की रानी के साथ उनके सहयोगी थे एवं उनके अतिरिक्त बानपुर के राजा मर्दन सिंह ने भी रानी झाँसी को अपना काफी योगदान एवं सकारात्मक सहयोग दिया। रानी झाँसी के सामने कई प्रकार की विषम एवं विकट परिस्थितियां थीं। रानी झाँसी को अंग्रेजों का सामना करने के अतिरिक्त झाँसी निवासियों एवं झाँसी दुर्ग की रक्षा करना थी। रानी के सैनिक नकारात्मक एवं सकारात्मक दृष्टि से उनका सहयोग कर रहे थे। कुछ सैनिक झाँसी रानी के पक्ष में थे कुछ विपक्ष में।

"अंग्रेजी फौज ने 21 मार्च 1858 को झाँसी घेर लिया और 22 मार्च 1858 को प्रातः काल झाँसी के कैमासन पहाड़ी के मैदान में अपने खम्भे गाड़ लिये, खबर पाते ही रानी ने सागर खिड़की, ओरछा गेट और सैंयर गेट पर विशेष इंतजाम किया। दीवान जवाहर सिंह के हाथ में सम्पूर्ण फाटकों की सुरक्षा दे दी। दुर्ग की सारी बुर्जों पर तोपें लगा दी गईं, दक्षिण बुर्ज की तोपें गुलाम गौस खां, पूर्व और उत्तर की तोपों का भार बख्शी और पश्चिम की तोपों का संचालन रघुनाथ सिंह को सौंप दिया गया।"[1]

रानी झाँसी सैन्य गतिविधियों का संचालन करने में दक्ष थीं। उनकी कुशलता एवं भव्यता का परिचय सैन्य संचालन एवं उनकी महात्वाकांक्षा से प्राप्त किया जा सकता है। रानी झाँसी का व्यक्तित्व और कृतित्व अन्य रानियों की अपेक्षा श्रेष्ठ था। हिन्दुस्तान में बहुत सी रानियाँ हुईं जैसे कि नूरजहां, चाँदबीबी, रानी पद्मावती, रानी अहिल्याबाई, रानी दुर्गावती, परन्तु इन सभी में सर्वश्रेष्ठ रानी झाँसी ही थीं। रानी झाँसी वास्तव में एक अच्छी प्रशंसिका और विदुषी के साथ साथ सैन्य शक्ति का ज्ञान रखती थीं। रानी झाँसी इतिहास में एक महान योद्धा, विदुषी, सैन्य संचालनकर्ता तथा एक सुदृढ़ और सुयोग्य परामर्शदात्री भी थीं।

"23 मार्च,1858 से 3 अप्रैल,1858 तक गहरा संग्राम हुआ जिसमें रानी ने ह्यूरोज के छक्के छुड़ा दिये। 25 तारीख से दोनों ओर से भयंकर मुठभेड़ शुरू हुई। अंग्रेजी तोपें दिनरात आग बरसा रहीं थीं। रात को किले और शहर में गोले पड़ने लगे, बड़ा भयंकर दृश्य था। गुलाम गौस खां

---

1. "जिला विकास पुस्तिका झाँसी, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झाँसी, उ0 प्र0 2002 पेज 12 ।

एक बहादुर तोपची था जिसने अपने तोप के गोलों के द्वारा अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। रानी झाँसी को गुलाम गौस खां के तोप चलाने पर बड़ा गर्व और गौरव था। सभी दरवाजों पर गोले चलाये जा रहे थे जिससे अंग्रेजों में दहशत और भय व्याप्त था।"[1]

"रानी झाँसी ने तोपचियों को इनाम में चाँदी के कड़े, सोने के कड़े और विभिन्न प्रकार से अपनी धीर और गम्भीर वाणी से उनको प्रोत्साहित किया। अंग्रेजों पर गोलियों की बौछार होने लगी तथा रानी के सैनिकों के हरपल "हर हर महादेव", मारो फिरंगियों को गर्जनाओं से आसमान गूँज रहा था। रानी झाँसी अपने सैनिकों को धैर्य, सांत्वना, और प्रोत्साहित कर उनको युद्ध को कूच करने केलिये संचालन कर रहीं थीं। लेफ्टि0 डिक और लेफ्टिनेंट मैकलेजान सीढ़ियों पर चढ़कर गोरे सिपाहियों को आगे बढ़ो के आदेश दे रहे थे। उन्हें रानी की गोलियों ने निशाना बनाया और झाँसी पर आक्रमण करने वाले इन गोरों की लाशें नीचे बिछ गईं। लेफ्टिनेंट बोनस और लेफ्टिनेंट फोक्स आगे की ओर चढ़ रहे थे लेकिन सैनिकों की गोलियों के सामने वो भी धराशायी हो गये। गोरी फौज झाँसी की फौज के समक्ष नहीं टिक पायी परन्तु घर के भेदियों वीरअली, अलीबहादुर और दूल्हा जू की साजिशों के विश्वासघात के कारण अंग्रेजी फौज ओरछा गेट से नगर में प्रवेश कर गई।"[2]

"29 मार्च 1858 को अंग्रेजी सेना झाँसी दुर्ग के एक बुर्ज को आंशिक क्षति पहुंचाने में सफल हुई, परन्तु रात्रि में ही झाँसी वालों ने बुर्ज का पुनर्निर्माण कर दिया। झाँसी तोपखाने ने दूसरे दिन अंग्रेजों पर शक्तिशाली गोले बरसाये, गोले डेढ़ मन (60 किलो) वजन के थे। रानी के निर्देशन में निर्मित झाँसी तोपखाने के गोले अंग्रेजी सेना के गोलों से अधिक विध्वंसक सिद्ध हो रहे थे। झाँसी की तोपों और तोपचियों के कौशल की प्रशंसा अंग्रेजों ने भी की थी। प्रसिद्ध तोप कड़क बिजली की मार से दुश्मन भयभीत थे जो उन्हें एक क्षण भी विश्राम नहीं लेने देते थे। झाँसी को तोपों से छूटते गोलों के कारण नगर एवं दुर्ग अग्निपुंज के सदृश प्रतीत हो रहा था। सेनापति ह्यूरोज की सेना बारूद,गोलों एवं तोपों की कमी महसूस कर रही थी।"[3]

---

1. "जिला विकास पुस्तिका झाँसी, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झाँसी, उ0 प्र0 2002 पेज 12 ।

2. वही, पृष्ठ 12, 13 ।

3. "झाँसी" (इतिवृत्त, स्थापत्य कला, सांस्कृतिकी), डा0 रुद्र किशोर पाण्डेय, पृष्ठ सं0 23 आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1990।

"सेंट्रल इण्डिया फील्ड फोर्स के सेनापति सरदार ह्यूरोज के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना झाँसी के द्वार पर आ पहुंची थी। ह्यूरोज ने समीप से नगर का भौगोलिक निरीक्षण कर निर्णय लिया तथा घेराबन्दी करके नगर पर आधिपत्य स्थापित किया। झाँसी की रक्षा हेतु 10000 राजपूत मराठों तथा विलायतियों के अतिरिक्त 400 अश्वरोहियों सहित 1500 सैनिक, 113 वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई के नेतृत्व में सन्नद्ध खड़े थे। झाँसी की सेना के पास भवानीशंकर कड़क बिजली जैसी विशाल तोपों के अतिरिक्त 40 अन्य बड़ी छोटी तोपें भी थीं।[1]" ह्यूरोज का नेतृत्व और रानी लक्ष्मीबाई का नेतृत्व ऐतिहासिक सैनिक और राजनैतिक दृष्टि से मूल्यांकन करने योग्य है परन्तु रानी लक्ष्मीबाई का सैन्य संचालन और सैन्य गतिविधियाँ अंग्रेजी फौज से और ह्यूरोज की सोच से अलग थीं।

"तात्याटोपे रानी झाँसी के एक विश्वसनीय सहयोगी थे। इन्होंने बेतवा के तट पर शिविर लगाया और पहाड़ी पर आग जला कर रानी को अपने आने का संकेत दिया। सर ह्यूरोज विचित्र स्थिति में फँस गया परन्तु इसने अपना धैर्य नहीं छोड़ा और 1500 सौ सैनिकों को दो भागों में विभाजित कर दिया। एक भाग का नेतृत्व ब्रिगेडियर स्टोवर्ड को सौंपा तथा दूसरे भाग का संचालन वह स्वयं कर रहा था। अंग्रेजों एवं तात्याटोपे के मध्य युद्ध हुआ।[2]"

रानी ने, अपने सेना नायकों एवं सैनिकों को, जो तात्या की हार से हतोत्साहित थे, सम्बोधित करते हुये कहा कि संघर्ष जारी रखेंगे चाहे कहीं से सहायता प्राप्त हो अथवा न हो। रानी ने स्वर्ण आभूषण योद्धाओं को पुरस्कार रूप में प्रदान कर उन्हें सम्मानित किया। वे प्रत्येक मोर्चे का स्वयं निरीक्षण कर रही थीं और सैनिकों को उत्साहित कर रही थीं।

झाँसी दुर्ग तथा नगर का पश्चिमी तथा उत्तरी भाग रानी के अधिकार में था। रानी लक्ष्मीबाई ने पुरुष भेष में स्वयं इस मोर्चे में शत्रुओं से वीरता पूर्वक युद्ध किया तथा रानी दोनों हाथों से तलवार चलाकर दुश्मन को काट काट कर गिरा रही थीं। रानी झाँसी ने विषमता की स्थिति का सामना किया। 3 अप्रैल 1858 को संध्याकाल तक महल और आधा नगर अंग्रेजों के अधिकार में आ

---

1. झाँसी (इतिकृत्व, स्थापत्यकला, सांस्कृतिकी, डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय, पृष्ठ 22, आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0

2. वही पृष्ठ 24

गया था। अंग्रेज झाँसी के झोकन बाग में हुये नर संहार का प्रतिशोध लेना चाहते थे। उन्होंने नगर में कत्लेआम किया।

"रानी ने दुर्ग को छोड़कर अन्य स्थान से युद्ध करने की योजना बनाई, उन्होंने अंग्रेजी सेना की घेराबन्दी तोड़कर कालपी जाना तथा वहां पेशवाओं से मिलने की योजना बनाई। लगभग 300 चुने सवार अपने साथ लिये। पैरों में पाजामा, बदन पर बख्तर, कमर में जांघिया और पीठ के पीछे रेशमी वस्त्र में बंधा हुआ दत्तक पुत्र दामोदर तथा खानदानी घोड़े पर सवार होकर अंग्रेजी फौज का सामना करती हुई आगे की ओर बढ़ती चली गई। वह वायु वेग की तरह अंग्रेजी फौज की घेराबन्दी तोड़कर निकल गई। रानी 4 अप्रैल 1858 को झाँसी दुर्ग को छोड़ भाड़ेंर मार्ग से कालपी रवाना हुईं। रानी के साथ उनके पिता मोरोपंत भी धन से लदा हुआ हाथी लेकर जा रहे थे। सर रॉवर्ट ने मोरोपंत को पकड़ कर फांसी पर लटका दिया तथा रानी ने कालपी की ओर घोड़ा दौडाया और 102 मील का सफर तय किया।"[1]

"ह्यूरोज भी रानी का पीछा करता हुआ भारी सेना लेकर कालपी पहुंच गया। उसका सामना करने के लिये पेशवाओं की सेना आगे बढ़ी परन्तु वह मुकाबला न कर सकी। यह देख रानी घोड़े पर सवार हो आगे बढ़ीं उसके पीछे उसका केसरी घुड़दल भी पीछे चल पड़ा। तेज आक्रमण होने से अंग्रेज सम्भल न सके उसका तोपखाना आग उगल रहा था। रानी ने तोपखाने पर हमला बोल दिया और सैनिक काट डाले, इसी वक्त रानी आगे ग्वालियर की ओर बढ़ीं।"[2]

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई अजेय सेनानी थीं। उसने स्वतन्त्रता संग्राम में अपना जीवन अर्पण कर दिया। रानी झाँसी के सम्बन्ध सिंधिया वंश से मधुर नहीं थे। साहित्यकारों व इतिहासकारों के अनुसार सिंधियावंश ने रानी झाँसी की सहायता न करके अंग्रेजों की सहायता की जिससे आज भी सिंधिया वंश पर लोग उंगलियां उठाते हैं कि वह वफादार नहीं गद्दार हैं। रानी झाँसी ने ग्वालियर में पड़ाव के पास अपनी वीरगति को प्राप्त किया जोकि वर्तमान में स्टेशन रोड की

---

1. "जिला विकास पुस्तिका झाँसी, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झाँसी, उ0 प्र0 2002 पेज 13 ।

2. वही पृष्ठ 13।

ओर जाने वाले मुख्य मार्ग पर झाँसी की रानी की छतरी बनी हुई है जो एक ऐतिहासिक स्थल है।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का हमेशा–हमेशा के लिये राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास एवं साहित्य में उनकी मस्तिष्क ऊँचा और श्रेष्ठ रहेगा। रानी झाँसी का योगदान अमूल्य तथा प्रभावशाली रहा जिसका भारतीय इतिहास में, अन्य रानियों की अपेक्षा उत्तमता और श्रेष्ठता का स्थान है।

झाँसी किले का अवलोकन करने पर उसकी बनावट से पता चलता है कि उसमें पाये जाने वाले वारवीकन्स, जो चहारदीवारी में चारों तरफ बने हुये हैं, उनका सैन्य दृष्टि से विशेष महत्व है। वह लम्बी व पास की मारक क्षमता के लिये उपयोगी है जिनका उपयोग सैनिक लोग युद्ध के समय किया करते थे।

झाँसी दुर्ग में मुख्य द्वार के अतिरिक्त दुर्ग प्राचीर निर्मित है, उसके दो तरफ रक्षा खाई तथा कुल 22 बुर्ज हैं। बुर्जो का उपयोग मुख्य रूप से सैन्य संचालन व सैन्य गतिविधियों में सैनिक लोग करते थे। यह दुर्ग भारत के अन्य दुर्गो की अपेक्षा संरक्षण की दृष्टि से छोटा है। 1857 के विद्रोह के कारण और रानी लक्ष्मीबाई ने इस युद्ध में अपना जीवन न्योछावर करके ख्याति अर्जित कर ली है।

इस दुर्ग का सम्बन्ध बुन्देलाओं, मराठाओं और अंग्रेजों से रहा परन्तु मराठाओं का आधिपत्य एवं 1857 के ऐतिहासिक युद्ध के कारण से चर्मोत्कर्ष की ओर जाता है। झाँसी दुर्ग का इतिहास व सैनिक महत्व सैन्य शास्त्रियों, सैन्य शिक्षाविदों तथा सैन्य शोधार्थियों के लिये विचारणीय और अनुकरणीय प्रश्न है। झाँसी दुर्ग वर्तमान पीढ़ी को 1857 के विद्रोह की याद दिलाता रहेगा और उस विद्रोह के द्वारा सैन्य कर्मचारियों में जागरूकता और त्यागमयी भावना को लेकर प्रेरित करता रहेगा।

झाँसी दुर्ग का भीतरी द्वार
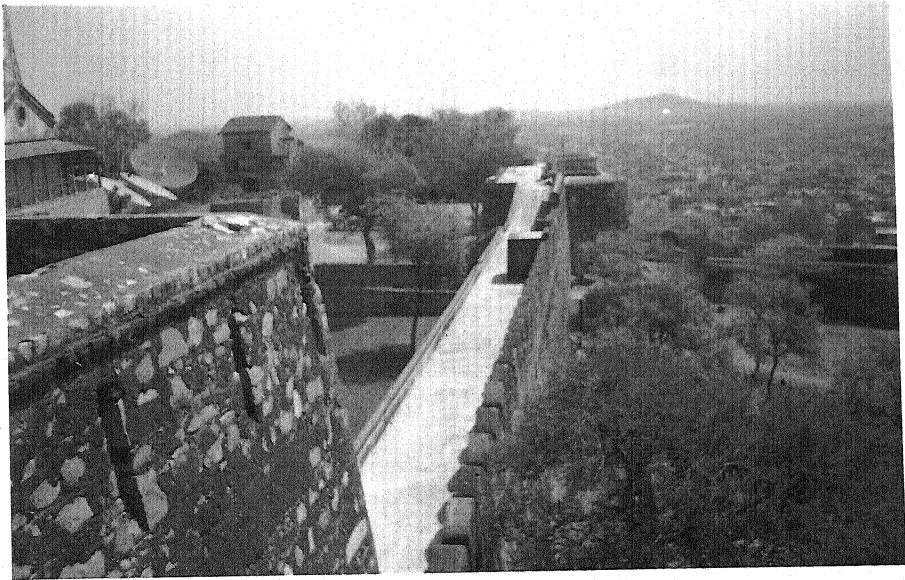
झाँसी दुर्ग की प्राचीर व वारवीकन्स

भवानी शंकर तोप
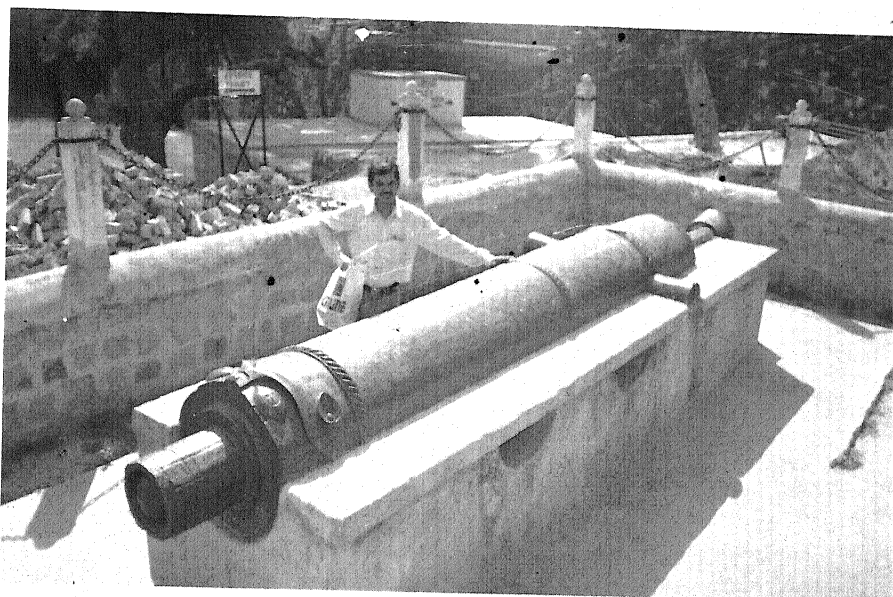
कड़क बिजली तोप,
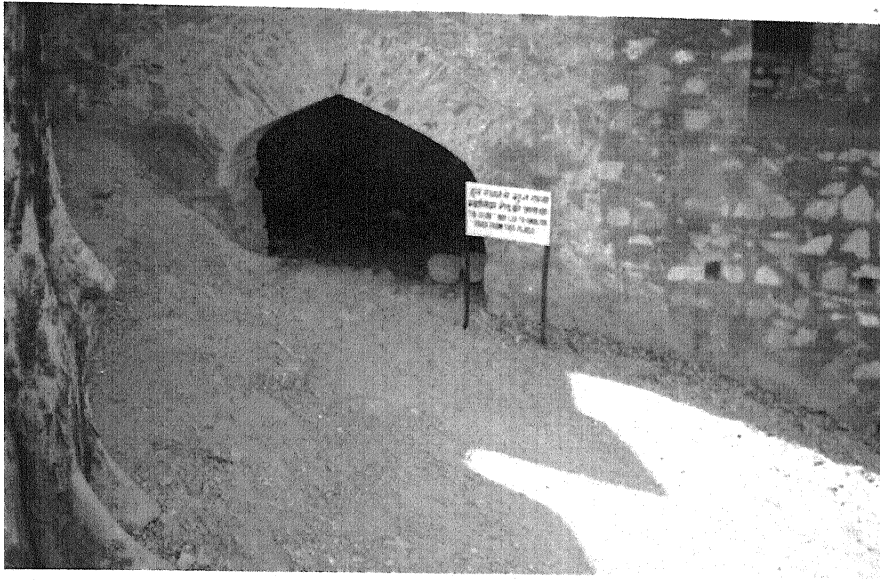
झाँसी दुर्ग से ग्वालियर जाने का गुप्त रास्ता
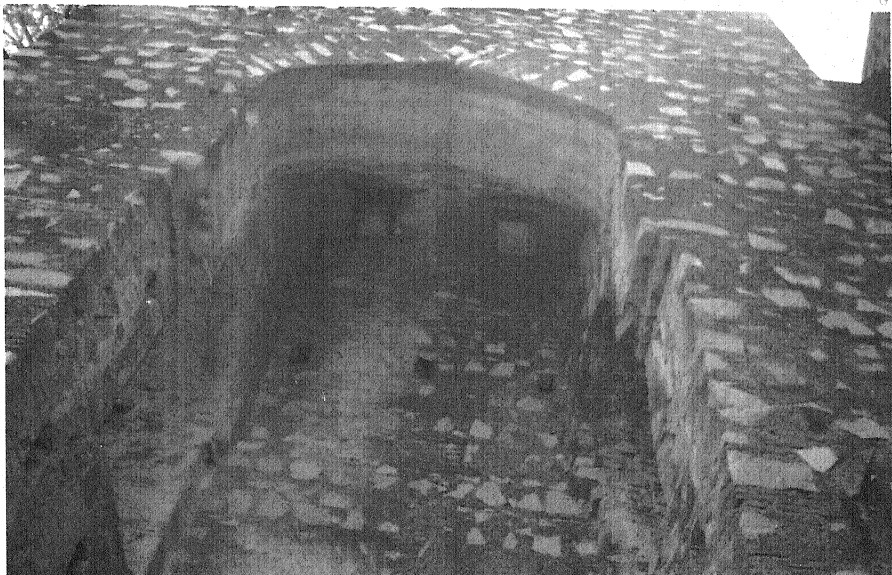
फाँसी गृह
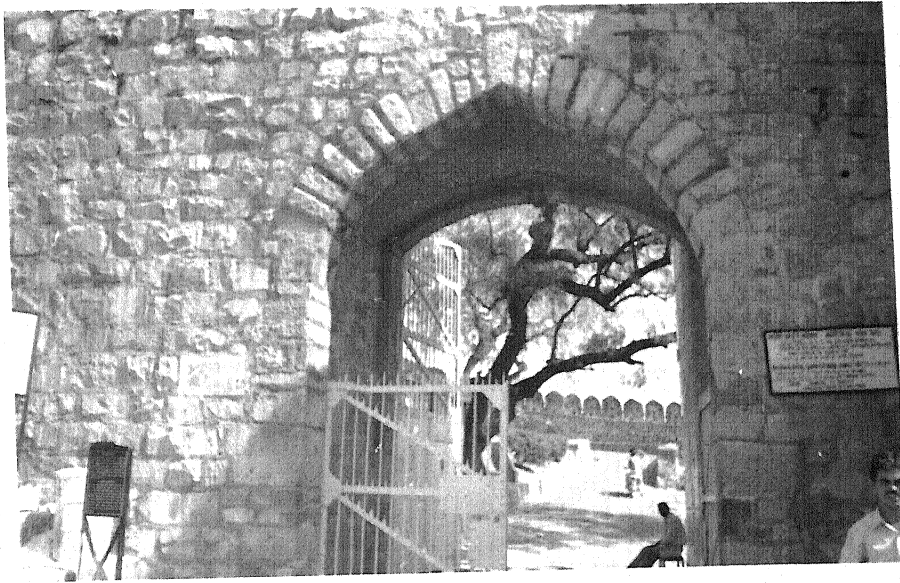
झाँसी दुर्ग का मुख्य द्वार
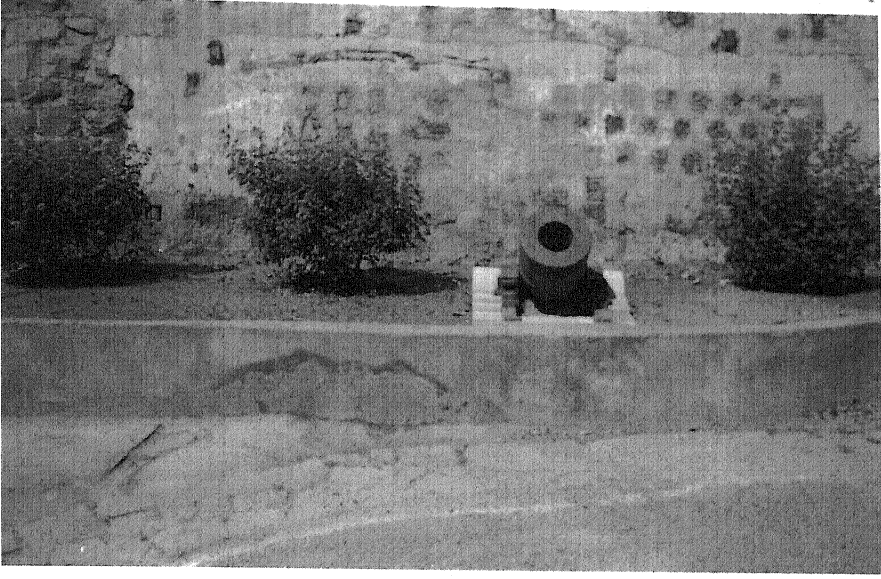
द्वार पर स्थित छोटी तोप (सुरक्षात्मक दृष्टि से)
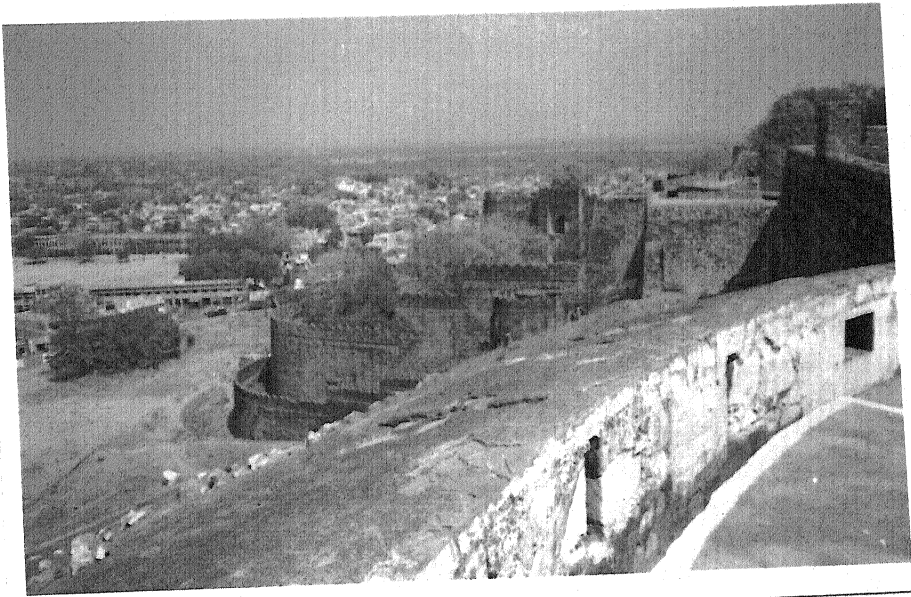
झाँसी दुर्ग में विभिन्न प्रकार के बुर्जों की स्थिति

पाँचवां अध्याय

कालिंजर एवं कालिंजर दुर्ग का भौगोलिक वर्णन :–

(1) कालिंजर दुर्ग का स्थापत्य

(2) कालिंजर दुर्ग का इतिहास

(3) कालिंजर दुर्ग का सैनिक महत्व

(4) चित्रावली

कालिंजर एवं कालिंजर दुर्ग का भौगोलिक वर्णन

कालिंजर नगर को अपने भव्य अतीत के दिनों में राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। यह नगर चन्देलों के समय में एक विशाल प्राचीर परिवेष्टित सुरक्षित नगर था। यह नगर चारों ओर से विशाल पहाड़ियों एवं घने जंगल से ढका हुआ था। इस नगर के चारों ओर विभिन्न प्रकार की वनस्पति जैसे महुआ, शीशम, सागौन, नीम, बरगद, पीपल एवं अन्य कटीली झाड़ियाँ थीं, मरोद्भिद पौधे होते हैं, उनसे सारा कालिंजर नगर परिवेष्टित था।

कालिंजर नगर अपने अतीत के गौरवता को प्रदर्शित करता हुआ वर्तमान समय में बहुत से मुहल्ले एवं बाजार से युक्त है। यह नगर कालिंजर दुर्ग की तलहटी में बसा हुआ है। दुर्ग की तलहटी में सुरसरि गंगा कालिंजर का महत्वपूर्ण सरोवर है। इसे गंगासागर भी कहते हैं।

सुरसरि गंगा के चारों तरफ की भूमि कृषि योग्य है जिसमें वर्तमान समय में रवि और खरीफ की फसल पैदा की जाती है। कालिंजर नगर के आस–पास की मिट्‌टी हल्की पीली, काली एवं कहीं–कहीं पर कंकड़ डीली भी हैं। मिट्‌टी के रंगों में कालिंजर के आसपास काफी भिन्नता पाई जाती है। फलदार वृक्षों में आम, जामुन, नीबू तथा महुआ प्रमुख हैं।

कालिंजर नगर प्राकृतिक दृष्टि से भव्यता एवं गौरवता को प्रदर्शित करता है। चन्देलकालीन कालिंजर परकोटों, बुर्जों तथा जंगल से घिरा हुआ था परन्तु वर्तमान में परकोटे तथा बुर्ज जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है। जंगल का दोहन हो चुका है तथा जंगल को कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित कर दिया है एवं अधिकांशतः जंगली जानवरों को लोगों ने शिकार कर उनके अस्तित्व को खत्म कर दिया है। वर्तमान समय में कालिंजर नगर के अधिकांशतः भौगोलिक एवं प्राकृतिक महत्व समाप्ति की ओर जा रहे हैं। मानवीय गतिविधियों के द्वारा भौगोलिक भिन्नतायें कालिंजर नगर के चारों ओर व्याप्त हैं जिससे कालिंजर नगर की प्राकृतिक छटा एवं हरियाली का दिन प्रतिदिन ह्रास हो रहा है। खनन होने से अतीत की भौगोलिक संरचना में एवं वर्तमान भौगोलिक संरचना में भिन्नता के संकेत दिखाई पड़ते हैं जोकि कालिंजर नगर के इतिहास एवं भूगोल को भ्रमित कर रहे हैं।

"कालिंजर दुर्ग विंध्याचल की पर्वत श्रंखलाओं में स्थित है। कालिंजर दुर्ग के पश्चिम में यमुना की सहायक नदी बागें प्रभावित है। इसकी भौगोलिक स्थिति अब 25° 23 / N अक्षांश तथा 80° 25 / E देशांतर है। कालिंजर दुर्ग की सागर तल से ऊँचाई लगभग 381.25 मीटर है तथा निकटवर्ती धरातल से 213.5 मीटर है। यह उत्तर प्रदेश के बांदा जनपद की नरैनी तहसील का अंग है।[1]"

कालिंजर दुर्ग भौगोलिक, धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टि से विश्व विख्यात है। कालिंजर दुर्ग के अतीत का गौरव स्मरणीय है। विभिन्न विद्वानों के अनुसार कालिंजर दुर्ग के सम्बन्ध में अलग–अलग मत हैं। यह दुर्ग चारों ओर से घने जंगल से घिरा हुआ है। इस दुर्ग के समक्ष भारत के अन्य दुर्ग उपेक्षित हैं। कालिंजर दुर्ग की रचना वैज्ञानिक तार्किक एवं सही भौगोलिक ढंग से हुई है। इस पर्वत का वृत्त 4–5 मील के क्षेत्र में है जोकि अपने पूर्ण विस्तार के चतुर्दिक छोरों से दुर्ग की प्राचीर से परिवेष्ठित है। दुर्ग पर चढ़ना अत्यन्त दुष्कर है, पर्वत के चारों ओर 150 फीट से 180 फीट तक खड़ी ऊँचाई लम्ब के रूप में है। कालिंजर दुर्ग भौगोलिक दृष्टि से उच्चता एवं महानता का प्रतिनिधित्व कर रहा है। दुर्ग के अन्दर एवं दुर्ग के चारों ओर विभिन्न प्रकार के विशालकाय पौधे एवं कटीली झाड़ियाँ दुर्ग की शोभा को समेटे हुये हैं। भारतवर्ष के विभिन्न दुर्गों एवं गढ़ियों की भौगोलिक स्थिति का मूल्यांकन करने पर अन्य दुर्ग बौनेपन को निरूपित करते हैं।

दुर्ग के चारों ओर विशालकाय चट्टाने एवं शिखर हैं जिनके द्वारा दुर्ग की रक्षा होती है। दुर्ग में प्रवेश करते समय बड़ी–बड़ी विशाल घाटियां हैं जिनको विभिन्न प्रकार के चन्देलकालीन शासकों ने अपनी इच्छानुसार कई प्रकार के रूप दिये। कालिंजर दुर्ग के अन्दर कई प्रकार के झरने हैं जिनसे पानी प्रवाहित होता रहता है व जिनके सम्बन्ध में बहुत सी धार्मिक एवं पौराणिक क्विदंतियां एवं कथायें हैं।

---

1. राजेन्द्र सिंह लेख – तीर्थ क्षेत्र कालिंजर का भौगोलिक अध्ययन, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (वार्षिक पत्रिका 1983)।

(अ) कालिंजर दुर्ग का स्थापत्य

कालिंजर वीरों का गढ़ कहलाता है। अभी तक इतिहासकार यह सुनिश्चत नहीं कर पाये कि इस भव्य अतीत के दुर्ग का निर्माण कराने वाला कौन महापुरूष था और न यह ज्ञात हो सका है कि किस समय इसका निर्माण हुआ ? प्रारम्भ में इस स्थल की प्रसिद्धि पवित्र तीर्थ के रूप में हुई तत्पश्चात इसने राजनीतिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। पुरातात्विक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि कालिंजर दुर्ग का निर्माण कम से कम ईसवी शताब्दी के प्रारम्भ होने के पूर्व हो गया था।

इस सम्पूर्ण पर्वत को सुरक्षा प्राचीर को सात पंक्तियों से परिवेष्ठित कर दुर्ग का स्वरूप प्रदान किया गया। आन्तरिक सुरक्षा प्राचीर लगभग 5 मीटर चौड़ी है। दुर्ग में प्रवेश हेतु मुख्य मार्ग कालिंजर ग्राम की ओर से है तथा दूसरा मार्ग पन्ना द्वार था जो वर्तमान में बन्द है, तीसरा मार्ग रीवा द्वार है। मुख्य मार्ग पर सुरक्षा व्यवस्था सुनिश्चित करने हेतु सात द्वार हैं।

1. **आलमगीर–** फारसी अभिलेख[1] से ज्ञात होता है कि इस प्रथम द्वार का निर्माण मुहम्मद मुराद ने मुगलबादशाह औरंगजेब के काल में करवाया था। औरंगजेब की उपाधि "आलमगीर" के नाम से यह द्वार प्रसिद्ध है।
2. **गणेश द्वार–** यहां चतुर्भुजी गणेश प्रतिमा प्रतिष्ठित है। राजपूत काल में यही प्रथम द्वार था।
3. **चौबुर्जी द्वार–** तीर्थ यात्रियों द्वारा उत्कीर्ण अनेक अभिलेख यहां हैं। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता कनिंघम[2] को यहां उत्तर गुप्त कालीन लिपि में अभिलेख प्राप्त हुआ है।
4. **बुद्ध द्वार–** बुद्ध गृह के नाम से यह द्वार जाना जाता है।
5. **हनुमान द्वार–** रामभक्त हनुमान की प्रतिमा यहां विद्यमान है अतः यह हनुमान द्वार है।
6. **लाल दरबाजा–** इसके समीप भैरव कुण्ड है जहां सप्तमातृका समूह, लिंग, मुखलिंग, तथा अन्य कलाकृतियां विशाल शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण हैं। उच्च पर्वतीय शिला

---

1. "आर्कियोलॉजीकल सर्वे रिपोर्ट 21, पृ0 29 ।

2. वही, 29 ।

पर भैरव का अंकन था जो कुछ वर्ष पूर्व पलट कर कुण्ड में गिर गया है। यहां बहंगी पुरुष का भी अंकन है, इसके निकट गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में अभिलेख है। "समाधिगत पंचमहा शब्द सामन्त श्री बसंत।" इस द्वार के निकट सोलह पंक्तियों का अभिलेख शिला[1] पर उत्कीर्ण है जिसकी चौथी पंक्ति में कालिंजराद्रि अर्थात कालिंजर पर्वत पढ़ा गया है।

7. **बड़ा दरबाजा–** यहां के अभिलेख[2] से ज्ञात होता है कि सम्वत् 1691 =1634 ई0 में इस द्वार का निर्माण हुआ था।

बड़ा दरवाजा दर्शक को कालिंजर दुर्ग के विशाल परिसर में प्रवेश कराता है जहां स्थान–स्थान पर अतीत विश्राम कर रहा है।

नीलकंठ मन्दिर– "यह शिवालय कालिंजर दुर्ग के पश्चिमी कोण में स्थित है। इसमें अर्द्धमण्डप, मण्डप, लघु अन्तराल तत्पश्चात गर्भगृह है। गुप्ताकाल में पर्वत को काट कर इस मन्दिर के गर्भगृह का निर्माण किया गया था। गर्भ गृह के द्वार पर स्तम्भ का लतापत्र तथा नदी देवियों गंगा, यमुना का अंकन है। वृत्ताकार गर्भ गृह का पृष्ठ भाग अत्यन्त सकरा प्रदक्षिणा पथ है। गर्भ गृह में एक किनारे पर विशाल एक मुखी शिवलिंग है। गर्भ गृह के अर्द्ध स्तम्भों पर शिवलिंग ऋषियों तथा भक्तों का शिल्पांकन है।"[3]

चतुष्कोंणीय विशाल स्तम्भों पर आधारित मण्डप के मध्य में स्तम्भों द्वारा अष्ठकोंणीय रचना निर्मित की गई है। इन स्तम्भों पर शिवगण, द्वारपाल तथा कलाभिप्रायों का सुन्दर अंकन है। ये चन्देलकाल की उत्कृष्ट कलाकृतियां हैं। मण्डप तथा गर्भ गृह के मध्य स्तम्भों पर आधारित

---

1. "आर्कियोलॉजीकल सर्वे रिपोर्ट 21, पृ0 30 ।
2. वही 21, पृष्ठ 30 ।
3. कालिंजर (शौर्य, स्मारक, मूर्तिकला, साहित्य), डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय, पृष्ठ 33, आदित्य रश्मिप्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1991

लघु अन्तराल है। अर्द्ध मण्डप के मात्र दो स्तम्भ अवशिष्ट हैं। अर्द्धमण्डप तथा मण्डप के वितान ध्वस्त हो गये हैं। जगत कल्याणार्थ समुद्र मन्थन से उत्पन्न विष को धारण कर नीलकंठ के नाम से विख्यात महादेव का यह मन्दिर कालिंजर का मुख्य पूजा स्थल है।

नीलकंठ मन्दिर के स्तम्भ पर अंकित अभिलेख से ज्ञात होता है कि यहां का महाप्रतिहारी संग्रामसिंह था। इसी अभिलेख में महालक्ष्मी पद्मावती का उल्लेख है। यह अभिलेख सम्वत् 1186–1129 ई0 अर्थात चन्देल महाराजा मदन वर्मा के काल का है तथा "श्री नीलकंठम् नित्यं प्रणमति" से प्रारम्भ है। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि चंदेल काल में कालिंजर के नीलकंठ मन्दिर का अद्वितीय महत्व था। इसकी व्यवस्था हेतु विशेष प्रबन्ध था और संग्राम सिंह मुख्य प्रतिहारी (प्रबन्धक) था। पद्मावती की उपाधि "महानाचनी" स्पष्ट करती है कि शिवालय में देव को प्रसन्न करने हेतु नृत्यांगनायें नियुक्त थी तथा पद्मावती उनमें प्रमुख थी। राजकीय मंदिरों में नृत्यांगनाओं की नियुक्ति भक्ति भाव के प्रसार हेतु पूजा के एक अंग के रूप में करने की परम्परा मध्यकाल में सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित थी।

नीलकंठ मंदिर के आस–पास स्थान–स्थान पर उत्कीर्ण लघुशैल मंदिरों में तथा शिलायों पर शिव के मुखलिंग, सामान्य लिंग, गणेश तथा शिव भक्तों का रूपायन है।

मृगधारा– हरवंश[1] पुराण के अनुसार कुशिक ने अपने सात पुत्रों को उनके आचरण से क्रोधित होकर घर से निष्कासित कर दिया था। वे महर्षि गर्ग के यहां रहने लगे। असत्य भाषण एवं मांस भक्षण के कारण महर्षि गर्ग के शाप से कुशिक पुत्र मृग बनकर कालिंजर गिरि पर रहने लगे। इस पुण्य क्षेत्र में वास करने तथा सत्कर्मों से उनका उद्धार हो गया था।

---

1. 'हरवंश पुराण अध्याय 21, श्लोक 24–26 ।

उपरोक्त पौराणिक कथा के संदर्भ में कालिंजर दुर्ग के दक्षिणी भाग में मृगों का सुन्दर अंकन शिलाखण्ड पर किया गया है। इसके समीप जलस्रोत है जिसे मृगधारा के नाम से जाना जाता है। यहां गुप्तकालीन ब्राह्मीलिपि में अंकित लघु अभिलेख हैं जो गुप्तकाल के तीर्थयात्रियों ने उत्कीर्ण करवाये थे।

सीतासेज– गुहामंदिर तथा इसके अन्दर सुन्दर शैया का निर्माण चन्देलकाल में पर्वत को उत्कीर्ण कर किया गया था। इसके समीप शैव प्रतिमायें तथा विष्णु के दशावतार अंकित हैं। यहां पाताल गंगा के नाम से विख्यात गहरा कूप है।

सरोवर– "कालिंजर दुर्ग का सबसे विशाल सरोवर कोटितीर्थ है इसके तट पर गुप्त प्रतिहार तथा चन्देलकाल के अनेक देवालय थे जो आक्रान्ताओं की धर्मान्धता का शिकार हो गये। मंदिरों के अवशेषों के निकट ही मस्जिद का निर्माण हुआ था। कोटितीर्थ के पश्चिमी तट पर कालिंजर के किलदार चौबे परिवार द्वारा निर्मित मंदिर है[1]।

"कोटितीर्थ के अतिरिक्त कालिंजर दुर्ग में बुढ़ियाताल, पाण्डुकुण्ड, रामकोटरा, तथा शनिकुण्ड नामक सरोवर हैं जो दुर्ग की जलापूर्ति के अतिरिक्त धार्मिक महत्व भी रखते थे। चन्देल नरेश कीर्तिवर्मन ने बुढ़िया ताल का निर्माण करवाया था जिसमें स्नान करने से ही वह कुष्ठ रोग से मुक्त हुआ था[2]।"

बुन्देलखण्ड के दुर्ग एवं गढ़ियों की स्थापत्य कला अन्य दुर्गों एवं गढ़ियों से भिन्न हैं। कालिंजर दुर्ग की स्थापत्य कला झाँसी दुर्ग की स्थापत्य कला से भिन्नता को प्रदर्शित करती है। इस दुर्ग की स्थापत्यकला अनौखी अद्‌भुत एवं विस्मयकारी है। स्थापत्य कला का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कालिंजर दुर्ग अपने आपमें एक विशेष अतीत की गौरवता एवं महत्ता की कहानी को प्रदर्शित कर रहा है।

---

1. कालिंजर (शौर्य, स्मारक, मूर्तिकला, साहित्य), डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय, पृष्ठ 34, आदित्य रश्मिप्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1991

2. वही पृष्ठ 35 ।

कालिंजर दुर्ग की स्थापत्यकला ऐतिहासिक, राजनैतिक, शैक्षणिक दृष्टि से चुनौती है और शोधार्थी, शोधकर्ताओं एवं सैन्य शास्त्र के वैज्ञानिकों के लिये चिन्तन का विषय है। इसकी स्थापत्यकला को वर्तमान स्थापत्यकला से समाहित कर उसको उपरिमुखी एवं सृजनात्मक बनाया जा सकता है जोकि कालिंजर दुर्ग के महत्व की अमिट एवं अमरता की छाप छोड़ते हैं। इतिहासविदों, पुरातत्वविदों एवं सैन्यशास्त्रियों के लिये कालिंजर द ुर्ग एक नवीन रास्ता बतलाने वाला शिरोमणि शक्ति का प्रतीक है। वहां की बहुसंख्यक प्रतिमाह शिलाखण्डों, पर्वतीय सतह, घाटियां,दरवाजे, नीलकंठ का मन्दिर, भैरवनाथ की मूर्ति, तांडव नृत्य करते हुये उमेश्वर की छवि एवं छठा मानवीय मस्तिष्क एवं हृदय को उत्कीर्णता एवं ऊर्जा प्रदत्त करती रहती है। कालिंजर दुर्ग की वर्तमान में दशा उपेक्षापूर्ण है परन्तु इतिहासबिदों, साहित्यकारों व शोधार्थियों को एक पारम्परिक दृष्टि से ज्ञान हमेशा मिलता रहेगा।

(ब) कालिंजर दुर्ग का इतिहास

प्रकृति के शुभ दर्पण में देखने का प्रयास करिये तो सचमुच उसकी सजीव कला कभी–कभी व्योममण्डल में मुस्कराती हुयी प्रतीत होती है। तारों की चमचमाहट में उसकी प्रभा कालिंजर दुर्ग की आंखों को चकाचोंध कर देती है। व्योम गंगा का चमकीला पथ तथा नीलकंठ (भगवान शंकर का शिवलिंग) एवं स्वर्णारोहण से प्रवाहित शीतल जल मन को मुग्ध कर देता है। विशाल विंध्याचल की पहाड़ियां एवं रात्रि में पड़ने वाली उस पर चन्द्रमा की चांदनी आनन्द के हिंडोले में झूलने लगती हैं।

कालिंजर का क्षेत्र परम् प्राचीन है। पदमपुराण में इसकी सीमा का विस्तार चार मील तक लिखा है–

'अर्धयोजन विस्तीर्ण सुक्षेत्रं मम मंदिरम्।
कालिंजरेति विख्यातं मुक्तिदं शिव सन्नि धौं।।[1]

---

1. ''वीरों का गढ़ कालिंजर'', श्री वासुदेव त्रिपाठी, पृ0 8, प्रकाशक– भानु पिंटिंग प्रेस, दतिया, म0प्र0, 1996।

शंकर जी ने कहा है कि हे पार्वती जिस सुन्दर क्षेत्र में मेरा स्थान है वह आधा योजन अर्थात 4 मील विस्तृत है। यह कालिंजर नाम से विख्यात है, और मेरे समीप निवासियों को मुक्ति देने वाला है।

कालंजर क्षेत्र प्राचीन काल से पाप हरने वाला एवं पितृ उद्धारक है। यह अनादिकाल से तपो भूमि है। इसका उल्लेख श्रीमद्भागवत में षष्ठ स्कन्ध में भी आया है।

"विन्ध्य पादानुपव्रज्य सोऽचरद दुष्कर तपः।

तत्राधमर्षण नामतीर्थ पाप हर परम्।।[1]"

महाभारत के वन पर्व में यह लेख प्राप्त होता है कि कालिंजर में ही हिरण्यविन्दु नाम का पर्वत है जहां पर महर्षि अगस्त का आश्रम था। किसी समय पाण्डवों ने भी कालिंजर में भ्रमण किया था।

संस्कृति के अनुसार इसका विग्रह पिंगलातीत पिंगल है। इस पर्वत का नाम पिंगल गिरि भी है। पिंगल नामक तपस्वी ने तपस्या की तथा इसे सिद्ध भूमि और तपोभूमि के रूप में ख्याति दिलाई। जिस प्रकार गंगा, यमुना का महत्व त्रिकाल में सत्य है उसी प्रकार पाप विनाशक शान्ति प्रदायक एवं ऊर्जा संचारक कालिंजरगिरि का भी विशेष महत्व है। कालिंजर के सम्बन्ध में बहुत सी लोककथायें एवं लोकगाथायें हैं।

महाभारत तथा शिवपुराण के अध्याय सप्तम में कालिंजर का विशेष महत्व है। कालिंजर को बुन्देलखण्ड का मानसरोवर कहा जाता है। इस स्थान पर स्नान करने से एक सहस्त्र गौदान के समकक्ष माना जाता है। आज भी कालिंजर के प्रति लोगों की श्रद्धा एवं पूजा–अर्चना जुड़ी है।

चरक संहिता एवं भारतीय चिकित्सा शास्त्र में कालिंजर दुर्ग का विशेष महत्व है क्योंकि दुर्ग पर कई प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियां पाई जातीं हैं जो ज्वर, कुष्ठ, मिर्गी, तथा यक्षमा के अनेक रोगों के उपचार एवं निदान के लिये है। भारत में विन्ध्यगिरि की श्रंखलायें चित्रकूट एवं कालिंजर में प्रमुख हैं जो वन औषधियां एवं खनिज द्रवों से भरी पड़ी हैं। वन औषधियों के अतिरिक्त

---

1. 'वीरों का गढ़– कालिंजर, श्री वासुदेव त्रिपाठी, पेज सं0 8, प्रकाशक– भानु प्रिंटिंग प्रेस, दतिया, म0प्र0, 1996।

विभिन्न प्रकार के खूंखार वन्य प्राणी भी पाये जाते थे। इतिहासकारों एवं शिक्षाविदों के अनुसार कालिंजर दुर्ग का महत्व केवल सैन्य ही नहीं बल्कि धार्मिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक भी है।

"मध इस भू–भाग में कुषाणों के राजनीतिक उत्तराधिकारी थे। मध नरेशों के सिक्के तथा मुहरें विषद परिमाण में कौशाम्बी, भीटा तथा ओरछा से प्राप्त हुये हैं। महाराजा शिव मध का अभिलेख प्राप्त हुआ इससे स्पष्ट होता है कि कालिंजर अपने आस–पास के अन्य भू–भागों के सदृश मधों के अधीन था।"[1]

"मधों के पश्चात इस भू–भाग पर प्रारम्भिक गुप्त वंश के राजाओं का आधिपत्य स्थापित हुआ। हरिदास का उल्लेख प्रारम्भिक गुप्त राजाओं के वंश विवरण में है। इनके सिक्के भी प्राप्त हुये हैं।"[2]

"प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि सम्राट समुद्रगुप्त ने सम्पूर्ण भारत वर्ष को अपने दिग्विजयों से एकता के सूत्र में पिरोया था। इन्हीं अभिलेखों से ज्ञात होता है कि आर्यवृत के प्रथम युद्ध के पश्चात उसने दक्षिणा पथ के राज्यों पर विजय प्राप्त की। इसी क्रम में महाकालान्तर के प्रयागराज का उल्लेख मिलता है। महाकालान्तर एवं कौशाम्बी कालिंजर के इर्द–गिर्द के राजा थे। गुप्ता साम्राज्य के पतन के साथ ही साथ अनेक लघु राज्यों का जन्म हुआ। कालिंजर के शिलालेख में राजा उद्दयन का नाम अंकित है जो सम्भवतः पांचवीं शताब्दी के अन्त में यहां राज्य करते थे। 606 ई0 में हर्षवर्द्धन सिंहासनरूढ़ हुआ। राजनैतिक उत्कर्ष के परिणाम स्वरूप इसका साम्राज्य दक्षिण में नर्मदा तट तक फैला हुआ था तथा उसमें कालिंजर भी शामिल था।"[3]

सम्राट हर्ष की मृत्यु के बाद राजनैतिक अस्थिरता का लाभ उठाते हुये डाहल प्रदेश में त्रिपुरों को केन्द्र बनाकर कलचुरी एक शक्ति के रूप में उभरे। इस वंश के प्रथम शासक वाम राजदेव को विद्वानों ने सातवीं शताब्दी के अन्त में माना है। सामरिक तथा धार्मिक महत्व के कालिंजर क्षेत्र पर अधिकार कर कलचुरियों ने अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि की। इस विजय की अजेय स्मृति को

---

1. "कालिंजर (शौर्य स्मारक, मूर्तिशिल्प, साहित्य) डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय, पेज 10 आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1991

2. वही, पृ0 10 ।

3. वही, पृ0 10 ।

स्थायित्व प्रदान करने हेतु कालांतर में भी कलचुरी नरेश "कालिंजरपुर वराधीश्वर" के विरूद्ध धारण करते रहे। यद्यपि यह भू भाग प्रतिहारों ने उनसे छीन लिया था।"[1]

"विक्रम सम्वत् 1011 के खजुराहो अभिलेख तथा जनश्रुतियों के आधार पर सिद्ध हुआ कि इस दुर्ग का निर्माण चन्दनमणि (नन्नुक) द्वारा कराया गया, किन्तु इतिहास के द्वारा इसकी पुष्टि नहीं होती। फरिश्ता का कथन है कि इस दुर्ग का निर्माण सातवीं शताब्दी में केदार नामक राजा ने कराया और कालिंजर नगर वसाया था। बिक्रम संवत 1011 = 954 ई0 के आधार पर प्रत्येक पीढ़ी के लिये 20–25 वर्ष का समय निर्धारित करते हुये नन्नुक का कार्य 9वीं शताब्दी का प्रथम चरण माना है।"[2]

"गुर्जर प्रतिहार वंश के प्रतापी नरेश नागभट्ट द्वितीय ने सर्वप्रथम कान्यकुब्ज विजय होकर कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया था। बराह अभिलेख से ज्ञात होता है कि नागभट्ट द्वितीय ने कालिंजर में दान भी दिया था उसने यह भू–खण्ड कलचुरियों से जीता था।"[3]

जनश्रुतियों एवं लोकसाहित्य में अतिशयोक्ति तो अवश्य है परन्तु इतना तो अवश्य है कि प्रारम्भ से ही चन्देल राजवंश का आधिपत्य कालिंजर पर था। चाहे इस वंश के प्रारम्भिक शासक प्रतिहारों के सामंत रूप में क्यों न रहे हों।

"गुर्जर प्रतिहार नरेश रामभद्र सं0 833 = 826 ई0 का शासनकाल अशान्तिपूर्ण था। वह अपने पिता नागभट्ट द्वितीय द्वारा कालिंजर मण्डल में दिये गये दान को सक्रिय न रख सका। इससे प्रतीत होता है कि कालिंजर को चन्देलों ने गुर्जर प्रतिहारों से स्वतन्त्र करालिया था।"[4]

"नन्नुक के पश्चात उसके पुत्र वाक्पति पौत्रों, जयशक्ति तथा विजय शक्ति के आधिपत्य में रहा। जैजा अर्थात जय शक्ति के नाम से उसके राज्य का नाम जैजाकभुक्ति हुआ। विजय शक्ति का पुत्र राहिल (900–915ई0) तथा पौत्र हर्ष (915–930ई0) कालिंजराधिपति एवं गर्जर प्रतिहारों के सामंत रहे थे। विद्वानों के अनुसार महिपाल प्रथम ही क्षितिपाल था। इस प्रकार चन्देल राजवंश गुर्जर

---

1. "कालिंजर (शौर्य स्मारक, मूर्तिशिल्प, साहित्य) डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय, पेज 11 आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1991

2. वही, पृ0 12 ।

3 वही पृ0 12 ।

4. वही पृ0 12।

प्रतिहारों के सामंत शासकों के रूप में अत्यधिक शक्तिशाली हो गये थे। उन्होंने कालिंजर को एक सैनिक छावनी एवं वैभवशाली नगर के रूप में विकसित कर दिया था।[1]"

"गुर्जर प्रतिहारों के पश्चात राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय ने कालिंजर पर अधिकार किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय चन्देलों को राष्ट्रकूटों ने कमजोर बनादिया था। चन्देल नरेश हर्ष के पुत्र यशोवर्मन ने पुनः कालिंजर पर वियज प्राप्त की।[2]"

"यशोवर्मन की कालिंजर पर विजय का उल्लेख वि0सं0 1011 = 954 ई0 के खजुराहो अभिलेख से ज्ञात है।

यस्मिन्मध्यान्दिने स्यात्ताराणिरपुदिनं नील नीलकण्ठाधिवासम् ।
जग्राह क्रीडया यस्तिलकमिव भवं कालिंजराद्रिस।।[3]

" डा0 मिरासी, डा0 हेमचन्द्र राय, डा0 त्रिपाठी, डा0 आल्टेकर, डा0 एस0के0 मित्रा के मतानुसार यशोवर्मन ने राष्ट्रकूटों को पराजित कर कालिंजर पर अधिकार कर लिया। यह मत देवली के अभिलेख से प्राप्त है। यशोवर्मन के पश्चात उसका पुत्र धंग सिंहासनारूढ़ हुआ। खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर से प्राप्त इसके अभिलेख में चन्देल साम्राज्य के विस्तार का वर्णन है।[4]"

"इतिहासकार निजामुद्दीन एवं फरिश्ता का कथन है कि दिल्ली, अजमेर, कालिंजर एवं कन्नौज के राजाओं ने 989 ई0 के युद्ध में सुवुक्तग्रीन के विरूद्ध भटिण्डा के शाही नरेश जयपाल को सैनिक सहायता दी थी। चन्देलों ने सामरिक दुर्ग को विशाल सैनिक छावनी में परिवर्तित कर दिया जिससे इसका नाम तात्कालीन राष्ट्रीय घटनाओं के साथ सम्बद्ध होने लगा था।[5]"

---

1. "कालिंजर (शौर्य स्मारक, मूर्तिशिल्प, साहित्य) डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय, पेज 12 आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1991

2. वही, पृ0 13 ।

3. वही पृ0 13 ।

4. वही पृ0 14 ।

5. वही पृ0 14 ।

कालिंजर नरेश धंग के पुत्र महाराज गंड ने 1008 ई0 में सुल्तान महमूद के विरूद्ध जयपाल के उत्तराधिकारी भटिण्डा के राजा आनन्द पाल को सैन्य सहायता प्रदान की थी।युद्ध में आनन्दपाल के हाथी बिगड़ जाने से भगदड़ मच गई और भारतीय सेना असफल हो गई, इस प्रकार कालिंजर भारत के गौरव को सुरक्षित रखने में संघर्षशील था।[1] ''

''गंड के पश्चात उसका पुत्र विद्याधर चन्देलों का राजा बना । भटिण्डा के शाही वंश के पतन के पश्चात महमूद गजनवी ने 1018–19 ई0 में कन्नौज पर आक्रमण किया। वहां का गुर्जर प्रतिहार नरेश राजपाल कायर था, वह बगैर युद्ध के भाग गया। महमूद को सुगमता से सफलता प्राप्त हुई। इसके पश्चात त्रिलोचन पाल को विद्याधर ने कन्नौज का राजा बना दिया। इसकी पुष्टि कच्छप घातों के द्रुव कुण्ड अभिलेख एवं चन्देलों के महोबा अभिलेख से प्राप्त होती है।[2]''

इतिहासकार निजामुद्दीन एवं इवलुल एहतर के अनुसार महमूद गजनवी एवं विद्याधर का झगडा हुआ जिससे कि विद्याधर युद्ध मैदान से भाग गया इस प्रकार की चन्देलो की राजनीति थी। ''निजामुद्दीन के अनुसार कालिंजर दुर्ग सारे हिन्दुस्तान मेंअपनी शक्ति एवं अभेद्यता के लिए प्रसिद्ध रहा है। इस दुर्ग की घेरा बंदी सुल्तान महमूद गजनवी ने की जो बहुत समयतक चलती रही। महमूद गजनवी ने ग्वालियर के किले पर चढाई की ,जिसके हाकिम ने चार दिन की घेराबन्दी के पश्चात हाथियों की भेंट देकर महमूद से रक्षा की प्रार्थना की।[3] ''

'' विद्याधर के पश्चात उसका पुत्र विजयपाल 1030–1060 ई0 एवं पौत्र देवबर्मन 1060 ई0 मे सिंहासनारूढ़ हुआ इनके काल में चन्देल शक्ति का अत्यधिक ह्रास हुआ। इसके कारण कार्य के नेतृत्व में कलचुरियों की साम्राज्यवादी सत्ता का उदय हुआ। देव वर्मन के पश्चात उसका पुत्र कीर्ति वर्मन (1060–1100ई0) चन्देलों का राजा बना।[4]''

---

1. ''कालिंजर (शौर्य स्मारक, मूर्तिशिल्प, साहित्य) डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय, पेज 15 आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1991

2. वही, पृ0 15 ।

3. वही पृ0 17 ।

4. वही पृ0 17 ।

कीर्ति वर्मन के पश्चात सलक्षण वर्मन राज्य अधिकारी हुआ। इसने अपनी प्रबल शक्ति से मालवों तथा चेदियों को पराजित करके अपनी सीमा का विस्तार किया। इसके बाद जय वर्मन (1115–1120 ई0) तथा पृथ्वी वर्मन (1120–1129 ई0) चन्देलों के राजा हुये और उनके साम्राज्य की कीर्ति बनी रही। पृथ्वी वर्मन के पश्चात उसका पुत्र मदन वर्मन (1129–1163 ई0) चन्देल सिंहासन पर बैठा, यह इस वंश के महान शासकों में से एक था।

यशोवर्मन के पश्चात चन्देल प्रतिष्ठा एवं शक्ति में धूमिलता आ गई थी। अवन्ती नाथ अभिलेखों के अनुसार चन्देल नरेश मदन वर्मन एवं चालुक्य नरेश, सिद्धराज, जयसिंह में संघर्ष हुआ था। जैनग्रन्थ कीर्ति कौमुदी एवं कुमारपाल चरित्र में मदन वर्मन की पराजय का वर्णन है।"

"मदन वर्मन के पश्चात उसका पुत्र यशोवर्मन द्वितीय चन्देल सिंहासन पर विराजमान हुआ। इसका शासनकाल अत्यन्त अल्प था। इसके पश्चात परमार्दी देव (1165–2012 ई0) शासक रहा। पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो, तथा आल्हा खण्ड से ज्ञात होता है कि चन्देल नरेश पर अजमेर व दिल्ली के प्रतापी चहमान वंशीय राजा पृथ्वीराज तृतीय का भीषण आक्रमण 1182 में हुआ था। परमाल रासो में आल्हा के पुत्र इन्दल के नेतृत्व में बनाफरों द्वारा परमार्दि देव को चहमान सेना से मुक्ति दिलाई थी।"

"599 हिजरी –1202 ई0 में कुतुबुद्दीन एबक ने कालिंजर पर भीषण आक्रमण किया। चन्देल नरेश परमार्दिदेव ने साहस पूर्वक युद्ध का सामना किया किन्तु उत्पन्न विषम परिस्थितियों के कारण उसने समर्पण कर दिया। समझौते के समय परमार्दिदेव की मृत्यु हो गई परन्तु परमार्दिदेव का दीवान अजय देव ने समर्पण का विचार त्याग कर शौर्यपूर्ण संघर्ष जारी रखा तथा कालिंजर का शासक हजबारुद्दीन हसन बन बैठा, यह कालिंजर का दुर्भाग्य था जब चन्देल राजवंश के राजाओं के स्थान पर अन्य शासक बना।"[1]

परमार्दिदेव के पश्चात उसका पुत्र त्रिलोक वर्मन (1203–1247 ई0) राजसिंहासन पर बैठा। डा0 एस0के0 मित्र के अनुसार त्रिलोकवर्मन कामदेव ने काफी अधिक समय तक संघर्ष किया

---

1. "कालिंजर (शौर्य स्मारक, मूर्तिशिल्प, साहित्य) डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय, पेज 17 आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1991

और चन्देल वंश को दुश्मनों से बचाने का प्रयास किया। त्रिलोक वर्मन का पुत्र हमीर वर्मन शशांक भूप वि0सं0 1387, किलयादेव वि0सं0 1403 तथा परमार्दिदेव द्वितीय वि0सं0 1447 क्रमशः चन्देल राजवंश के सिंहासन पर आसीन हुये तथा कालिंजर सतत् इनके आधिपत्य में रहा।"[1]

परमार्दिदव द्वितीय के लगभग 100 वर्ष पश्चात चन्देल नरेश, कीरतसिंह का उल्लेख मिलता है। यह अन्तिम कालिंजर नरेश था। परमार्दिदेव द्वितीय से कीरत सिंह के मध्य के राजाओं के नाम ज्ञात नहीं है।

"हुमायु ने कालिंजर पर तीनबार आक्रमण किये परन्तु हमेशा असफल रहा। यह कथन अकबर नामा तथा तबकाते अकबरी के अनुसार है।"[2]

"अफगान सम्राट शेरशाह सूरी ने 1545 ई0 में कालिंजर पर आक्रमण किया। तबारीखे शेरशाही के अनुसार उसने कालिंजर किले के सम्मुख ऊँचे–ऊँचे मचान बनवाये जिसके समक्ष किला नीचा दिखाई पड़ा। उसने अफगान तोपखाना भी स्थापित किया था। हिजरी सं0 952 के माह रवि उलअबल 9 शुक्रवार को शेरशाह बारूद से भरे अग्नि बाणों का निरीक्षण कर रहा था। वही अग्नि वाँण दुर्ग प्राचीर से टकराकर घूमते हुये उस स्थान पर आ गिरा जिस स्थल पर अग्निवाणों का भण्डार था। शेरशाह सूरी बुरी तरह झुलस गया तथा 10 तारीख 1545 को शेरशाह की मृत्यु हो गई। कीरत सिंह को बन्दी बना लिया गया तथा शेरशाह का पुत्र जलाज कालिंजर दुर्ग में इस्लाम शाह के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ।"[3]

भारतवर्ष की प्रभुसत्ता हेतु अफगाान तथा मुगलों में संघर्ष जारी था। शेरशाह जैसे महान सेनानायक को खोकर अफगानी हताश और निराश होगये। इसके पश्चात हुमायूँ के पुत्र अकबर ने उत्तर भारत में मुस्लिम साम्राज्य का शनैः शनैः विस्तार किया। कालिंजर पर विजय प्राप्त करने हेतु अकबर ने मजनू खान के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी। यह दुर्ग उस समय राजा रामचन्द्र के

---

1. "कालिंजर (शौर्य स्मारक, मूर्तिशिल्प, साहित्य) डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय, पेज 18 आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1991

2. वही, पृ0 20 ।

3. वही, पृ0 21, 22 ।

आधिपत्य में था। यह कायर शासक था तथा उसने मुगलों के समक्ष अपने आप को समर्पित कर दिया जिससे राजा रामचन्द्र की तीव्र भर्त्सना की गई।

"सम्राट अकबर के पश्चात जहांगीर, शाहजहां तथा औरंगजेब के काल में कालिंजर मुगल साम्राज्य का अंग बना रहा। औरंगजेब तथा महाराज छत्रसाल का काफी समय तक घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में बुन्देला विजय हुये। मान्धाता चौबे को कालिंजर का दुर्गपति नियुक्त किया गया। इसके पश्चात सरनेत सिंह को कालिंजर का दुर्ग पति कायम किया गया, चौबे के समर्थन के द्वारा, किन्तु कुछ समय पश्चात इनकी मृत्यु हो गई और रामकिसुन चौबे को कालिंजर का किलेदार बनाया।"[1]

"अली बहादुर पेशवा बाजीराव प्रथम अत्यन्त महात्वाकांक्षी था, उसने छत्रसाल के वंशज राजा वख्त सिंह से युद्ध लड़ा था। अली बहादुर तथा कालिंजर के दुर्ग पति रामकिसुन चौबे से विवाद था क्योंकि वह पांच लाख रुपये नजराने के मांग रहा था। रामकिसुन चौबे ने अपनी सुरक्षा व्यवस्था को सदैव सुदृढ़ रखा, वह एक स्वाभिमानी व साहसी व्यक्ति था।"[2]

नबाव अली बहादुर के दो पुत्र थे–शमशेर बहादुर द्वितीय, जुल्फिकार अली। नबाव शमशेर बहादुर ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि कर ली थी। उस समय हिम्मत बहादुर गोसाई कालिंजर का दुर्गपति था तथा हिम्मत बहादुर , शमशेर बहादुर को धोखा देकर लेफ्टीनेंट कर्नल पावेल से जा मिला। पेशवा बाजीराव द्वितीय एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मध्य 31 दिसम्बर, 1802 ई0 को वेशीन की संधि हुई, इस संधि से ईस्ट इण्डिया कम्पनी को पेशवा के राजनीतिक उत्तराधिकारी के रूप में मराठा साम्राज्य संचालन के सूत्र प्राप्त हो गये। इस प्रकार बांदा के नबाव ने ईस्ट कम्पनी के प्रस्ताव को स्वीकार किया और कम्पनी राज्य स्थापित हो गया।[3]

राम किसुन चौबे के आठ पुत्र :– बल्देव, दरियावसिंह, गोबिन्द दास, गंगाधर, नवल किशोर, शालिगराम, तथा छत्रसाल विद्यमान थे। इनमें दरियाव सिंह दुर्ग पति था, जो विशेषतायें

---

1. "कालिंजर (शौर्य स्मारक, मूर्तिशिल्प, साहित्य) डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय, पेज 24 आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1991

2. वही, पृ0 25 ।

3. वही, पृ0 26 ।

रामकिसुन चौबे में थीं वह इनके पुत्रों में नहीं थीं। इन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि कर ली तथा कालिंजर बांदा जनपद में विलीन कर सैनिक छावनी बना दिया गया। 1857 ई0 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में बांदा के भूतपूर्व नवाब के वंशज नवाब अली बहादुर द्वितीय ने क्रान्तिकारियों का नेतृत्व किया, उसी समय 12वीं पैदल बंगाल सेना के लेफ्टिनेंट रेमिंटन ने इस दुर्ग में अपना कब्जा कर लिया। इसके पश्चात बांदा जनपद कालिंजर सहित संयुक्त प्रांत (आगरा एवं अवध) में सम्मिलित किया गया। बांदा में स्वतंत्र भारत में संयुक्त प्रांत नामकरण उ0प्र0 हुआ।"[1]

कालिंजर दुर्ग युगों–2 तक इतिहास वेत्ता एवं शोधवेत्ताओं के लिये हमेशा शौर्य एवं वीरता का प्रेरणास्त्रोत बना रहेगा। यह दुर्ग आज भी अतीत की गौरवमयी लोककथायें एवं लोकगाथाओं का प्रस्तुतीकरण कर रहा है। कालिंजर दुर्ग का महत्व ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, पुरातात्विक एवं पौराणिक दृष्टि से मानवता के समीप एवं किरीट बना हुआ है। प्रत्येक क्षत्रियों, सूर्यवीरों को कालिंजर दुर्ग से प्रेरणा लेकर अपने अंदर वीरत्व, गतित्व एवं प्रेरणत्व के मनोवेगों का संचालन करते रहना चाहिये।

कालिंजर दुर्ग अभेद्य, अजेय एवं अटल है। इन्हीं बिन्दुओं का चरितार्थ करते हुये पुरातत्व विभाग को इस जीर्ण–शीर्ण किले की देख–रेख कर शोधार्थियों एवं इतिहासविदों को चिन्तन करने के लिये कालिंजर दुर्ग की गरिमा को वास्तविक रूप देना चाहिये। आगे आने वाली पीढ़ी के लिये वीरों का गढ़ "कालिंजर" एक उत्साहवर्द्धक एवं शौर्यात्मक प्रतीक है तथा हमेशा –2 के लिये इतिहास के पन्नों में कालिंजर दुर्ग अमिट, अटल और अमरता का दृष्टव्य है।

(स) कालिंजर दुर्ग का सैनिक महत्व

मानव ने आदिकाल से वर्तमान काल तक अपनी सुरक्षा करने के लिये सैनिक व्यवस्था, सैन्य नीतियां, सैन्य संगठन तथा सैन्य बल का निर्धारण किया। आर्य लोगों से लेकर वर्तमान

---

1. "कालिंजर (शौर्य स्मारक, मूर्तिशिल्प, साहित्य) डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय, पेज 26,27 आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1991

समय के इतिहास की विवेचना की जाये तो निष्कर्ष निकलता है कि सैनिक महत्व समय-2 पर कितना उपयोगी रहा है। दुर्गों का सैनिक महत्व इतिहासविदों, पुरातत्व विदों एवं शोधार्थियों के लिये विश्लेषणात्मक एवं विवेचनात्मक विषय बना हुआ है। भारतवर्ष में राजपूत कालीन सभ्यता में एवं मुगलकालीन सभ्यता में विभिन्न प्रकार के दुर्गों का निर्माण हुआ जोकि सैन्य दृष्टि से एक विशेष महत्त्व रखते हैं।

बुन्देलखण्ड में किले एवं गढ़ियों का विभिन्न शताब्दियों में निर्माण किया गया। उनका निर्माण करते समय सैन्य नीति का ध्यान रखा गया। चन्देल कालीन एवं बुन्देल कालीन सभ्यताओं ने जो दुर्ग बुन्देलखण्ड में निर्मित कराये उनमें कालिंजर एवं झाँसी का दुर्ग प्रमुख है। चन्देल सम्राटों ने अपने कोष का अधिकांशतः सेना के संगठन, प्रशिक्षण और संरक्षण में खर्च किया। कालिंजर का दुर्ग सैन्य दृष्टि से इतिहासकारों तथा जनश्रुतियों के आधार पर अभेद्य और अजेय रहा है। कालिंजर के दुर्ग की रचना एवं दुर्ग व्यूह, प्राचीर, बुर्जों का निर्माण करते समय वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया गया है। चन्देल सेना वस्तुतः तीन प्रकार की थी– पदाति, अश्व और गज। गज सेना को काफी सुसंगठित किया गया था। मुसलमान इतिहासकार बताते हैं कि कालिंजर पर आक्रमण के समय महमूद ने अधिकतम संख्या में हाथी पकड़वाये थे। पैदल सैना की स्थाई संख्या थोड़ी ही होती थी। आवश्यकता पड़ने पर अस्थाई रूप से सेना की भर्ती कर ली जाती थी।

कालिंजर दुर्ग सैनिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड के अन्य दुर्गों की अपेक्षा भिन्न है। चन्देलकालीन सैनिक व्यवस्था, नीतियां और दुर्ग का निर्माण करते समय उसकी रचना बुन्देलकालीन दुर्गों एवं गढ़ियों से भिन्न है। कालिंजर का दुर्ग वास्तुकला और रक्षा कौशल की दृष्टि से भारत के अन्य दुर्गों में अत्यन्त ऊँचा एवं श्रेष्ठ स्थान रखता है। "चन्देलों के आठ दुर्ग जो इतिहास प्रसिद्ध हैं–

1. वारीगढ़, जो आजकल चरखारी में है,
2. कालिंजर , वर्तमान में बांदा जिले में ,
3. अजयगढ़, कालिंजर से दक्षिण–पश्चिम में 20 मील की दूरी पर,
4. मनियागढ़, छतरपुर में,

5. मड़फा, बांदा जिले में,

6. मौदहा, हमीरपुर जिले में,

7. गढ़, जबलपुर के निकट,

8. मैहर, जबलपुर के उत्तर में, उन सब की अलग– अलग विशेषतायें थी। साधारण रूप से सभी पर्वतों पर बने हुये थे। कालिंजर का दुर्ग मध्यकालीन भारत का सर्वोत्तम दुर्ग माना जाता है। उसकी स्थिति की महत्ता इतनी थी कि उसकी विजय सम्पूर्ण मध्य भारत की विजय मानी जाती थी। कालिंजर दुर्ग निर्माण का इतिहास भी अभी तक विवादाग्रस्त ही है।''[1]

''राजवंशों के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि जो सेना में काम करते थे उनका सबसे बड़ा कर्मचारी महा सेनापति कहलाता था राज्य की समस्त सेना उसके अधीन होती थी। सम्राट के साथ उनका व्यवहार त्याग, विश्वास देश रक्षा के लिये तत्पर रहता था। सेनापति के अतिरिक्त प्रत्येक प्रमुख श्रेणी के लिये अलग–अलग सेनापति होते थे जो विभिन्न सेनाओं की गतिविधियों का संचालन एवं देखभाल किया करते थे। सेना व्यूह का अलग उत्तरदायी कर्मचारी होता था जिसे महाव्यूहपति कहा जाता था। सेना में काम करने वाले भृत्यों को भाट कहते थे। सैनिकों को मासिक वेतन दिया जाता था तथा राजकीय कोष से नगद रूपये तथा अन्य भण्डारों से अनाज दिया जाता था। शासन के अन्य कर्मचारियों की भांति सैनिकों को रहने के लिये मकान या भूमि की व्यवस्था होती थी। चन्देल शासन व्यवस्था में आधुनिक क्षतिपूर्ति कानून जैसी सुविधा भी दी जाती थी। त्रिलोक्य वर्मन के गर्रा अभिलेख से ज्ञात होता है कि जब कभी कोई कर्मचारी युद्ध के मैदान में मरता था तो सम्राट उसके उत्तराधिकारियों व आश्रितों को जीविका के लिये गांव प्रदान करते थे।''[2]

''अन्य राजवंशों के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चन्देल शासन व्यवस्था में कुछ और कर्मचारी थे जो विनिमय, सैन्य भोजनादि परिकल्प और चार–प्रयोग में लगाये गये थे। ये कर्मचारी

---

1. चन्देल और उनका राजत्वकाल, डा0 केशव चन्द्र मिश्रा, पृ0 166, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी 1954।

2. वही, पृष्ठ 165, 166।

थे महासाधनिक, यमाममिक और महापिलुपति। महापिलुपति हाथियों की सैना का प्रमुख रक्षक था।"[1]

सम्राट स्वयं युद्ध के मैदान में सैन्य संचालन करता था। अत्यन्त प्राचीन काल से ही हिन्दू शासकों का यह पवित्र कर्तव्य माना जाता था। वे शौर्य, रणकौशल, वीरता , योग्यता, दक्षता, एवं स्वदेश प्रेम के लिए अपने सैनिकों के समक्ष एक संस्समरणीय और आदरणीय उदाहरण बनाते थे, जिससे कि सैनिकों में वीरत्व के मनोवेग एवं मनोभावों की जागृति एवं ऊर्जा उत्पन्न हो सके।

मध्ययुगीन सैनिक व्यवस्था अन्य सैनिक व्यवस्थाओं की अपेक्षा सुसज्जित, सुरक्षित एवं सारगर्भित थी। किलों से सम्बन्ध रखनेवाले कर्मचारी को कोटपाल कहते थे, उसे कहीं कहीं पर दुर्गाध्यक्ष भी कहते थे।

"कालिंजर भारत वर्ष के सर्वाधिक प्रसिद्ध किलों में से एक है, इसने महमूद गजनवी की सैना के घेरे को रोका। जिस पहाड़ी के शिखर पर यह दुर्ग बना है, यह बुन्देखण्ड के दक्षिणी–पूर्वी छोर पर स्थित है। इसकी ऊँचाई समुद्री सतह से 1230 फीट है। विंध्य की समीपवर्ती श्रृंखला से यह लगभग 1200 गज चौड़े उच्चाटन द्वारा अलग होता है। इसके पूर्व में कालिंजर की लघु श्रेणियां चली गई। कालिंजर पर्वत का कूट थोडे. से तरंगित होने वाले मंच के समान है जिसका वृत्त 4–5 मील के बीच में है। यह अपने पूरे विस्तार के चतुर्दिक छोर से आरंभ होने वाले किले की प्राचीर से परिवेष्ठित है। किले का निर्माण 25–25 फीट मोटे पत्थर के ढोकोले स्थूल आकार मे हुआ है[2]" जो कि सैन्य दृष्टि से अत्यन्त सुरक्षित माना जाता है जिससे कि दुश्मन आकमण करते समय अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहें। दुर्ग की व्यूह रचना काफी जटिल और उच्च कोटि की है। कालिंजर दुर्ग अत्यधिक ऊँचाई पर बने होने के कारण पूर्व मुगलकालीन शासकों एवं मुगल कालीन शासकोंको इसमें प्रवेश करने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा।

" डा0 राय के मतानुसार यशोवर्मन ने कालिंजर को गुर्जर प्रतिहारों से नही राष्ट्रकूटों से जीता था। श्री चिन्तामणि विनायक वैल एवं सर कनिंघम के अनुसार अशोक वर्मन ने

1. चन्देल और उनका राजत्वकाल, डा0 केशव चन्द्र मिश्रा, पृ0 166, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी 1954।

2. वही, पृष्ठ 165, 167।

कालिंजर को कलचुरी राजा से जीता था। "[1]

" डा0 वासुदेव विष्णु मिरासी के मतानुसार 7वीं शताब्दी के अन्त में त्रिपुरी शाखा के कलचुरी वंशीय नृपति वामराज देव ने वर्द्धन साम्राज्य का पतन देखकर अवसर का लाभ उठाया और कालिंजर के अजेय दुर्ग पर आकमण किया और अपने अधिकार में कर लिया एतिहासिक आधार पर कलचुरी शासकों द्वारा कालिंजर विजय युक्ति संगत प्रतीत होती है। इसके पश्चात प्रतिहारों ने कालिंजर दुर्ग पर आधिपत्य कर लिया था।"[2]

" संवत् 1011 के खजुराहों शिलालेख के आधार पर यशोवर्मन ने सरलता पूर्वक भगवान शंकर के निवास भूत कालिंजर गिरि पर विजय प्राप्त कर ली थी। यह इतना ऊँचा था कि मध्यान्ह में सूर्य की प्रगति को भी बाधित करता था। इन विषयों ने यशोवर्मन को तत्कालीन शासकों की श्रेणी में प्रथम खड़ा कर दिया। याशोवर्मन ने अपनी साम्राज्य सीमा को उत्तर–दक्षिण, पूर्वी तथा पश्चिम चतुर्दिक में फैलाया । उसने अपनी सेना को सुव्यवस्था के लिये कालिंजर में अतिविशाल दुर्ग रक्षित शिविर भी बनवाया। कुछ दिनों के पश्चात यही कालिंजर चन्देल राजाओं की सैनिक राजधानी एवं सैन्य गतिविधियों सैन्य संचालन का केन्द्र बिन्दु बन गया।[3]"

"गण्डदेव व धंग देव ने भी अपनी कीर्ति का प्रचार–प्रसार किया। महमूद गजनवी ने लाहौर के शासक आनन्दपाल पर आक्रमण किया तो उसने भी इनकी सहायता करने के लिये कालिंजर से सेना भेजी थी। गण्डदेव ने महमूद के आक्रमण को रोकने के लिये 45 सहस्त्र अश्वारोही तथा 390 गजों से सुसज्जित एक विशाल सेना लेकर प्रस्थान किया। इस सेना का केवल यही उद्देय था कि महमूद कालिंजर तक न आ पाये, उसे मार्ग में ही रोकदिया जाये।"[4]

"इब्दुल अजहर के अनुसार– महमूद शीघ्रता से एक समीपवर्ती नदी के तट पर आ पहुंचा जहां गण्डदेव की सेना का शिविर लगा हुआ था। महमूद ने बुद्धि से काम लिया, उसने अपने

---

1. "वीरों का गढ़ कालिंजर " श्री वासुदेव त्रिपाठी पृ0 66, प्रकाशक– भानु प्रिंटिंग प्रेस, दतिया, म0प्र0, 1996।

2. वही, पृष्ठ 66 ।

3. वही, पृष्ठ 67, 68 ।

4. वही, पृष्ठ 69, 70 ।

सैन्य बल से नदी का प्रवाह पलट दिया। परिणाम यह हुआ कि गण्डदेव का शिविर जल मग्न हो गया। इसके पश्चात इतिहासकार लिखता है कि वामिन उद्दौला ने अपनी पैदल सेना की एक टुकड़ी भेजी। उभय पक्षों की टुकड़ियां अपनी संख्या में वृद्धि करती रहीं। भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ जब रात्रि का आगमन हुआ तो दोनों सेनायें अपनी ओर लौट गयीं।"[1]

"इतिहासकार निजामुद्दीन लिखते हैं कि सुल्तान ने नन्द की सेना के समक्ष अपना शिविर गिराया तब तत्काल उसने दूत भेजा कि वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले परन्तु नन्द ने उसे अस्वीकार कर दिया। सुल्तान ने विचार किया कि नन्द की सेना को देखना चाहिये। उसने एक ऊँचे स्थान पर चढ़कर नन्द की सैन्य शक्ति का अवलोकन किया। इतिहासकारों ने मुस्लिम शासकों के शौर्य की प्रशंसा का वर्णन किया और गण्ड देव की वीरता को हिलाकर उसे पलायनवादी बताया है।"[2]

"महमूद के पास उत्साह तथा शौर्य की कमी नहीं थी। वह कालिंजर विजय के लिये आगे बढ़ा। दुर्ग पर विजय के लिये पाँच लाख सैनिक, बीस सहस्त्र पशुओं तथा 500 हाथियों का काफिला था। उसने कालिंजर दुर्ग के चारों ओर घेरा डाल दिया और समस्त आवागमन के मार्ग अवरुद्ध कर दिये, इस कार्य में महमूद की नीति यह थी कि इस दुर्ग में आवश्यक सामग्री न पहुंचे तो राजपूत आत्म समर्पण कर देंगे। अन्त में दोनों दल (महमूद व गण्ड देव) ऊब गये और दोनों शासकों के मध्य एक सम्मानजनक संधि प्रस्ताव पास हुआ। महमूद के साथ जितने भी कवि और विद्वान आये थे उन्होंने कालिंजर और गजनी के शासकों का सम्मिलित गुणानवाद किया।"[3]

"कालिंजर में विद्याधर देव तथा देववर्मन देव दोनों शासक प्रजापालक के रूप में विख्यात हुये परन्तु कीर्तिवर्मन देव ने अपनी सैन्य शक्ति परिवर्द्धन हेतु पर्याप्त प्रयास किया। विभिन्न अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने अपने पतनोन्मुख वंश को बड़ी दृढ़ता के साथ सम्भाला। यह

---

1. "वीरों का गढ़ कालिंजर " श्री वासुदेव त्रिपाठी पृ0 66, प्रकाशक– भानु प्रिंटिंग प्रेस, दतिया, म0प्र0, 1996।

2. वही, पृष्ठ 71 ।

3. वही, पृष्ठ 72 ।

उसकी वीरता और सैन्य शक्ति का प्रतीक था। इसके पश्चात सलक्ष्ण वर्मा राज्य अधिकारी हुआ, उसने अपनी प्रबल सैन्यशक्ति के द्वारा मालवों तथा चेदियों को पराजित करके अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया।"[1]

"मदन वर्मन देव का अतिशय प्रमावपूर्ण शासन रहा। उसने कालिंजर, खजुराहो, महोबा, तथा गुजरात के शासकों को भी पराजित किया। उसमे पराजित करने का तरीका उसी प्रकार का था जैसे कृष्ण ने कंस को पराजित किया। परमार्दिदेव सं0 1165 में राज्य सिंहासन पर बैठा। चन्देलवंशीय अमिलेखों, जनश्रुतियों तथा चन्द्रवरदायी के काव्य के अनुसार परमार्दिदेव और पृथ्वीराज चौहान का युद्ध काफी समय तक चला। पृथ्वीराज ने अपनी सेना के द्वारा महोबा विजय के पश्चात कालिंजर दुर्ग पर भी आक्रमण किया और विजय प्राप्त की।"[2]

"आल्हा महाकाव्य के अनुसार आल्हा ने परमाल को कालिंजर तक पहुंचाने में उसका साथ दिया। परमाल के पास पर्याप्त सैन्यशक्ति थी। नियत समय में उरई के रणक्षेत्र में उभयपक्षीय सेनायें एकत्रित हुयीं। वेतवा नदी के समीप मुहानी नामक ग्राम के समीप परमार्दि देव परमाल की विशाल सेना एकत्रित हुयी और उसी समय आल्हा से परमाल का परिचय हुआ।"[3]

"हसन निजामी ताजनामा अतहर (1205–17 ई0) में कुतबुद्दीन एबक ने कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण किया। परमाल ने युद्ध क्षेत्र में सामना न करने के कारण कुतबुद्दीन ऐबक की पराधीनता को स्वीकार कर लिया तथा उसने कालिंजर के हाथी घोड़े तथा समस्त शक्ति पर अपना कब्जा कर लिया।"[4]

"डॉ0 हेमचन्द्र राय के अनुसार त्रिलोक वर्मन ने पूर्वजों के सुप्रसिद्ध सैनिक केन्द्र कालिंजर को मुसलमानों के अधिकार से वापिस ले लिया था। 1233ई0 में सुल्तान इल्तुतमिश का उपशासक मसरुद्दीन तेजी ने कालिंजर पर आक्रमण कर फिर से अपने वश में कर लिया था।"[5]

---

1. "वीरों का गढ़ कालिंजर" श्री वासुदेव त्रिपाठी पृ0 72, 73, प्रकाशक– भानु प्रिंटिंग प्रेस, दतिया, म0प्र0, 1996।

2. वही, पृष्ठ 74, 75 ।

3. वही, पृष्ठ 75 ।

4. वही, पृ0 76 ।

5. वही, पृ0 79 ।

"त्रिलोक्य वर्मन के अनुसार वीरवर्मन सिंहासनारूढ़ हुआ। इसके पास असंख्य योद्धा थे परन्तु सुल्तान नसरुद्दीन के शासनकाल में उलूल खां ने सम्पूर्ण भू–भाग पर आक्रमण किये और कब्जा कर लिया। फरिश्ता के अनुसार मालवा से कड़ा तक राजाओं की सेनाओं को नष्ट कर दिया था।"[1]

"भोजवर्मन, वीरवर्मन का उत्तराधिकारी था जो 1282 में सिंहासनारूढ़ हुआ। भोजवर्मन ने कालिंजर राजधानी पर शासन तो किया किन्तु धीरे– धीरे चन्देल शासकों की सैन्य शक्ति और शूरवीरता का पतन होता गया। इस प्रकार चन्देलराज्य शनैः शनैः खण्डों के रूप में छिन्न भिन्न हो गया।"

"सतीलेख के अनुसार 1300 ई0 से लेकर 1540 ई0 तक कालिंजर पर मुसलमानों के अनेक आक्रमण हुये किन्तु उन्हें कोई स्थायी सफलता प्राप्त नहीं हुयी। 1530 व 1531 में इतिहासकारों के अनुसार हुमायूँ ने कालिंजर पर दो बार आक्रमण किया किन्तु असफल रहा।"[2]

"कीर्ति सिंह के शासन काल में 1545 ई0 में शेरशाह सूरी ने कालिंजर पर आक्रमण किया, वह विजयी हुआ परन्तु इसका उपभोग न कर सका। दुर्भाग्यवश तोपखाने का एक गोला फट गया जिससे उसके शरीर में भयानक घाव हो गये और उसके प्राण पखेरू उड़ गये।"[3]

"कीर्तिसिंह के उत्तराधिकारी राजा रामचन्द्र थे। इसके पश्चात अकबर ने कालिंजर दुर्ग पर अपनी विजय पताका फहराई थी। इतिहासकारों के अनुसार अकबर के समय से लेकर बुन्देला महाराज छत्रसाल के समय तक कालिंजर मुसलमानों के हाथ में रहा।"[4] इस प्रकार से कालिंजर दुर्ग पर चन्देलों तथा मुस्लिम शासकों का आधिपत्य रहा। इतिहास साक्षी है कि कालिंजर दुर्ग में कितने वीर और शूरवीर आये और इस संसार से चले गये।

---

1. "वीरों का गढ़ कालिंजर " श्री वासुदेव त्रिपाठी पृ0 80, प्रकाशक– भानु प्रिंटिंग प्रेस, दतिया, म0प्र0, 1996

2. वही, पृष्ठ 81 ।

3. वही, पृष्ठ 82 ।

4. वही, पृ0 83, 84 ।

कालिंजर दुर्ग की रचना यहां के दर्शनीय धार्मिक स्थल, यहां की भव्य मूर्तियां, सैन्य गतिविधियों के लिये बनाये गये विभिन्न प्रकार की प्राचीरें, दरवाजे और बुर्जें आज भी अपनी मूक भाषा में संकेत कर रहे हैं। भारतीय योद्धाओं की शूरवीरता और राजपूत आक्रमणों के समय उनकी भंगिमा और कृतित्व का कालिंजर दुर्ग निरूपण कर रहा है।

चन्देलों की सैन्य संचालन विधियां और उनसे सम्बन्धित कालिंजर दुर्ग का सैनिक महत्व उपरिमुखी एवं अधोमुखी साहित्य का प्रस्तुतीकरण करके कालिंजर दुर्ग की महानता का व्याख्यान कर रही है। कालिंजर दुर्ग ने सम और विषम परिस्थितियों को देखा और सहन किया। विषम परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के आक्रमणकारियों से लोहा लिया और उत्थान एवं पतन की घड़ियों में अंगड़ाई लेता हुआ आज भी अन्य किलों एवं गढ़ियों की तुलना में श्रेष्ठता का प्रतिनिधत्व कर रहा है।
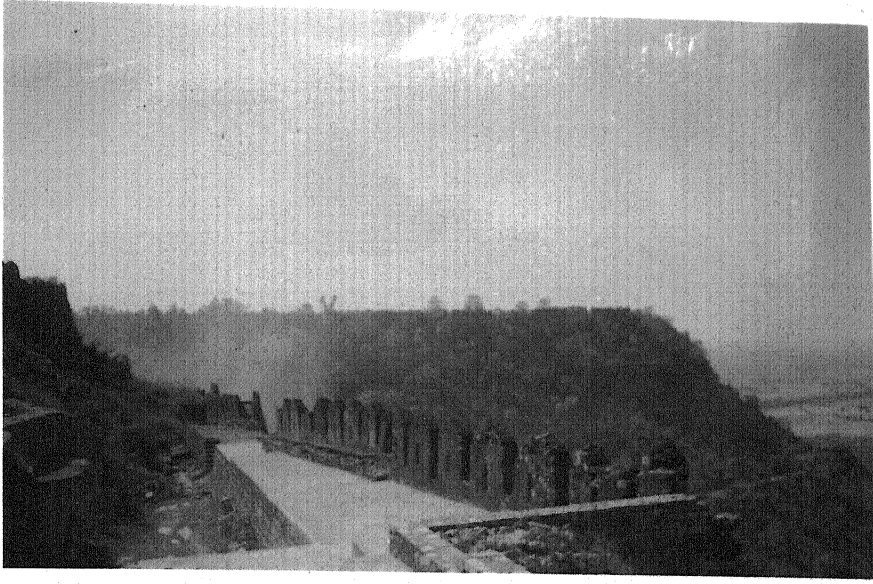
कालिंजर दुर्ग की प्राचीर
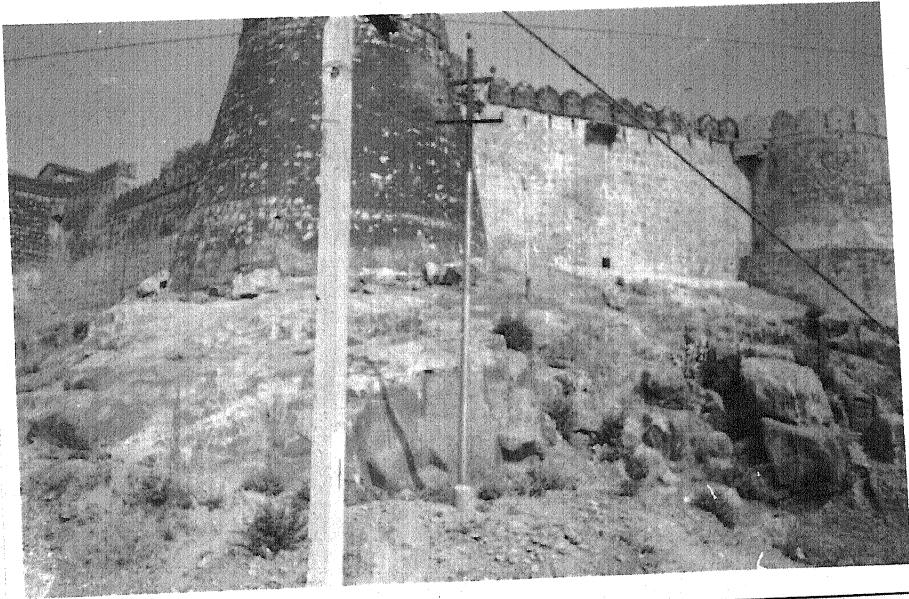
कालिंजर दुर्ग का बुर्ज एवं प्राचीर

मुख्य पथ, कालिंजर दुर्ग में प्रवेश हेतु

कालिंजर दुर्ग का सातवां दरवाजा (आलमगीर दरवाजा)

नीलकण्ठ मंदिर का बाहरी परिदृश्य (स्थापत्य कला)

कालिंजर दुर्ग का बुर्ज
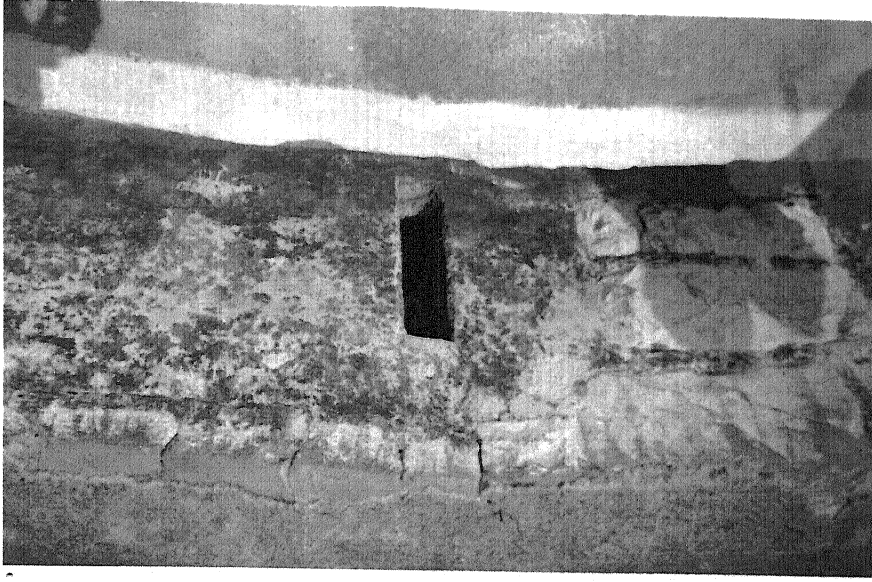
प्राकृतिक गुफा कालभैरव तक पहुंचने के लिये
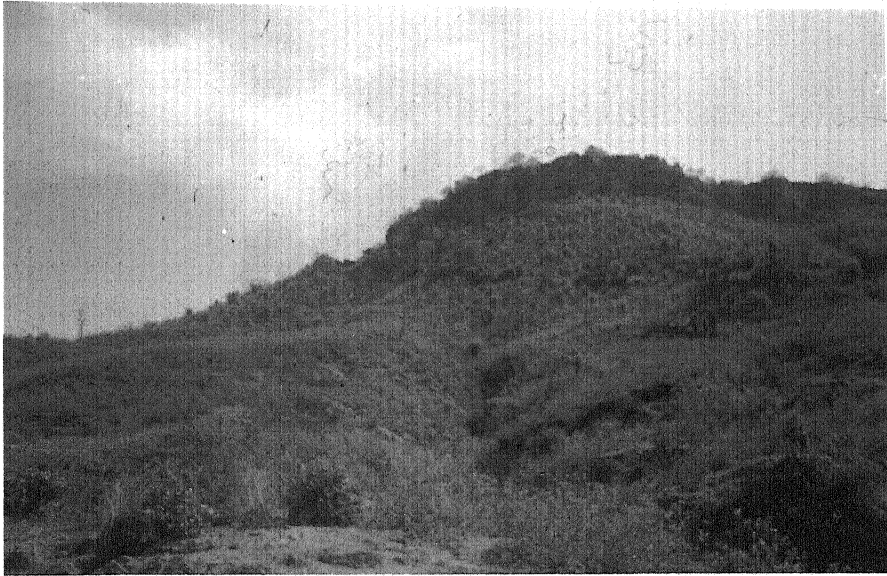
कालिंजर दुर्ग का बाहरी प्राकृतिक परिवेश

नीलकण्ठ महादेव के अंदर की स्थापत्य कला

छठवां अध्याय

झाँसी दुर्ग का सैनिक दृष्टि से मूल्यांकन

झाँसी दुर्ग का सैन्य दृष्टि से मूल्यांकन

झाँसी दुर्ग का सैनिक दृष्टि से मूल्यांकन करने पर ज्ञात होता है कि झाँसी के दुर्ग का, विशेषता के साथ निर्माण हुआ है जो बहुत ही सुदृढ़ है और युद्ध में आक्रमण के लिये विशेष उपयोगी है। भारत में इस प्रकार के दुर्ग नहीं हैं जो कि झाँसी के दुर्ग के समान महत्व और विशालता रखते हों। झाँसी का दुर्ग, विभिन्न प्रकार के सैनिक आक्रमणों, सैन्य गतिविधियों, सैन्य संचालनों एवं सैन्य रक्षा के अनुसार विशेष महत्व रखता है।

झाँसी किले के बुर्ज और दरवाजों को तोपों से सुसज्जित किया गया था जिससे कि शत्रु का मुकाबला किया जा सके। झाँसी के दुर्ग के विभिन्न बुर्ज ऊँचाई, नगर कोटि ऊँचे व निचले छिद्र सैन्य दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं। "झाँसी दुर्ग में विभिन्न बुर्जों के, विभिन्न नाम थे– "पान" नामक बुर्ज पर कड़क तोप थी जिससे गोलन्दाज गुलामगौस ने जार पहाड़ी की ओर लगे शत्रु शिविर पर गोले बरसाये थे जिससे शत्रु के 7 व्यक्ति मारे गये थे। इस दुर्ग में एक बुर्ज का नाम "बिलन्दी" था और इस बुर्ज से भी तोप दागी जाती थी। केसरी नामक बुर्ज उत्तर की तरफ है।"[1] इसका भी सैन्य संचालन की गतिविधियों के लिये विशेष महत्व है। इस प्रकार झाँसी दुर्ग के विभिन्न बुर्ज अलग–अलग महत्व रखते हैं।

सैन्य गतिविधियों का सुचारू रूप से संचालन करने के लिये तथा राज्य एवं प्रजा की रक्षा करने के लिये प्रत्येक राजत्वकाल में अनेकों उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय सैनिक मूल्यों को बढ़ाया गया। सैनिक मूल्यांकन एवं विवेचना करने पर ज्ञात होता है कि झाँसी का ऐतिहासिक दुर्ग विशेष उपयोगी है और सैन्य ऐतिहासिक एवं विवेचनात्मक धरातल पर खरा उतरता है।

---

1. झाँसी दर्शन, मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त', पृ0 29, लक्ष्मी प्रकाशन, 86 पुरानी नझाई, झाँसी 1973।

झाँसी के ऐतिहासिक किले का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि झाँसी दुर्ग ने सैन्य संचालन के उत्थान और पतन देखे हैं। राजतन्त्र और सैन्य अभ्यास की बहारें देखी हैं, बरसातें देखी हैं तथा आज अपने आपको उजड़ता हुआ देख रहा है। बुन्देलों से लेकर मराठा काल तक सैन्य गतिविधियों का झाँसी दुर्ग एक केन्द्र बिन्दु था। बुर्ज, छिद्र एवं मारक सैन्य दृष्टि से बड़े उपयोगी हुआ करते थे। सैन्य विशेषज्ञों, रक्षा विशेषज्ञों की सूझ–बूझ के अनुसार इन सभी का निर्माण किले में कराया गया था। झाँसी की रानी ने अंग्रेजों से युद्ध करते समय झाँसी दुर्ग का उपयोग किया और उस किले में सैन्य संचालन के अनेक प्रकार के रक्षत्व के तरीके एवं विधियों को अपनाया था।

झाँसी दुर्ग से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के तोपची थे जैसे सरदार गुलाम गौस खाँ, कुंअर खुदाबख्श तथा महिला मोती बाई जो कि अपना विशेष महत्व रखते हैं। इन तीनों का झाँसी दुर्ग एवं राज्य की रक्षा करने के लिये विशेष योगदान रहा।

झाँसी के दुर्ग का भारतीय इतिहास में अधिक महत्व है क्योंकि इस दुर्ग में महारानी लक्ष्मीबाई ने प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम को वीरता से लड़ा। अंग्रेजी सरकार झाँसी की प्रत्येक घटना और रानी की सभी सैन्य संचालन गतिविधियों पर नजर गड़ाये हुये थी। अंग्रेजी फौज का सामना करने के लिये झाँसी शहर के समस्त दरवाजों पर सैन्य सुरक्षा की विशेष व्यवस्था की गई थी। दुर्ग के सारे बुर्जों पर तोपें लगा दी गई थीं। दक्षिण बुर्ज की तोपें गुलाम गौस खाँ, पूर्व और उत्तर की तोपों का भार बख्शी और पश्चिमी की तोपों का संचालन रघुनाथ सिंह को सौंप दिया था।

अंग्रेजी तोपें रात–दिन इन तोपों का मुकाबला कर रही थीं। झाँसी रानी के तोपचियों में शौर्य और वीरत्व के लक्षण थे अंग्रेजों की तोपों का वीरता और बहादुरी के साथ मुकाबला कर रहे थे। समय की परिस्थितियों के उतार–चढ़ाव ने तोपों की भीषण मार को देखा। इस प्रकार चार–पांच घंटों तक रानी की तोपों ने अच्छा काम किया था। रानी तोपचियों को विभिन्न प्रकार के

उपहार देकर उनमें वीरता एवं पराक्रमता का बीजारोपण कर उन्हें प्रोत्साहित कर रही थीं जिससे कि उनका मनोबल नहीं टूटे बल्कि सैन्य गतिविधियों में तल्लीनता से जुड़े रहें।

1857 के हमलावर अंग्रेजों पर मराठा सैन्य शक्ति गोलियों की बौछार करने लगी थी। रानी के सैनिकों की गर्जनाओं से आसमान और नगर गूंज रहा था। रानी की गोलियों ने निशाना बनाया और तोपों के प्रहार से गोरे सिपाहियों को धराशायी करने में अधिक से अधिक प्रयास किया। "लैफ्टि0 डिक और लैफ्टि0 मैकलेजोन सीढ़ियों पर चढ़कर सैन्य गतिविधियों को संचालित कर सैनिकों को प्रेरित कर रहे थे। रानी झाँसी की फौज में कुछ विश्वासघाती लोग भी थे जैसे– वीर अली, अली बहादुर, दूल्हा जू जैसे व्यक्तियों ने रानी का साथ न देकर अंग्रेजी सैन्य शक्ति का साथ दिया। इतिहास साक्षी है रानी के सैनिकों में विश्वासघातीय और विश्वासपरस्त–दो प्रकार के लोग थे।

"विलियम शैक्सपियर के अनुसार सैन्य संचालन विश्वासपरस्तों से कराया जाता है न कि विश्वासघातियों से।[1]" सेन्ट्रल इण्डिया फील्ड फोर्स सेनापति सर ह्यूरोज के नेतृत्व में 21 मार्च 1858 को अंग्रेजी झाँसी द्वार पर आ पहुंची। ह्यूरोज ने समीप से नगर का भौगोलिक निरीक्षण कर निर्णय लिया कि घेराबन्दी करके नगर पर आधिपत्य स्थापित किया जाय। झाँसी की रक्षा हेतु 10,000 राजपूत मराठाओं तथा विलायतियों के अतिरिक्त 400 अश्वारोही सहित 1500 सैनिक वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई के नेतृत्व में सन्नद्ध खड़े थे। झाँसी की सेना के साथ भवानी, शंकर कड़क बिजली जैसी विशाल तोपों के अतिरिक्त 40 अन्य बड़ी छोटी तोपें भी थीं।[2]"

सर ह्यूरोज की सोच कुछ अन्य विलायती अफसरों से भिन्न थी। उसने झाँसी नगर को चारों तरफ से घेर लिया था और गोलीबारी प्रारम्भ कर दी थी। दुर्ग को जीतने के लिये रानी अपने दृढ़ संकल्प एवं साहस के बल पर झाँसी की छोटी सी सेना लेकर विश्व की तत्कालीन आधुनिकतम सेना का सामना कर रही थी। झाँसी सेना के पास आधुनिकतम सैन्य शक्ति का अभाव

---

1. मैकवैथ, के0एन0 खण्डेलवाल, एक्ट II सीन III

2. झाँसी (इतिकृत्व, स्थापत्यकला, सांस्कृतिकी) डॉ0 रुद्रकिशोर पाण्डेय, पृष्ठ 22, आदित्य रश्मि प्रकाशन, लश्कर, ग्वालियर, म0प्र0 1990।

था जबकि बिलायती सैन्य शक्ति अधिक पौरुषवान एवं आधुनिकतम बन्दूकों, तोपों, गोले, बारूद एवं अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित थी।

झाँसी दुर्ग के सैनिकों के पास प्राचीन अस्त्र–शस्त्र थे जैसे– भाला, बरछी, तलवार (खडग), तथा अपनी रक्षार्थ ढाल, कवच, और सिर स्त्राणि। भुजाओं में बाजूबन्द पहन कर वे अपने शरीर की रक्षा करते थे। झाँसी रानी ने स्वयं 1857 के युद्ध के लिये तलवार और ढाल का प्रयोग किया जिससे कि फिरंगियों से अन्तिम समय तक संघर्ष करती रहीं। अंग्रेजों और रानी झाँसी के सैनिकों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ है कि विलायती सैनिक आधुनिकतम अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित थे परन्तु झाँसी के सैनिकों के सामने उनके मनोबल में उत्कर्ष और अपकर्ष इतिहासकार एवं सैन्यशास्त्रियों के अनुसार होता रहता था।

हयूरोज ने रानी का पीछा किया और भारी सेना लेकर कालपी पहुंच गया। रानी झाँसी अंग्रेजों की फौज से बड़ी वीरता के साथ मुकाबला कर रही थी। रानी के तोपची और तोपखाना भी रानी के साथ–साथ सैन्य गतिविधियों में पूरा साथ दे रहे थे। सैनिक और सैन्य शक्ति का आपस में गठबन्धन था। हयूरोज बराबर अपनी फौज का नेतृत्व कर रहा था एवं रानी को धराशायी करने में जुटा हुआ था। मैक्स पार्सन के कथनानुसार "रानी की सम्पूर्ण सेना का विनाश होने के बाद भी अंग्रेज घुड़सवार रानी के साथ बराबर युद्ध लड़ रहे थे।"

झाँसी की सैन्य गतिविधियों का मूल्यांकन करने पर ज्ञात होता है कि सैनिकों में देश भक्ति की पराकाष्ठा थी। बलिदान और वीरत्व की भावना थी। युद्ध कौशल में अद्वितीय थे परन्तु झाँसी के इर्दगिर्द अन्य शासकों ने झाँसी की रानी का साथ नही दिया। सैनिकों का मनोबल रानी ने बढ़ाया तथा झाँसी रानी की सैन्य शक्ति में हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकार के सैनिक थे जिन्होंने कि स्वतन्त्रता की नींव का पत्थर रखा था। 1857 के युद्ध में अत्यधिक राष्ट्रीय भावनात्मक एकता में अपकर्ष एवं राज्य की रक्षा के प्रति समर्पण की भावना कम परिलक्षित होती है।

रानी लक्ष्मीबाई का ओरछा की सरकार के दीवान नत्थे खां से युद्ध झाँसी की रक्षा का प्रथम युद्ध था। इस युद्ध में रानी का कुशल सैन्य संचालन व पराक्रम जन साधारण का

शत्रु सेना से भय मुक्त हो, जूझते हुये नगरवासियों की राष्ट्रीय भावनात्मक एकता का प्रतीक था।

"झाँसी रासो के अनुसार नत्थे खां ने दतिया नरेश से सैनिक सहायता मांगी थी और ओरछा की लाज की रक्षा की थी। जब उसने रानी लक्ष्मीबाई का साहसिक पत्र पढ़ा, यह वर्णन इस प्रकार का है।"[1]

"जौ गंगा परसाद (दूत) भूप सौं विजय बखानौ।

हाथ जोर कुव्वस करी फेर मखानौ बात।

करौ फौज तैयार अब, लाज तिहारे हात।"

जैसे ही रानी लक्ष्मीबाई को नत्थे खां की फौज का झाँसी पर आक्रमण करने को आने का समाचार मिला, वैसे ही नत्थे खां को युद्धस्थल में सबक सिखाने की तैयारी में जुट गई। डा0 वृन्द्रावन लाल वर्मा ने रानी के युद्ध की तैयारी के सम्बन्ध में रानीलक्ष्मी बाई उपन्यास में लिखा है–जवाहर सिंह, कर्नल जमा खां, भाऊ बख्शी, गुलाम गौस खां जैसे तोपची अपनी बड़ी एवं छोटी तोपें लेकर ओरछा दरवाजे पर पहुंच गये और सभी बुर्जों पर तोपें रख दी गईं। सैनिक परकोटों और फाटकों पर बन्दूकें लेकर डट गये। इस प्रकार से रानी झाँसी सभी सैनिकों का मनोबल बढ़ा रही थीं और उनके मन में झाँसी की रक्षा करने के विचारों को भर कर उनको साहसिक प्रेरणा दे रही थीं।

नत्थे खां ने 4 सितम्बर,1857 को 20 हजार सैनिकों के साथ आक्रमण किया पर आक्रमण का समाचार सुन चारों तरफ की सभी जातियों के लोग राज्य की रक्षा के लिये, जिनके पास जो अस्त्र थे, लेकर जूझने के लिये आ जुटे। कवि मदनेश ने बड़ी सुन्दरता से उस युद्ध का कल्पनात्मक शैली में वर्णन किया।[2]

यह सुध जब परवासिन पाई, चले सुमट नरगन समुदाई।

निज–निज रुच बांधे हतमारा, जह तह भय सब करहि प्रचारा।

टीकमगढ़ के जो हम पावें, तिनको गुदल बेग ही आरें।

घर–घर से एकिक दो भाई, तहां जात छत्तीस दिखाई।"

---

1. जिला विकास पुस्तिका झाँसी, 2002, पृ0 15–16, सूचना एवं जन–सम्पर्क विभाग, झाँसी, उ0प्र0।

2. वही पृष्ठ 16

"रानी झाँसी की सहायता करने के लिये जन सैलाब उमड़ पड़ा तथा झाँसी के लोगों के पास जो हथियार थे उनको लेकर युद्ध के मैदान में राज्य की रक्षा के लिये उतर पड़े। रानी को झाँसी का पूर्ण जन सहयोग मिल रहा था। प्रत्येक जाति के लोग कन्धे से कन्धा मिलाकर नत्थे खां की फौज के जवानों से लड़ रहे थे। इस जन युद्ध का वर्णन लक्ष्मीबाई रासो में इस प्रकार है"–[1]

लपट–झपट के कुरिया धावें गहि कठिन कृपान।

जहं तहं गुदलन लागे, टीकमगढ़ के ज्वान।

चमरा दै दै गारीं, 32 मारें बरछी तान।

बाढ़ई हनै बसूला, चीड़ारें सिर की सान।

नत्थे खां के युद्ध का सैनिक और ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन करने पर ज्ञात होता है कि रानी की पैदल फौज का कर्नल कुंअर खुदाबख्श तोपखाना प्रधान गुलाम गौस खां और राजा गंगाधर राव की नाट्यशाला की सुन्दरी गायक और नर्तकी से योद्धा बनीं। मोतीबाई ने ओरछा की लड़ाई में दीवान नत्थे खां की फौज पर गोलाबारी करना सैनिक दृष्टि से विश्लेषणात्मक और विवेचनात्मक तथ्यों का स्पष्टीकरण कर रहा है।

झाँसी युद्ध में गोले और तोपों की लड़ाई, जो ह्यूरोज से हुई थी, वह भी सैन्य दृष्टि से एक विशेष महत्व रखती है। डा0 वृन्दावन लाल वर्मा के अनुसार रानी झाँसी के नारी होने पर भी उनका सैन्य संचालन करने का तरीका एक युद्ध से कम नहीं था। उनकी सूझबूझ में सर्वोच्चता, उत्कृष्टता और प्रेरणता के स्पष्ट संकेत दिखलाई पड़ते थे। उनका सैन्य संचालन इतिहासकारों, साहित्यकारों एवं रक्षा विशेषज्ञों के अनुसार एक चिरस्मरणीय है जो कि उनके वीरत्व और शूरवीरता के स्पष्टीकरण का प्रतीकात्मक दृष्टव्य है।

झाँसी दुर्ग बंगरा नामक पहाड़ी पर बना है जिस कारण से यह सैन्य महत्व भी रखता है। पहाड़ियों पर किले का निर्माण करना शत्रुओं से बचाव की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी

---

1. जिला विकास पुस्तिका झाँसी, 2002, पृ0 16, सूचना एवं जन–सम्पर्क विभाग, झाँसी, उ0प्र0।

एवं सुरक्षित है। किलों में पाई जाने वाली प्राचीरें, विशाल दीवारें, दीवारों की ऊँचाई, चोड़ाई, मोटाई सैन्य दृष्टि से बनाई जाती थीं। दीवारों की चौड़ाई इतनी होती थी कि उन पर अश्वारोही एवं पैदल सैनिक आसानी से पहरा दे सकें और दुश्मनों की सैन्य शक्ति के आक्रमण करते समय उनकी देखरेख कर सकें।

झाँसी दुर्ग में बारादरी है जो सैन्य दृष्टि से अधिक मूल्य रखती है। कहा जाता है कि राजा गंगाधर राव ने 1838–53 ई0 में यह बारादरी अपने भाई के लिये निर्मित करवाई थी। बारादरी का मध्य भाग पुष्प तथा ज्यामितीय आकृतियों से प्रचुर रूप से चित्रित हैं। बारादरी की छत सैन्य दृष्टि से अधिक महत्व रखती थी क्योंकि इसका उपयोग अधिक से अधिक सैन्य क्षमता के लिये और सैन्य अभ्यास के लिये किया जाता था। बारादरी केवल स्थापत्य कला की दृष्टि से ही नहीं बल्कि सैन्य दृष्टि से अधिक महत्वता को प्रदर्शित करती है।

युद्ध के समय झाँसी दुर्ग में बना पंचमहल बड़ा उपयोगी था क्योंकि दुश्मन के आक्रमण के समय राजा और उसके सहयोगी (रक्षा विशेषज्ञ) बैठ कर गुप्त मंत्रणायें व वार्तालाप करते थे तथा रणक्षेत्र की विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं को तैयार कर सैन्य विभाग को प्रस्तुत करते थे। पंच महल में भू–तल तथा सभा कक्ष भी था जिसमें रानी और उसके सहयोगी ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ उनसे लड़ने के लिये सैन्य नीतियों का प्रत्यारोपण करते थे जिससे कि उन नीतियों को जनहित और दुर्ग हित की रक्षा के लिये लागू किया जाये और दुश्मन के दाँत खट्टे कर दिये जायें।

दुर्ग की दीवारें अत्याधिक मोटी बनाई जाती थीं तथा आन्तरिक और बाहरी परत के बीच में मिट्टी भर दी जाती थी या अन्य रासायनिक पदार्थों का प्रयोग किया जाता था जिससे कि दुश्मन की दागी गई तोपें व बन्दूकों की गोलियां दीवारों से टकरायें तो धूल–धूसित हो जायें और दुश्मन को निराशा प्राप्त हो। दीवारों को बनाते समय इस प्रकार के सुझाव दिये जाते थे कि सैन्य दृष्टि से उनकी पराकाष्ठा का महत्व बना रहे और दुश्मन के छक्के छूट जायें।

दुर्ग में प्रवेश मार्ग हमेशा घाटीमय या सीढ़ी नुमा बनाये जाते थे जिससे कि शत्रुओं के द्वारा आक्रमण करते समय उनको परेशानी का सामना करना पड़े। सैनिक दृष्टि और

स्थापत्य कला की दृष्टि से दुर्ग की संरचना को रूप दिया जाता था। दुश्मनों के पैदल सैनिकों को अक्सर इन किलों को जीतने के लिये अधिक से अधिक परेशानी का सामना करना पड़ सकता था। घाटीमय एवं ढालूमय मार्ग झाँसी दुर्ग में आज भी मौजूद है जो कि सैन्य शक्ति का प्रतिनिधित्व कर उस प्राचीन इतिहास की, जब किला निर्मित हुआ था, कहानी को मूक बन कर प्रस्तुत कर रहे हैं। ये मार्ग सुन्दरता के साथ पैरों को थकान पैदा करने वाले व शत्रुओं को हार दिलाने वाले थे जिससे कि शत्रु अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहे।

झाँसी दुर्ग में मुख्य मार्ग जो आज विद्यमान है, घाटीमय है, एवं मिनर्वा चौराहे से मुख्य द्वार को जोड़ता है तथा अन्य मार्ग रानी झाँसी पार्क से आता है। वह मार्ग भी मुख्य दरवाजे से जुड़ा है। दुर्ग में मुख्य दरवाजे के अलावा गुप्त मार्ग,(गुप्त दरवाजे तथा सुरंगें) शत्रुओं के आक्रमण के समय बड़ी उपयोगी होते थे। झाँसी के दुर्ग में ग्वालियर जाने के लिये सुरंग है जोकि आपातकालीन स्थिति में बड़ी उपयोगी थी। उस सुरंग के द्वारा राजा–रानी व राज्य के अन्य कर्मचारी अपने राज्य को छोड़कर किसी अन्य राज्य में पलायन कर सकते थे। सुरंगों का किले में एक विशेष महत्व था जिसके रक्षार्थ उनका निर्माण करवा कर सैन्य संचालन के अध्याय में उनकी महत्ता को जोड़ सकते हैं।

दुर्ग में काल कोठरी है जो सैन्य दृष्टि से अपना मूल्य रखती है। जब दुश्मनों के सैनिक आक्रमण करते थे उस समय जो शत्रु सैनिक बन्दी बना लिये जाते थे उनको काल कोठरी में सजा दी जाती थी। काल कोठरी में स्वच्छ हवा का अभाव था तथा घनघोर अंधेरा रहता था। रोशनदान व खिड़कियों का अभाव रहता था जोकि शत्रुओं के बन्दी सैनिकों के जीवन को कष्टमयी बना देता था। काल कोठरी में नमी की अधिकता, प्रकाश का अभाव तथा विषैले कीड़े मकोड़े डालकर शत्रुओं को शारीरिक व मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता था जिससे कि वह मनोवैज्ञानिक रूप से अपने मालिक का साथ न देकर विरोधी पक्ष का साथ दे सके। काल कोठरियों की दशा अत्यन्त सोचनीय और विचारणींय थी। बहुत से बन्दियों को कालकोठरियों के वातावरण से विभिन्न प्रकार की बीमारियां हो जाती थीं। अस्थमा और दमा जैसे रोगों का जन्म कालकोठरियों में जीवन व्यतीत करने से हो जाते थे।

दुर्ग में फाँसी स्तम्भ भी है जिसे राजा गंगाधर राव ने निर्मित कराया था। राजा गंगाधर राव के राज्य में अपराधियों को और शत्रु बन्दियों को फाँसी देने की परम्परा थी। फाँसी स्तम्भ की लम्बाई लगभग 20–25 फीट ऊँची होती थी। उसके ऊपर एंगिल और पुली लगी रहती थी जिसका उपयोग फाँसी देते समय किया जाता था। फाँसी स्तम्भ के निचले सतह पर गड्ढा होता था, ऊपर से अपराधी एवं बन्दियों को लटका दिया जाता था और नीचे की ओर उसे पुली व रस्सी के सहारे धीरे धीरे लाते थे और मृत्यु दण्ड दे दिया जाता था।

दुर्ग में दरवाजे ढलवां लोहा और शीशम, सागौन जैसी लकड़ियों के बनाये जाते थे। उन दरवाजों में छोटे और बड़े आकार की कीलें व कब्जे तथा बाहरी और भीतरी पर्त पर लोहा चढाकर उन दरवाजों को मजबूती प्रदान की जाती थी। दरवाजे इतने मजबूत बनाये जाते थे कि जिससे शत्रु पक्ष के हाथी अपने मस्तिष्क और पैरों के द्वारा उन दरबाजों को न तोड़ सकें। दरवाजों में मोटे मोटे सरिये, ढलवां लोहे के लगाये जाते थे जो मजबूती के प्रतीक थे।

झाँसी दुर्ग में जो मुख्य दरवाजा है उसके दांयी और बांयी ओर तोपें रखीं हुई हैं। इनका सम्बन्ध दुर्ग की रक्षार्थ है तथा दरवाजे के ऊपरी हिस्से में गणेश प्रतिमा है जिनको सिद्धि विनायक कहा जाता है जो धर्म की भावना से जुड़े हुये हैं परन्तु सैनिक दृष्टि से भी गणेश, हनुमान प्रतिमायें और सैयद बली की मजारें अपना विशेष महत्व रखती हैं। कौमी एकता के साथ साथ तीनों देव बलशाली हैं और सैनिकों के विचारों में परिवर्धन, परिमार्जन एवं प्रयोजनार्थ मानसिक रूप से सैनिकों को सैन्य संचालन के लिये तैयार करते थे।

दरवाजे पर लगी हुई प्रतिमाओं का सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक, धार्मिक, सैनिक एवं स्थापत्यकला की दृष्टि से दुर्ग निर्माता के गुणात्मक एवं धार्मिक पहलू की विवेचना करता है। झाँसी दुर्ग में चार दरवाजे हैं, ये दरवाजे सुरक्षा व्यवस्था को दृष्टिगत रखते हुये बनाये गये। झाँसी दुर्ग के दरवाजों को विभिन्न प्रकार की मेहराबों, वीथिकाओं एवं अर्द्धवृत्ताकार मंचों से सुसज्जित किया गया तथा रक्षार्थ दरवाजे बनाते समय उनमें विशिष्ट प्रकार का चूना, ग्रेनाइट पत्थर, लोहा, कोड़ियों का चूना लगाया गया जोकि दुर्ग के दरवाजों को अधिक से अधिक मजबूती प्रदान करते थे। दरवाजों पर वास्तुशास्त्र की दृष्टि से मीनाकारी एवं नक्काशी कर दी जाती थी।

दुर्ग की सुरक्षा हेतु दरवाजों पर सुरक्षा कक्ष बनाये जाते थे जिनमें सैनिक बैठकर या खड़े होकर किसी भी शत्रु एवं गुप्तचरों की गतिविधियों की देखभाल कर सकें। बदलती हुई परिस्थितियों में दरवाजों का महत्व घटता चला गया, क्योंकि जब दुर्ग की देखभाल नहीं हो रही है तो समयानुसार दरवाजे भी जीर्ण–शीर्ण अवस्था में परिवर्तित होते चले गये। झाँसी दुर्ग का प्रत्येक दरवाजा अपने अतीत की कहानी को मूक बनकर दोहरा रहा है, क्योंकि आज उन दरवाजों की उपयोगिता नहीं रही, परन्तु इतिहास एवं सैन्य शास्त्र बताता है कि इन दरवाजों को 1857 के विद्रोह की कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा।

दुर्गों का सैनिक मूल्यांकन करने पर स्पष्ट होता है कि सेनायें किस प्रकार अपने राजा के बर्चस्व को कायम रखने के लिये अपने आपको न्योछावर कर दुर्ग एवं राज्य की रक्षा करती थीं। सैनिकों में त्याग, बलिदान एवं पौरूष की भावना जागृत करने हेतु राज्य प्रशासन एवं सैन्य प्रशासन की ओर से उनमें आदर्शवाद, नैतिकवाद, प्रयोजनवाद एवं प्रयोगवाद के संकेत्त एवं गुणों को भर दिया जाता था।

सैन्य दृष्टि की उपयोगिता गुणात्मक एवं परिमाणात्मक की ओर से सहजता, सौम्यता, त्यागता के रूपों को निरूपित करती है। सैन्य शक्ति अपने आप मे उच्च्च कोटि की प्रणाली या तन्त्र है। जिसके द्वारा आदिकाल से वर्तमान युग तक रक्षार्थ उसकी उपयोगिता रही है। सैन्य शक्ति का लाभ राज्य को बड़े तार्किक, क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित्त ढंग से लेना चाहिये।

समय के बदलते हुये आयामों ने सैन्य शासन के तरीके एवं प्रविष्ठयों को बदला है। आधुनिक युग में सैन्य संचालन की गतिविधियों में काफी परिवर्तन आ रहा है। प्राचीन सैन्य पद्धतियों के स्थान पर नई सैन्य पद्धतियों ने स्थान ले लिया है। प्राचीन अस्त्र–शस्त्रों की उपयोगिता धीरे–धीरे पलायन होती जा रही है और उसके स्थान पर नई तकनीकी का विकास हो रहा है।

प्राचीनतम सैन्य शक्ति, दुर्गों एवं गढ़ियों का धीरे–धीरे क्षरण होता जा रहा है। समयानुकूल परिस्थितियों में प्राचीन सैन्य शक्ति मात्र दुर्ग में बने शस्त्रागारों एवं संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। दुर्ग में बने सैन्य शक्ति के कारखाने जैसे– तोप निर्मित करने वाले, एवं बारूद बनाने

वाले आज उपेक्षित एवं अनुपयोगी पड़े हुये हैं। राजतन्त्र खत्म हो जाने के साथ लोकतन्त्र ने पदार्पण किया तो दुर्ग और अस्त्र–शस्त्र की महत्ता घटती चली गई।

सैन्य शक्ति का मूल्यांकन करने पर स्पष्ट होता है कि झाँसी दुर्ग की सैन्य शक्ति फिरंगियों की सैन्य शक्ति की तुलना में संकीर्ण थी। परन्तु 1857 के विद्रोह से स्पष्ट झलकियां देखने को मिलती हैं कि उनके पास सैन्य बल कम होने पर भी वे बराबर संघर्ष करते रहे और अपने लक्ष्य की प्राप्ति की ओर बढ़ते रहे। परिस्थितियों ने उनका साथ नहीं दिया नहीं तो 1857 में ही देश को आजादी मिल जाती।

दुर्ग का सैन्य दृष्टि से मूल्यांकन करने पर ज्ञात हुआ कि दुर्ग का निर्माण ऐसे स्थानों पर किया जाता था जहां कि दुर्गमता एवं जटिलता का शत्रुओं को पहुंचने में सामना करना पड़े। अतीत के दुर्गों की वर्तमान समय में कोई उपयोगिता नहीं रही फिर भी दुर्ग आज अपने वीरत्व, सैनिकत्व एवं राजकत्व की कहानी का प्रस्तुतीकरण कर रहे हैं क्योंकि प्रत्येक दुर्ग एवं गढ़ी का सैन्य दृष्टि से अपने स्वयं का मूल्य एवं पटाक्षेप है।
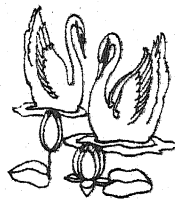
सातवां अध्याय

कालिंजर दुर्ग का सैनिक दृष्टि से मूल्यांकन

कालिंजर दुर्ग का सैनिक दृष्टि से मूल्यांकन

वह कौन चतुर कलाकार है जिसने इस रंगीली सृष्टि की रंचना की ? उसकी असीमित वृद्धि, अदम्य उत्साह और अनन्त कला कौशल को देखकर कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो आश्चर्य चकित होकर नत–मस्तक न हो जाता हो। इतनी विशाल वसुन्धरा में जहां दृष्टि डालिये वहां उसकी कलात्मकता और प्रकृतिआत्मकता की नवीन झाँकियां एवं झलकियां दृष्टिगोचर होती हैं।

कालिंजर विंध्य पर्वत से सम्बद्ध है, जहां नीलकण्ठ महादेव ने विषपान किया, शैव तीर्थ के रूप में विख्यात हुआ परन्तु शीघ्र ही राजतन्त्र का पर्याय बन गया। अश्व हलचल, गज वीरकत्व, साहसी एवं वीर पुरूषों के कलरव से यह भू–भाग गुंजायमान हो गया था। कलचुरी गुर्जर प्रतिहार, चन्देल, मुगल, बुन्देला, अंग्रेजी प्रभुत्व, चौबेराजवंश से कालक्रम अनुसार धर्म, शौर्य, वीरता, प्रतिष्ठा, साहस, कर्तव्य बोधता, कर्तव्य परायणता के इस संगम पर आकर अपने आपको गम्भीर चिंतन में डुबो देने के लिये बाध्य कर दिया।

पर्वतीय दुर्ग में स्थान–2 पर शैल, प्राचीरों पर उत्कीर्ण विशाल प्रतिमार्गों, छाटे छोटे उपमार्ग, छोटे एवं बड़े दरबाजे, बाहरी और आन्तरिक दीवारें कालिंजर के गौरवशाली अतीत के दिग्दर्शन में सक्षम हैं। कालिंजर दुर्ग में शैव, वैष्णों एवं जैन धर्म की प्रतिमायें भी हैं जो भारत वर्ष की सर्वधर्म समभाज रूपी जीवन सरिता की प्रतीक एवं संकेतांक हैं।

कालिंजर शौर्य, वीरता और रक्षा के लिये धनाढ्य और अडिग दुर्ग माना जाता है। कालिंजर दुर्ग धर्मस्व, रक्षस्व एवं वीरस्व की ख्याति के लिये आज इतिहास की कहानी को धारण किये हुये है। इतिहासकारों, शोध विशेषज्ञों, स्थापत्यकाल विशेषज्ञों, सैन्य विशेषज्ञों, धर्माचार्यों एवं पुराण ज्ञाताओं के अनुसार कालिंजर दुर्ग एक धारा प्रवाह सैन्य शक्ति एवं धारण शक्ति का केन्द्र बिन्दु माना जाता है इसकी विशेष पहचान है।

कालिंजर दुर्ग में प्रवेश करने से पूर्व कालिंजर ग्राम से गुजरना पड़ता है। जब कालिंजर दुर्ग में प्रवेश किया जाता है तो घाटी मार्ग से होता हुआ ऊपर की ओर रास्ता जाता है, जिसके दोनों तरफ सदाबहार जंगल हैं। इसमें घनी झाड़ियां एवं विशाल वृक्ष लगे हुये हैं जोकि प्राकृतिक सुरम्यता के प्रतीक हैं। प्रवेश मार्ग की रचना तो अति ही विचित्र है– प्रवेश के समय क्रमशः परिवेष्ठित होने वाला दुर्ग का प्राचीर कहीं दुहरा कहीं तिहरा तथा कहीं चोहरा दिखाई पड़ता है। कालिंजर दुर्ग अजेयता में ग्वालियर, जयपुर का आमेर, नाहरगढ़, जयगढ़, बीकानेर का लालगढ़ एवं चित्तौड़ के गढ़ से भी अधिक का महत्व है। यही कारण है कि सदियों तक आक्रमणकारी इस दुर्ग की विजय को सम्पूर्ण उत्तर भारत की विजय मानते रहे।

कालिंजर दुर्ग का घाटी मार्ग वास्तव में जटिल एवं दुरूह है। प्रत्यक्षवादियों के अनुसार कालिंजर दुर्ग का प्रमुख घाटी मार्ग एवं उपमार्ग वीरता की प्रतिष्ठा का प्रतिवर्द्धन कर रहा है। मुख्य मार्ग एवं उपमार्गों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि आक्रमणकारी जब आक्रमण करते थे तो उनको विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता था। घाटी मार्ग इतना पेंचीदा हैकि शत्रु पक्ष की सेनायें किले को जीतने के लिये प्रयासरत रहती थीं, परन्तु उनको निराशा व असफलता ही हाथ लगती थी।

कालिंजर दुर्ग के भग्नावशेष खण्डहरों को देखने से सहसा उर्दू के शायर की यह उक्ति स्मृति पटल पर अंकित हो जाती है –

"खण्डहर बता रहे हैं कि इमारत बुलन्द थी।"

कालिंजर दुर्ग पर जाने के लिये प्रमुख गौपुर को लेकर कुल 7 फाटक द्वार थे। यह मार्ग कुछ तंग है, बीच–बीच में ऊँचा–नीचा भी है। कहीं–कहीं पर कुछ गहराई भी है। कुछ द्वारों को सीढ़ी नुमा भी बनाया गया था जिससे कि सैनिकों को दुर्ग में प्रवेश करने के समय कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था और शत्रु पक्ष के सैनिक आक्रमण करते समय थक जाते थे।

प्रथम द्वार को आलम द्वार के नाम से जाना जाता है। इसे सम्भवतः मुगल सम्राट के पुत्र मुराद ने पुनः निर्माण कराया था। इसके फाटक की ऊँचाई, दुर्ग की ऊँचाई का 1/4

भाग है जो आज भी अतीत के इतिहास को जीवंत किये हुये है। यहां परकोटे का आन्तरिक भाग लगभग 8 फीट चौड़ा है। प्रथम फाटक सामरिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। जब शत्रु आक्रमण करते थे तो प्रथम फाटक इतना अधिक सुदृढ़ था कि उसको शत्रु भेद सकने में असमर्थ रहते थे। यह फाटक आज भी कालिंजर दुर्ग के सैन्य आक्रमण की वीरगाथा का प्रस्तुतिकरण कर रहा है।

प्रथम द्वार को पार करने के पश्चात द्वितीय द्वार तक का मार्ग अत्यन्त टेढ़ा–मेढ़ा और जटिल है। यह काफिर घाटी के नाम से प्रसिद्ध, है इसको "मंगेज" द्वार के नाम से भी जाना जाता है। अपनी प्रकृति एवं सैन्य स्थिति से यह द्वार अत्यन्त सुदृढ़ था। द्वितीय फाटक की बनावट में प्रथम फाटक की अपेक्षा अत्यन्त जटिलता और पेंचीदापन था।

द्वितीय फाटक के पश्चात तीसरा फाटक "चण्डीद्वार" के नाम से विख्यात है। यहां दो द्वार एक साथ ही बने हैं, इसे चोर बुर्ज भी कहते हैं। तृतीय फाटक भी सामरिक दृष्टि से अधिक महत्व रखता है। प्रथम द्वार से लेकर तृतीय द्वार तक का भाग सैन्य संचालन के प्रकार्यों के लिये आत्मबोघ का ज्ञान कराता है, यह तीनों द्वार सैन्य शक्ति की चुनौती एवं कसौटी पर खरे उतरते थे।

भारतीय संस्कृति में द्वार एवं फाटकों का सम्बन्ध केवल धर्मत्व से ही नहीं है बल्कि वे रक्षकत्व जैसी क्रियाओं को संचालित्त करने के लिये एक विशेष प्रणाली का प्रतिनिधित्व करते हैं। आक्रमण की स्थिति में दरवाजे एक प्रभुसत्ता का संकेतांक हैं जो कि वीरत्व की प्रमाणिकता का प्रदर्शन करते हैं। प्रत्येक द्वार सैन्य शक्ति का प्रवर्तक तथा सैन्य संचालन सम्बन्धी गतिविधियों की शोभा बढ़ाते हैं। कालिंजर दुर्ग मुकुट के रूप में शिरोमणि बन कर उसका प्रदर्शन कर रहा है।

चतुर्थ, पंचम, षष्टम द्वारों का भी सैन्य दृष्टि से विशेष महत्व था। चतुर्थ द्वार का नाम स्वर्गारोहण है, इसे बुद्ध भद्रक द्वार भी कहते हैं। सैन्य संचालन की गतिविधियों की यह दुर्ग आज गवाही को प्रस्तुत कर रहा है। पंचम द्वार को हनुमान द्वार के नाम से जाना जाता है। कालिंजर दुर्ग के द्वारों में कठिनता एवं जटिलता है परन्तु आकर्षण एवं तटस्थता का अभाव है। पंचम द्वार सामरिक दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ है एवं शत्रु आक्रमण करते समय प्रथम द्वार से लेकर पंचम द्वार तक

आते–आते उनको विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता था। कई बार शत्रु सेना को इन द्वारों का भेदन न करने की वजह से असफलता का सामना करना पड़ता था और उनकी विचारध ारायें सकारात्मक से नकारात्मक एवं भाव से बेभाव में बदल जाती थीं। यह द्वार आदर्श नमूने एवं अनौखेपन का खण्डहर द्वार है। इसका सैनिक दृष्टि से मूल्यांकन किया जाये तो केवल धुंधलेपन के संकेत मिलते हैं। षष्ठम फाटक लाल द्वार के नाम से प्रसिद्ध है, यह द्वार मार्ग के ऊपरी पहाड़ी के किनारे से फौजी बेड़े की ओर जाता है। इस प्रकार षष्ठम द्वार अन्य द्वारों की अपेक्षा भिन्नता को प्रदर्शित करता है। कालिंजर दुर्ग विभिन्न प्रकार के फाटकों से निर्मित है। प्रत्येक फाटक के भग्नावशेष आज भी अवस्थित हैं। बदले परिवेश ने दुर्ग द्वारों की परिस्थिति को बदल दिया है। प्रत्येक द्वार सैन्य शक्ति से धर्मपरायणता, कर्तव्यपरायणता एवं कर्तव्य पराकाष्ठा का उद्‌बोध कराता है।

सप्तम द्वार "नैमी द्वार" या बड़ा दरबाजा के नाम से जाना जाता है। यह फाटक काफी विशाल व सुदृढ़ है, इस फाटक को बनाते समय अत्यधिक मजबूती प्रदान की गई थी। इस फाटक के पास सैन्य शिविर था।

कालिंजर दुर्ग के समस्त फाटकों का सैन्य दृष्टि से मूल्यांकन किया जाये तो प्रत्येक फाटक का एक विशेष महत्व है। फाटकों का निर्माण करते समय निर्माणकर्ता ऊँचाई, मोटाई, चौड़ाई व गहराई को ध्यान में रखते थे। फाटकों को विशेष आकार में जैसे त्रिकोंणीय, चतुष्कोंणीय एवं अर्द्धवृत्तकार संरचना देकर इनको मजबूती का अवलम्बन प्रदान किया जाता था। फाटकों के किनारे चूना एवं अन्य मजबूत पदार्थों से मजबूती प्रदान कर बनाये जाते थे जिससे शत्रु पक्ष आक्रमण करते समय दुर्ग के द्वारों को भेद न सकें। द्वार के ऊपरी हिस्से में गुम्बद बनायी जाती थी जो कि ढालू होती थी न कि समतल जिसे कि शत्रु पक्ष के सैनिक भेद न सकें।

प्रत्येक दुर्ग में सैनिक दृष्टि से शत्रु आक्रमण को रोकने के लिये परकोटे का निर्माण कराया जाता था। कालिंजर दुर्ग के परकोटे की ऊँचाई सामान्यतः 40 या 50 फीट प्रतीत होती है। दुर्गों में रक्षा की दृष्टि से परकोटे एक व्यवस्थापन को दृष्टिगोचर करते हैं। प्रत्येक दुर्ग में परकोटे की ऊँचाई भिन्न होती थी परन्तु कालिंजर दुर्ग का परकोटा अभेद्य और अजेय है जिसे कोई भी शत्रु

पक्ष नहीं तोड़ पाया। परकोटे दुर्ग की गवाही हैं जिनके द्वारा शहर और दुर्ग की शत्रु पक्ष से रक्षा की जाती थी। परकोटे एक निरोधक थे जिनको कि न्यायोचित एवं तार्किक तरीके से उनकी परिपक्वता का परिमाणीयकरण एवं प्रमाणीकरण किया जाता था। परकोटे प्रतिरक्षा के गवाह एवं गवाक्ष हैं।

दुर्ग की वाह्य दीवार पूरी शहर को घेर कर या राजधानी को घेर कर बनायी जाती थी। आन्तरिक और बाहरी रूप से वारवीकन्स का निर्माण किया जाता था जिससे कि दुश्मन को जीतने के लिये उस पर अधिक से अधिक शस्त्रों द्वारा आक्रमण किया जा सके। कालिंजर दुर्ग की दीवार के चारों तरफ आन्तरिक व बाह्य दृष्टि से वारवीकन्स बनाये गये थे तथा दुर्ग में लूप होल्स का भी निर्माण किया गया था जिसके द्वारा चारों तरफ देखभाल कर सकते थे और आने–जाने वाले दुश्मनों की निगरानी की जा सकती थी। वारवीकन्स और लूप होल्स सुरक्षा की दृष्टि से बड़े उपयोगी व महत्वपूर्ण थे। दुर्ग का निर्माण करते समय वारवीकन्स व लूप होल्स का सैन्य दृष्टि से, ऐतिहासिक दृष्टि से, स्थापत्यकला की दृष्टि से और राज्य की जासूसी गतिविधियों की दृष्टि से विशेष महत्व है।

कालिंजर दुर्ग की दीवालों का अवलोकन करने पर ज्ञात हुआ है कि उनकी मोटाई, चौंड़ाई व ऊँचाई सुरक्षा की दृष्टि से काफी उपयुक्त थी। जब इस दुर्ग का निर्माण किया गया होगा तो शिल्पकारी, मीनाकारी तथा दुर्ग निर्माणकर्ताओं ने इसका विशेष ध्यान रखा होगा। दुर्ग निर्माणों मे किले की सुन्दरता पर अधिक से अधिक जोर देकर उसको मजबूती प्रदान की होगी।

दीवालों की आन्तरिक व बाहरी पर्तों के बीच में, कंकरीट, कौंड़ी का चूना, उड़द की दाल, मिट्टी तथा अन्य रासायनिक पदार्थों को भरकर उनका निर्माण किया गया था जो सुरक्षा की दृष्टि से अत्यधिक मोटी व मजबूत थीं। दीवालों के पीछे सैनिकों को दौड़ने के लिये चौंड़ी पट्टी का भी निर्माण किया गया। बाहरी दीवाल के निचले हिस्से में ढालू हिस्सा भी बना दिया जाता था जिसे lowed chastan कहते हैं। दीवालों की मोटाई का अधिक ख्याल रखा जाता था जिससे कि दुश्मन द्वारा किये गये आक्रमण असफल हों।

कालिंजर दुर्ग के चारों ओर जंगल है जो कि सुरक्षा की दृष्टि से बड़ा उपयोगी हैं। वर्तमान समय में पर्यावरणीय एवं वातावरणीय परिवर्तन होने के कारण जंगल नष्ट हो चुके हैं। जंगलों का उपयोग सुरक्षात्मक दृष्टि से और सैन्य दृष्टि से बड़ा ही उपयोगी था। कालिंजर दुर्ग के चारों ओर उस घने जंगल में खूंखार वन्य पशु भी भ्रमण किया करते थे जिससे कि दुश्मन आक्रमण करते समय वन्य पशुओं से भयभीत रहें। कालिंजर दुर्ग के पूर्वी और उत्तरी हिस्से में काफी घनी वनस्पति है जिसमें कि बड़े–बड़े विशालकाय सदाबहार वृक्ष उस दुर्ग की शोभा को सुशोभित कर रहे हैं।

वनस्पति और वन्य पशुओं के द्वारा दुर्ग को सुरक्षा प्रदान की जाती थी परन्तु बदलते हुये समय में वनस्पति और वन्य पशुओं को नष्ट कर उनके अस्तित्व को खतरे में डाल दिया है। आज भले ही कालिंजर दुर्ग की उपयोगिता नहीं है परन्तु ऐतिहासिक धरोहर, सैनिक और धार्मिक दृष्टि का विवेचनात्मक तथ्यों को ध्यान में रखते हुये उसका मूल्यांकन किया जा सकता है। आज भी एक विचारणीय प्रश्नचिन्ह लेकर चिन्तन करने के लिये मजबूर करता है।

किले के पश्चिमी और पिछले हिस्से से पाताल गंगा निकलती है। इसे कालिंजर महत्तम में वाण गंगा नाम से सम्बोधित किया गया है। यह भी सैन्य और सुरक्षा दृष्टि से कालिंजर दुर्ग के लिये बड़ी उपयोगी रही होगी। इसे जल दुर्ग भी कह सकते हैं क्योंकि दुर्ग की सुरक्षा वनस्पति और वन्य पशओं के साथ साथ जल भी करता है।

विस्तारपूर्वक अध्ययन करने पर कालिंजर दुर्ग तीन प्रकार के दुर्गों में समाहित दिखाई पड़ता है। अगले हिस्से में घनी वनस्पति है जिस कारण इसे वन्य दुर्ग भी कह सकते हैं और पश्चिमी और पिछले हिस्से में नदी बहती है इसलिये इसे जल दुर्ग भी कह सकते हैं तथा पर्वत पर बने होने के कारण इसे पर्वत दुर्ग कहते हैं।

कालिंजर दुर्ग की संरचना भारत वर्ष के अन्य दुर्गो से भिन्न है। सैन्य दृष्टि से, सुरक्षा दृष्टि से, यह दुर्ग अपने सिर को ऊँचा किये हुये अपने अतीत का साक्षी बना हुआ है।

कालिंजर दुर्ग का एक लम्बा इतिहास है जिसने विभिन्न शताब्दियों में और विभिन्न शासकों के समय में कई प्रकार के युद्ध लड़े। कालिंजर दुर्ग सभी दुर्गों से कुछ अलग है।

कालिंजर दुर्ग में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के कुण्डों का भी सैन्य दृष्टि से बड़ा महत्व है। इसमें प्रमुख रूप से कम्बोटा तालाब, चौपरा कुन्ड, सीता कुन्ड, पाताल गंगा, बुद्धा बूढ़ी तालाब तथा शनीचरी तालाब इत्यादि प्रमुख हैं। इन तालाबों की सैन्य दृष्टि से बड़ी उपयोगिता थी परन्तु आज वर्तमान समय में समस्त तालाब अनउपयुक्त और जीर्ण–शीर्ण हो चुके हैं। सैन्य दृष्टि से मूल्यांकन करने पर ये कुन्ड और तालाब उस समय उपयुक्त थे। जब दुश्मन बाहर से आक्रमण करते थे तो दुर्ग में रहने वाले लोगों के लिये इन तालाबों का पानी अपनी जीवन रक्षा के लिये उपयोग किया करते थे। कालिंजर दुर्ग के समस्त तालाबों को, प्रस्तर काटकर बनाया गया है। तालाबों का पानी पीने के लिये, धार्मिक अनुष्ठानों तथा धार्मिक पर्वो में उपयोग किया जाता था।

"कुण्ड कालिंजर दुर्ग में सैन्य दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। यह कुन्ड छठवाँ स्रोत कुन्ड है। इसका व्यास लगभग 12 फीट और पानी कुन्ड के ऊपर से पहाड़ी के नीचे जाता रहता है। कुछ लोग इसे मनोरथ कुन्ड भी कहते हैं। इसमें शस्त्र रखे जाते थे। सन् 1812 ई0 में यहीं से कर्नल मोंटेण्ड्रल ने गोलावारी की थी तथा धावा बोला था। इस हमले में सैकड़ों जाने गई थीं इसके पश्चात सन्धि हो गई थी। इस स्थान पर दुर्ग दीवाल की ऊँचाई लगभग 50 फीट थी।[1]

दुर्गों का निर्माण करते समय ऊँचाई का विशेष ख्याल रखा जाता था। सैन्य एवं सुरक्षा की दृष्टि से कालिंजर दुर्ग की ऊँचाई भी एक उद्‌बोधता का रूप धारण किये हुये है। ऊँचाई का किले की स्थापत्यकला, सुरक्षात्मक तत्वों एवं प्रतिमानों के आधार पर किले पर अरूणोदय, सूर्योदय एवं चंद्रोदय, संस्कृति सभ्यता, सैन्य संचालन, सैन्य गतिविधियों एवं सुरक्षात्मक गतिविधियों के प्रतिनिधित्व की आख्या कर सकते हैं।

कालिंजर दुर्ग की ऊँचाई अधिक होने से इतिहासकार एवं सैन्य शास्त्रियों के मतानुसार ये दुर्ग अभेद्य और अजेय रहा है। शत्रु आक्रमण करते समय इस ऊँचाई के कारण अपने

---

1. वीरों का गढ़, कालिंजर, वासुदेव त्रिपाटी, पेज 42, प्रकाशक– भानु पिंटिंग प्रेस, दतिया, म0प्र0, 1996

लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहे। इस किले को जीतने के लिये राजपूत एवं मुगल शासकों ने विभिन्न प्रयास किये। इस ऊँचाई के कारण कहीं पर प्रोत्साहित हुये तो कहीं पर हतोत्साहित। ऊँचाई दुर्गों में एक विशेष महत्व रखती है। इतिहासकारों के अनुसार कम ऊँचाई होने पर दुर्ग को जीता जा सकता है परन्तु अत्यधिक ऊँचाई होने पर शत्रु को दुर्ग जीतने के लिये कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता था।

आधुनिक युग की भांति प्राचीनकाल की सेना के साथ भी चिकित्सा समूह (Medical group) होता था। भले ही वह आज की भांति विकसित नहीं था फिर भी इसका मुख्य कार्य युद्ध के दौरान सैन्य पदाधिकारी, कर्मचारी जख्मी एवं घायल हो जाने पर उनको चिकित्सा सहायता प्रदान करना था। इनके साथ–2 पशु चिकित्सक भी होते थे जैसे– हाथी, घोड़ा, ऊँट के घायल व जख्मी हो जाने पर उनको चिकित्सा प्रदान कर सामान्य अवस्था में लाने का प्रयास किया जाता था।

महाभारत काल में भी सैन्य चिकित्सकों का उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि फिजीशियनों को शल्ययन्त्र, चिकित्सक सामग्री, घाव भरने की मरहम, पट्टी, विभिन्न प्रकार के रस और भस्में हमेशा साथ रखने चाहिये। नीति प्रकाशिका में भी ऐम्बुलेंस का उल्लेख किया गया है। राजा का अपने शिविर में औषधियों के भण्डार के साथ योग्य एवं निपुण फिजीशियनों को साथ रखना चाहिये।

मानव ने आदिकाल से ही शस्त्रों को अपने अस्तित्व बनाये रखने के लिये प्रमुख साधन माना है क्योंकि वह शस्त्रों से अपनी सुरक्षा के साथ ही समाज के अन्दर शांति एवं सुव्यवस्था कायम रख सकता है। मानव की सदा से यही प्रवृत्ति रही है कि वह कभी आक्रमणात्मक और कभी सुरक्षात्मक शस्त्रों का निर्माण करता आया है। वह शस्त्रों का निर्माण भावी युद्ध के भय से करता है और प्रत्येक युद्ध से वह नये शस्त्रों के निर्माण की शिक्षा लेता है। यदि वर्तमान समय की सभ्यता का विकास उस समय के युद्ध में न होता तो निश्चय ही मानव भविष्य के युद्ध को सम्पन्न करने के लिये अधिक भयानक शस्त्रों का निर्माण कर लेता है। इन शस्त्रों से शत्रु पर सफल आक्रमण

करने के लिये उसे युद्ध कौशल में परिवर्तन करना पड़ता है क्योंकि शत्रु पराजित करने की नवीनतम विधि सोचता रहता है। इसीलिये तो कहा गया है कि–

"शस्त्रों से सम्बन्धित सभी कुछ युद्ध द्वारा ही निर्धारित हुआ है और शस्त्र युद्ध विधियों को परिवर्तित करते हैं।"

धनुर्वेद नामक ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार के शस्त्रों का वर्णन किया गया है। अग्निपुराण में भी विभिन्न प्रकार के धनुषों एवं शस्त्रों का वर्णन है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार के अस्त्र और शस्त्रों का वर्णन है जिसके द्वारा सैन्य शास्त्री चिन्तन कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये विभिन्न प्रकार के शस्त्रों का अविष्कार करके अपने आपको मजबूत कर सकता है।

कालिंजर दुर्ग ने कई प्रकार के युद्धों का सामना किया तथा समस्त युद्ध तलवार, भाला, कटार, तोप एवं बारूदी गतिविधियों से हुआ करते थे। अग्निपुराण, देवीपुराण एवं महाभारत के अनुसार विभिन्न प्रकार की तलवारें प्राचीनकाल से वर्तमान काल तक समयानुसार बनाई जाती थीं। इनकी बनावटों में बहुत से परिवर्तन दिखाई पड़ते थे।

तोपों को नालिका कहते थे। यह लोहे की बनी होती थीं। इसका अग्रभाग चौंड़ा होता था तथा पर्श्वभाग सकरा, नालिका लम्बी मोटी तथा काफी मजबूत व दूर मार करने वाली होती थी। इसको एक स्थान से दूसरे स्थान तक गाड़ी पर रखकर ले जाया जाता था। शेरशाह सूरी ने युद्ध के दौरान गोले एवं बारूद का प्रयोग किया था। उसी से उसका जीवनकाल गाल में समा गया था।

कालिंजर दुर्ग में यहां के दार्शनिक, धार्मिक स्थल, यहां की भव्य मूर्तियां, विभिन्न प्रकार के कुण्ड, फाटक, महल, चबूतरा आदि अपनी जीर्ण–शीर्ण अवस्था में आज भी अपनी मूक भाषा में संकेत कर रहे हैं कि भारतीय कलाकारों का वास्तविक उद्देश्य केवल प्रकृति से सौन्दर्य संचय करना मात्र न था किन्तु जीवन से जीवन, असामान्य से सामान्य, अयथार्थ से यथार्थ तथा प्रकृति से पुरुष के रहस्य को प्रकट करना भी था। इनका उद्देश्य राष्ट्र के अतीत, वर्तमान, व भविष्य को

परस्पर जोड़े रखना भी था। वीरों का गढ़ कालिंजर अनेक राजसत्ताओं से संघर्ष लेता हुआ प्रलयकारी युद्धों के भयानक दृश्यों को देखता हुआ वीर चन्देलों, बुन्देलों तथा अन्य राजपूतों के शौर्यो और स्वाभिमान की अमरगाथाओं को अपनी शिला लेखों में चित्रित किये हुये हमारी संस्कृति एवं सभ्यता के प्रहरी के रूप में आज भी अविकसित रूप से निश्छल खड़ा हुआ है।

कालिंजर दुर्ग ने अपने निर्माण काल से लेकर वर्तमान काल तक बहुत से युद्धों का अनुभव किया है। आज भी यह किला वीरगाथाओं, लोककथाओं, लोकगाथाओं एवं विभिन्न प्रकार के धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एवं सैनिक संस्कृति एवं सभ्यता को छिपाये हुये है।

बौद्धकालीन संस्कृति, जैनकालीन संस्कृति तथा सनातन धर्म हिन्दु संस्कृति के वास्तुकला का प्रतीक यह दुर्ग बुन्देलखण्ड के विंध्य पर्वत पर स्थित उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश राज्यों की सीमाओं को जोड़ता हुआ आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। काल की विषम परिस्थितियों से लोहा लेता हुआ यह दुर्ग उत्थान व पतन की घड़ियों में अंगड़ाई लेता हुआ अपने वक्षस्थल में विभिन्न ऐतिहासिक, पुरातात्विक, पौराणिक एवं धार्मिक दृष्टव्यों एवं कथाओं को अपनी आगोश में छिपाये हुये है।

पश्चाताप इस बात का है कि देश को स्वतन्त्र हुये पूरे पाँच दशक पूर्ण होने के पश्चात भी वेचारा दुर्ग मुर्गे की बांग सुनता चला आ रहा है। ऊषाकाल, सूर्योदय एवं सूर्यास्त की घटाओं को निहारता रहता है। सर्दी, गर्मी, बरसात और धूप में अतीत के इतिहास को अपने में संजोये हुये, सुखद भविष्य की परिकल्पना में आज भी आत्मविश्वास के साथ विचारणीय एवं सोचनीय दशा में मूक और मील के पत्थर की तरह अडिग खड़ा है। दुर्ग के प्रस्तर, आज भी वीरों की गाथाओं एवं सामरिक स्मृतियों को अपने में समेटे हुये उनके शौर्य और वीरता की कहानी को दुर्ग में आने वाले प्रेक्षकों, पर्यटकों, शोधकर्ताओं और पुरातात्विदों को जीवंत रूप में दर्शाते हैं। रात्रि के समय चन्द्रोदय सितारों की झिलमिलाहट एवं प्राकृतिक छटाओं में यह अभी भी खोया हुआ है। उसे अभी भी विश्वास है कि इस क्षेत्र में कोई दिव्य पुरुष अवतरित होगा जो भगवान नीलकंठ के इस पवित्र क्षेत्र का उद्धार करेगा और कालिंजर दुर्ग को एक नया स्वरूप देगा।

कालिंजर दुर्ग विभिन्न प्रकार की कलाकृतियों, ऐतिहासिक स्मृतियों तथा वीरगाथाओं की स्मृतियों को चिरस्थाई किये हुये है। कालिंजर दुर्ग दर्शनीय महत्व के साथ साथ धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सैनिक महत्व भी रखता है।

मृतप्राय कालिंजर क्षेत्र समिति का पुनर्गठन किया जाये जिसमें दोनों राज्यों के शासकीय तथा अशासकीय निर्वाचित प्रतिनिधि सदस्य हों। कालिंजर को कुटीर उद्योग धन्धों का केन्द्र बनाया जाये जिसमें वास्तुकला तथा काष्ठकला से सम्बन्धित व्यवसाय सम्मिलित किये जायें। मधुमक्खी पालन के व्यवसाय को प्रोत्साहन दिया जाये जिससे कि गरीब लोगों की जीवकोपार्जन का साधन बन सके।

किले के तीन हिस्सों में वनौषधियां तथा वनस्पतियां हैं अपने वक्षस्थल में अपार वनौषधियों एवं खनिज द्रव्यों के भण्डार छिपाये हुये है।

पर्यटन की दृष्टि से यहां कोई सुविधा नहीं है। विदेशी सैलानियों को आकर्षित करने के लिये यहां पर पर्यटन केन्द्रएवं राज्य सरकार को विभिन्न प्रकार के होटल, मोटल, टूरिस्ट कॉटेज, रिसोर्ट आदि का निर्माण करना चाहिये जिससे कि पर्यटक आकर्षित हों और कालिंजर दुर्ग का महत्व विश्व के अन्य दुर्गों की तरह बढ़े। उपरोक्त के अभाव में विदेशी एवं भारतीय पर्यटक यहां जाना पसन्द नहीं करते। उत्तर प्रदेश सरकार के पर्यटन विभाग को कालिंजर दुर्ग को एक नया जीवनदान देना चाहिये।

कालिंजर दुर्ग वर्तमान समय में जीर्ण–शीर्ण अवस्था में किन्तु उसका आयाम परिवेश, ऐतिहासिक, धार्मिक, सैनिक एवं साहित्यिक महत्व दीर्घरूप एवं उच्च कोटि का है। वह अपना विशालकाय रूप लिये हुये है।

सैन्य दृष्टि से मूल्यांकन करने पर ज्ञात हुआ कि कालिंजर दुर्ग, चित्तौड़गढ़, ग्वालियर, झाँसी, वीकानेर एवं कुम्भलगढ़ के किलों की तुलना में अपने रूप एवं आकार की पुष्टता एक पुष्करणी के रूप में कर रहा है।

आठवां अध्याय

उपसंहार :–

(1) उपलब्ध ज्ञान के संदर्भ में सैन्य दृष्टि से स्थापत्यकला का महत्व

(2) शोध कार्य में आयीं कठिनाइयाँ एवं उनका निराकरण

उपसंहार

(1) उपलब्ध ज्ञान के संदर्भ में सैन्य दृष्टि से दुर्गों की स्थापत्यकला का महत्व

दुर्गों की स्थापत्यकला एक पुष्ट एवं पुख्ता भूमिका का निर्माण करती है। स्थापत्यकला भारतीय दुर्गों के लिये एक धनन्जय का कार्य करती है। स्थापत्यकला किलों एवं गढ़ियों की संस्कृति का प्रबोधन करती है। भारतीय संस्कृति, इतिहास एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार विभिन्न प्रकार के दुर्गों की रचना, जो अलग–अलग युगों में हुई जिसका वर्णन इतिहास के पन्नों पर मिलता है एक फानूस का कार्य करती है।

स्थापत्यकला का भारतीय दुर्गों एवं गढ़ियों का ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं सैन्य दृष्टि से अवलोकन करने पर ज्ञात हुआ कि स्थापत्यकला द्वारा दुर्ग एवं गढ़ियों का अलंकरण एवं सौन्दरीकरण किया गया था। प्रत्येक दुर्ग एवं गढ़ी के लिये स्थापत्यकला कलात्मक एवं सैन्यात्मक दृष्टि से वह एक आभूषण की तरह सुशोभित एवं शोभायमान है।

स्थापत्यकला के द्वारा विभिन्न वंशों के शासकों की रुचि का पता चलता है। बुन्देलखण्ड के चन्देला एवं बुन्देला राजवंशों के शासकों के द्वारा विभिन्न दुर्गों एवं गढ़ियों का विश्लेषण कर ज्ञात होता है कि किस शासक का स्थापत्यकला के विकास हेतु कितना योगदान रहा। स्थापत्यकला प्रत्येक किले एवं गढ़ी की प्रभुता एवं प्रभुसत्ता का निरूपण करती है। स्थापत्यकला एक परिसीमन है जो विभिन्न युगों के वंशों की पहिचान की नियोज्या है।

सैन्यात्मक गतिविधियों को संचालित करने के लिये स्थापत्यकला प्रत्येक गढ़ी एवं किले के लिये परम आवश्यक है। प्रत्येक राजा दुर्ग एवं गढ़ी का निर्माण कराते समय स्थापत्यकला को विशेष महत्व देता था। स्थापत्यकला का अनुसरण न करने पर सैन्य एवं सुरक्षा की दृष्टि से किला एवं गढ़ी अपूर्ण मानी जाती थी। स्थापत्यकला से ही राज्य की प्रजा एवं दुर्ग में रहने वाले विभिन्न प्रकार के कर्मचारी, सम्पत्ति एवं सम्पन्नता की रक्षा की जाती थी। यदि स्थापत्यकला

अधिक मजबूत और सुदृढ़ है तो राज्य की सुरक्षा को अधिक सहारा मिलता था और यदि स्थापत्यकला कमजोर है तो राज्य की सुरक्षा हमेशा खतरे में रहती है।

बुन्देलखण्ड के विभिन्न किले एवं गढ़ियों का सैन्य विश्लेषणात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि स्थापत्यकला बुन्देलखण्ड के अन्य सूबों एवं प्रान्तों से भिन्न है। राजपूताना स्थापत्यशैली, मुगलकालीन स्थापत्यशैली, बुन्देलखण्ड की स्थापत्य शैली से अपने आपको भिन्नित करती है। कालिंजर एवं झाँसी दुर्गों की स्थापत्यकला का सैन्य दृष्टि से मूल्यांकन करने पर ज्ञात हुआ कि इन दोनों की स्थापत्यकला भारतवर्ष के विभिन्न दुर्गों एवं गढ़ियों से भिन्न है। कालिंजर दुर्ग अभेद्य एवं अजेय है जिसकी स्थापत्यकला चित्तोड़गढ़ के दुर्ग, जयपुर का आमेर, नाहरगढ़ एवं जयगढ़ और ग्वालियर के तोमर वंश द्वारा निर्मित दुर्ग से भिन्न है। कालिंजर दुर्ग एक पुष्ट एवं पुख्ता दुर्ग है। यह दुर्ग सैनिकों एवं सैन्य गतिविधियों को संचालित करने के लिये एक प्रदीपक एवं पथ–प्रदर्शकता का कार्य करता है।

झाँसी दुर्ग कालिंजर दुर्ग की तुलना में छोटा है और कम ऊँचाई पर बना हुआ है लेकिन झाँसी दुर्ग की स्थापत्यकला सैन्य दृष्टि से अधिक प्रमाणीकरण को प्रदर्शित करती है। झाँसी दुर्ग भी बुन्देला, मराठा एवं अंग्रेजी सरकारों का प्रवर्तक है। झाँसी दुर्ग की स्थापत्यकला का अध्ययन करने पर वह प्रतिरक्षात्मक दृष्टि से कालिंजर, अजयगढ़, मण्डफा, तालबेहट एवं दतिया के दुर्गों से कम नहीं है। झाँसी दुर्ग सैन्य दृष्टि से स्थापत्यकला के प्रतिमानों की आदर्श संरचना का प्रतिबिम्ब एवं प्रतिफल है।

दुर्गों का सैन्य दृष्टि से विश्लेषण एवं अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि प्रत्येक दुर्ग सैन्यात्मक गतिविधियों का एक प्रतिक्रियावादी रूप है। प्रत्येक दुर्ग एवं गढ़ी युद्ध रूपी प्रतियोगिता में अपनी भूमिका निभाने के लिये प्रतिमूर्ति का कार्य करती है। युग परिवर्तन होने से स्थापत्य कलाओं का धीरे–2 महत्व कम होता चला गया क्योंकि वर्तमान युद्ध प्रणाली एवं सैनिक अभ्यास प्राचीन युद्ध प्रणाली एवं सैनिक अभ्यास से भिन्न है।

वैज्ञानिक खोज, रक्षा सम्बन्धी खोज, एवं सैन्य सम्बन्धी खोजों ने प्राचीन सैन्य गतिविधियों का महत्व कम कर दिया और उनके स्थान पर आधुनिक सैन्य गतिविधियों ने अपना स्थान ग्रहण कर लिया। स्थापत्यकला दुर्ग एवं गढ़ियों में मात्र प्रतिमूर्ति बनकर रह गई।

स्थापत्यकला प्रत्येक दुर्ग एवं गढ़ी की प्रत्याभूति है जो प्रत्यागति को प्रदर्शित करती है और सैन्य गतिविधियों का बीजारोपण एवं प्रत्यारोपण का निरूपण करती है। सैन्य गतिविधियां एक प्रत्येक राजवंश के लिये प्रज्ञाचक्षु हैं जिसके द्वारा राजा की वीरता एवं योग्यता का मूल्यांकन एवं प्रतिरक्षात्मक प्रतिपक्ष का अवलोकन किया जा सकता है। कालिंजर एवं झाँसी दुर्गों की स्थापत्यकला अत्यन्त प्रशंसनीय है। इन दुर्गों में चन्देलों एवं बुन्देली राजवंशों की सैन्य योग्यता एवं क्षमता का प्रतिरूप दिखाई पड़ता है।

स्थापत्यकला सैन्य रक्षा प्रतिफल का कलात्मक एवं मीनाकारी का प्रत्यायुक्त है। झाँसी एवं कालिंजर के किले में वीरत्व की भावना को लेकर के निर्माण किया गया था परन्तु विभिन्न आक्रमणकारियों ने इन दुर्गों के वास्तविक रूप को विगाड़ दिया एवं अपने अनुसार इनको नया रूप दिया। तत्कालीन सैन्यशक्तियों ने इन दुर्गों की रक्षा भी की और विभिन्न प्रकार के आक्रमणों को सहा। स्थापत्यकला से चन्देलों एवं बुन्देलों राजवंशों की कुशल क्षमता, पुरूषत्व, वीरत्व, सैनिकत्व एवं रक्षकत्व के मूल्य एवं प्रमिमानों का वास्तवितक पता चलता है।

सैन्य दृष्टि से दुर्गों की स्थापत्यकला का महत्व मनुष्य जाति के विकास के साथ–साथ उसके ज्ञान एवं महत्वाकांक्षाओं का आभास कराता है। प्रत्येक राजा की स्थापत्यकला अन्य राजाओं से हटकर एवं भिन्न होती है जिसके आधार पर उस वंश की महत्ता का सैनिक और राजनैतिक दृष्टि से मूल्य बढ़ जाता है।

स्थापत्यकला प्रत्येक राजवंश का मस्तक है जिसके द्वारा किले एवं गढ़ियों की रक्षा होती थी तथा जिससे राजा में पाये जाने वाले वीरता के गुणात्मक एवं परिमाणात्मक बिन्दुओं का पता चलता है। स्थापत्यकला एक राजवंश की पहिचान है जिसमें राजा की सैन्य रक्षक योजनाओं, विचारों एवं भावनाओं का मार्जन मिलता है। स्थापत्यकला प्रत्येक किले के लिये मुकाबला है जिसके

द्वारा प्रत्येक शहंशाह, सिकन्दर और बादशाह अपने राज्य को बाहरी आक्रमण एवं दुश्मनों के आक्रमणों से मुक्त रखने के लिये उसका धीरे–2 विकास करता रहता था।

स्थापत्यकला दुर्ग एवं गढ़ियों का मुखौटा एवं मस्तिष्क है। वेदों, पुराणों, उपनिषदों एवं शास्त्रों में भी स्थापत्यकला के महत्तम का वर्णन है। देवी पुराण, अग्निपुराण एवं कौटिल्य द्वारा लिखित अर्थशास्त्र में स्थापत्यकला पर अधिक बल दिया गया। राजा को दुर्ग एवं गढ़ी का निर्माण करते समय सैन्य एवं रक्षात्मक दृष्टि से उसका निर्माण करवाना चाहिये। दुर्ग एवं गढ़ियों में पाई जाने वाली बुर्जें, लूप होल्स, वारवीकन्स, ऊँचाई, दुर्ग की प्राचीरें, ये सभी सैन्य दृष्टि से एक मुद्रित महत्व रखती हैं।

स्थापत्यकला सैन्य गतिविधयों को संचालित करने के लिये मूल्य रखती है जिसका मूल्यांकन करने पर ज्ञात होता है कि राजा के मस्तिष्क में सैन्य गतिविधियों की क्या रूपरेखा थी। स्थापत्यकला दुर्ग एवं गढ़ी का मोर मुकुट है जिससे उस दुर्ग की मौलिकता का पता चलता है।

समय परिवर्तन के कारण स्थापत्यकला वर्तमान में मात्र कागजों में चिन्हित, लिखित और मुद्रित है। आधुनिकता की होड़ में समस्त विश्व ने नये सैन्य तरीकों को अपनाकर प्राचीनतम विधाओं को त्याग दिया और उनके स्थान पर नये मौलिकपूर्ण सैन्य अनुसंधानों ने अपना रूप ग्रहण किया।

सैन्य गतिविधयों एवं स्थापत्यकला विभिन्न युगों में परिवर्तनशील रही है। वैदिककाल, रामायणकाल, महाभारतकाल एवं विभिन्न राजवंशों की तुलना की जाये तो सभी के तरीके भिन्न–भिन्न थे। रामायण एवं महाभारतकाल में सैन्य प्रदर्शन में धनुष बांण, खड़ग, गदा, त्रिशूल, फरसा, भाला, खंजर, कृपाण, एवं कटार का प्रयोग किया जाता था परन्तु आधुनिक युग में विभिन्न सैन्य सम्बन्धी खोजों ने इनके महत्व को नगण्य कर दिया है। आज ये शस्त्र मात्र शास्त्रागारों को अलंकृत कर रहे हैं। इन सभी शस्त्रों का अस्तित्व घटता चला गया और उनका स्थान नई सैनिक तकनीकी ने ले लिया जो नई खोज, नई परिकल्पनाओं एवं नये सिद्धान्तों पर आधारित है।

प्राचीन स्थापत्यकला की सैन्य गतिविधियों एवं संसाधनों का धीरे–2 अस्तित्व घटता चला गया और उनका स्थान नये सिद्धान्तों, मतों एवं खोजों ने ले लिया। वर्तमान युग की सैन्य तकनीकी प्राचीन सैन्य तकनीकी से अधिक कुशल एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। प्राचीन स्थापत्यकला वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक खरी नहीं उतरती। जैसे–जैसे सैन्य विज्ञान की खोज होती चली गई वैसे ही प्राचीन सैनिक महत्व घटता चला गया और सैनिक महत्व ने आधुनिकता का लवादा ओढ़ लिया।

आज सैन्य गतिविधियों में काफी तेजी से बदलाव आ रहा है जो कि बदलते हुये परिवेश के लिये उपयोगी एवं अनुपयोगी है। विकास के रास्ते बने उसके साथ–साथ विनाश के रास्ते भी बने। आज सैन्य गतिविधियों में आणुविक, नाभकीय हथियारों का प्रयोग किया जा रहा है। विभिन्न प्रकार की मिसाइल तकनीकी को विकसित किया गया जो प्रत्येक राष्ट्र के लिये कसौटी है। युद्ध के परिणाम अच्छे कम बुरे ज्यादा होते हैं। प्रत्येक सैन्य गतिविधि की शुरूआत करने पर मूल्यांकन किया जाये कि वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों को क्या उपलब्धियां मिलेंगी और क्या नहीं ?

(2) शोधकार्य में आई कठिनाइयाँ एवं उनका निराकरण।

शोधकार्य करते समय विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कुछ कठिनाइयां तो सैन्य विज्ञान से सम्बन्धित मार्ग दर्शन, पुस्तकें, शोध पत्र, संदर्भ पुस्तकें एवं मासिक पत्र–पत्रिकाओं सम्बन्धी थीं। शोध कार्य में मार्ग दर्शन व पुस्तकों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के प्रमुख सैन्य वैज्ञानिकों एवं सैन्य शास्त्रियों से वार्तालाप करने के लिये उनसे समय की माँग करना एक कठिन प्रक्रिया थी।

शोधकार्य में विभिन्न प्रकार की यात्रा करते समय कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जैसे झाँसी एवं कालिंजर दुर्ग में जाते समय वाहन सम्बन्धी कठिनाइयां, पर्यटक मार्ग दर्शक सम्बन्धी कठिनाइयां एवं बहुत सी समस्यायें फोटोग्राफी से सम्बन्धित भी हैं। झाँसी दुर्ग शहर के मध्य है इसलिये कठिनाइयां कम हुई परन्तु कालिंजर दुर्ग अधिक ऊँचाई पर होने के कारण जटिलतायें बढ़ीं। उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग द्वारा किसी भी प्रकार की सुविधा दुर्ग में नहीं है। यहां

तक कि गर्मी में जाने वाले शोधार्थी, इतिहासविद्, पुरातत्वविद्, स्थापत्यकला प्रेमी एवं सैन्य वैज्ञानिकों के लिये किसी प्रकार की न तो होटल, मोटल, टूरिस्ट कॉटेज और न ही कालिंजर दुर्ग में कहीं भी स्वच्छ पानी पीने के लिये उपलब्ध है। पर्यटक कर्मचारी मार्गदर्शन देने के लिये नहीं मिलते हैं। कालिंजर दुर्ग में अवस्थिति उत्तर प्रदेश पर्यटन कार्यालय तो है लेकिन उसमें ताला पड़ा रहता है।

शोधविद्यार्थियों के लिये कालिंजर दुर्ग में किसी प्रकार की पत्रिका उपलब्ध नहीं है, संग्रहालय मौजूद है परन्तु उसमें अक्सर ताला पड़ा रहता है जिसकी उपयोगिता शोधार्थियों के लिये मुश्किल ही नहीं बल्कि नामुमकिन भी है। शोधार्थियों के लिये झाँसी एवं कालिंजर दुर्ग में केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवं मानव संसाधन मंत्रालय के द्वारा जो सुविधायें उपलब्ध करानी चाहिये वह सुविधायें तुच्छ/नगण्य एवं अनुपयोगी हैं।

शोध छात्र एवं छात्राओं को शोध करते समय विभिन्न प्रकार के अनुसंधान केन्द्रों, रक्षा विभाग के अनुसंधान केन्द्र, पुस्तकालयों, शोध एवं परिक्षेत्रीय कार्यालयों में सम्पर्क करने की कठिनाई का सामना करना पड़ता है। पुस्तकालयों में पुस्तकें तो हैं लेकिन उनका उचित रखरखाव नहीं है या वो कैटालॉग के क्रम के अनुसार व्यवस्थित नहीं है। इस विषय में शोधार्थियों के लिये प्रमुख कठिनाई, सैन्य शास्त्र का साहित्य एवं पुस्तकों का उपलब्ध न होना है।

बुन्देलखण्ड पिछड़ा होने के कारण विभिन्न प्रकार के नगरों, उपनगरों एवं कस्बों में अच्छी पुस्तकों का एवं मार्गदर्शन का अभाव है। शोधार्थियों को सैन्य शास्त्र सम्बन्धी कठिनाइयों का निवारण करने के लिये उ०प्र० के महानगरों जैसे– कानपुर, मेरठ, बरेली, आगरा एवं लखनऊ के पुस्तकालयों से एवं योग्य और श्रेष्ठ प्राध्यापकों से सहारा लेना पड़ता है।

सैन्यशास्त्र का बुन्देलखण्ड में विकास अपूर्ण एवं अपरिपक्व है जिस कारण से शोधार्थियों को शोध सम्बन्धी समस्याओं को लेकर जटिल परेशानियों का सामना करना पड़ता है। कई बार तो उनको शोध करते समय हतोत्साह एवं मानसिक तनाव का शिकार होना पड़ता है। बुन्देलखण्ड के झाँसी और कालिंजर दुर्ग में ऐतिहासिक , राजनीतिक और सैन्यदृष्टि से काफी भिन्नतायें पाई जाती हैं।

झाँसी दुर्ग पर पहुंचने के लिये दो पहिया, तिपहिया और चतुर्थ पहिया के वाहनों से पहुंचा जा सकता है परन्तु कालिंजर दुर्ग की अधिक ऊँचाई होने के कारण एवं आस–पास कस्वा एवं ग्रामीण क्षेत्र होने की बजह से जो सुविधायें झाँसी दुर्ग पर पहुंचने के लिये हैं वो कालिंजर दुर्ग पर पहुंचने के लिये नहीं है।

शोधकार्य में कुछ ऐसी कठिनाइयां भी आती हैं जैसे कि पुस्तकें तो हैं परन्तु शोधकार्य में लिये गये विस्तृत रूपरेखा के अनुसार अध्यायों का अभाव है जिसकी पूर्ति करने के लिये विभिन्न प्रकार की पुस्तकें एवं योग्य प्राध्यापकों का परामर्श लेना पड़ता है।

शोध करते समय योग्य सैन्य शास्त्रियों एवं सैन्य वैज्ञानिकों से वार्तालाप कर उनके दृष्टिकोंण को समायोजित करना चाहिये जिससे कि शोध क्षेत्र में चतुर्मुखी एवं बहुमुखी गतिशीलता मिल सके।

बुन्देलखण्ड अत्यधिक पिछड़ा होने के कारण सैन्य अनुसंधान केन्द्र कम हैं एवं कुछ ही महाविद्यालय जैसे–दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई, गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,उरई, पं0 जवाहर लाल नेहरू कॉलेज, बांदा, एवं अतर्रा कॉलेज, अतर्रा परन्तु इन महाविद्यालयों में स्नातकोत्तर कक्षाओं का अभाव है। सुविकसित प्रयोगशालायें एवं पुस्तकों का अभाव है जिस कारण से शोधार्थियों को शोध सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनको मध्य प्रदेयश के विश्वविद्यालयों जैसे कि जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर, महाराजा जीवाजी राव सिंधिया स्नातकोत्तर महाविद्यालय भिण्ड, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (रीवांचल), वरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल, होल्कर विश्वविद्यालय इन्दौर, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर इनके अलावा गुरूनानक विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ और उत्तर प्रदेश के महानगरों के विश्वविद्यालयों में जैसे कि दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय गोरखपुर, डा0 भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगरा, चौ0 चरणसिंह विश्वविद्यालय मेरठ एवं छत्रपति शाहू जी महाराज कानपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कॉलेजों में स्नातकोत्तर सैन्य विभाग जहां मौजूद हैं वहां जाकर सैन्य सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण करना पड़ा।

किसी भी कार्य को पूर्णतः सफल करने के लिये उचित स्थान या स्थिति का

होना अत्यन्त आवश्यक है। शोध सम्बन्धी कठिनाइयों का निराकरण करने के लिये विभिन्न प्रकार की विकासात्मक पक्षों को लेकर शोध सम्बन्धी व्यवधानों एवं तर्कों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। शोधार्थियों को शोध करते समय सही शोध सम्बन्धी संदर्भ पुस्तकायें एवं उचित सैन्य शब्दावली का भी प्रयोग करना पड़ता है। शोध छात्र एवं छात्राओं को विशेष तौर से मन में चैतन्यता, सान्द्रता एवं एकाग्रता जैसी विचारधाराओं को समायोजित कर शोधकार्य को गतिदेनी पड़ती है।

मध्यम एवं निचले वर्ग के शोधार्थियों को आर्थिक समस्या का भी सामना करना पड़ता है जो कि एक प्रकार से शोधार्थियों के लिये अभिशाप है। शोधार्थियों को अर्थ सम्बन्धी समस्या का निराकरण करने के लिये के केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार को अंशकालीन सहायता छात्रवृत्ति के रूप में विद्यार्थियों/शोधार्थियों को देनी चाहिये जिससे कि शोधार्थी अर्थ की कमी की बजह से लक्ष्य प्राप्त करने में असमर्थ न हों।

सैन्य दृष्टि से दुर्ग एवं गढ़ियों का विशेष महत्व है जिसकी उपयोगिता, सैन्य गतिविधियों में परियोजित हो सकती है। वर्तमान समय में सैन्य विज्ञान मात्र विषय ही नहीं है बल्कि इसके द्वारा राष्ट्र की रक्षा सम्बन्धी समस्यायों का भी निराकरण होता है। सैन्य विज्ञान एक गत्यात्मक और गतिशील विषय है जिसकी उपयोगिता मात्र अध्ययन एवं शोध करने में ही नहीं, अपितु इसके द्वारा राष्ट्र की जटिलतम समस्यायों का भी निराकरण किया जा सकता है।

सैन्य विज्ञान समय के अनुसार परिवर्तनशील विषय है जिसकी देश की विभिन्न रक्षा सम्बन्धी प्रयोगशालाओं में, शोधकेन्द्रों, स्नातक एवं स्नातकोत्तर महाविद्यालय के सैन्य विज्ञान संकाय में, आवासीय विश्वविद्यालयों में और रक्षा अनुसंधान विभागों में वर्तमान समय में बहुत उपयोगिता है। सैन्य शक्ति के द्वारा किसी भी राष्ट्र के विकास एवं प्रगति का मूल्यांकन कर सकते हैं क्योंकि यदि सैन्य शक्ति प्रबल है तो अन्य राष्ट्र भी उस प्रबल राष्ट्र का सम्मान एवं सत्कार करते हैं। राष्ट्र की प्रबलता एवं सैन्य अभ्यासों के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय छवि, गरिमा एवं गौरव को प्राप्त किया जा सकता है। राष्ट्र की शक्ति का परिचालन सैन्य उपलब्धियों एवं सैन्य आधुनिकता से किया जा सकता है।

भारत वर्ष में सैन्य गतिविधियों के विभिन्न पहलू एवं तथ्यों में बड़ी तेजी से क्रमोत्तर विकास हो रहा है, यह विकास जीवन को गतिशील बनाता है। पड़ोसी देश भी प्रबल राष्ट्र की क्षमता एवं विकास को देखकर उसकी आलोचना नहीं करते हैं। भारतवर्ष ने आजादी के पश्चात सैन्य क्षेत्र में काफी तेजी से उत्तरोत्तर प्रगति की है जो आज समस्त एशिया के राष्ट्रों, यूरोप के राष्ट्रों एवं उत्तरी अमेरिका के राष्ट्रों के समक्ष एक कसौटी एवं चुनौती बन गया है।

संदर्भ-सूची

संदर्भ ग्रन्थ–सूची

1. तिवारी श्री गोरेलाल — "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" काशी नागरी प्रचारिणी सभा,काशी संवत 1990
2. राधाकृष्ण बुन्देली एवं श्रीमती सत्यभामा बुन्देली — "बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन" बुन्देलखण्ड प्रकाशन, बाँदा, 1989
3. दास ब्रजरत्न — "बुन्देलों का इतिहास" नागरी प्रचारिणी सभा,काशी संवत 1979
4. दीक्षित आर0के0 — "चन्देलाज ऑफ जैजाकभुक्ति" नई दिल्ली–1, 1977
5. निगम एम0एल0 — "कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड" दिल्ली, 1983
6. पाण्डेय अयोध्या प्रसाद — " चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास" हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1968
7. पैगसन डब्लू0 आर0 — "ए हिस्ट्री ऑफ दि बुन्देलाज" दिल्ली, 1974
8. मोतीलाल त्रिपाठी "अशान्त" — "झाँसी दर्शन" लक्ष्मी प्रकाशन 86, पुरानी नझाई, झाँसी 1973
9. शरण अवध बिहारी — "मैगस्थनीज का भारत विवरण" आला नागरी प्रचारिणी सभा, बाकीपुर, 1916
10. शर्मा चतुर्भुज — "बिद्रोही की आत्म–कथा" आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली–6, 1970
11. शुक्ल द्रिजेन्द्रनाथ — "भारतीय स्थापत्य" हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ0प्र0,लखनऊ, 1968
12. सिंह दीवान प्रतिपाल — "बुन्देलखण्ड का इतिहास" (भाग–1) साहित्य भूषण कार्यालय,वनारस, संवत 1985
13. सिंह महेन्द्र प्रताप — "छत्रप्रकाश" श्री पटल प्रकाशन,कैलाश कालोनी,नई दिल्ली,48, 1973

14. हैबल ई0बी0 — "दि आइडियल्स ऑफ इण्डियन आर्ट"
जानमुरी ऐलबीमेरिल स्ट्रीट डब्लू,लंदन, 1920

15. तिवारी गोरेलाल — "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास"
काशी नागरी प्रचारिणी सभा,काशी, सं0 1990

16. झा ब्रजेन्द्र नारायण — "प्राचीन भारत का इतिहास"
विश्वविद्यालय दिल्ली, 1981

17. श्रीवास्तव डा0 रमेश चन्द्र — "बुन्देलखण्ड– साहित्यिक,ऐतिहासिक,सांस्कृतिक वैभव"
बुन्देलखण्ड प्रकाशन,बांदा–210001
दूरभाष– 24772

18. पाण्डेय डा0 रुद्र किशोर — "कालिंजर–शौर्य,स्मारक,मूर्तिशिल्प,साहित्य"
आदित्य रश्मि प्रकाशन,लश्कर,ग्वालियर, 1991

19. पाण्डेय डा0 रुद्र किशोर — "झाँसी–इतिवृत्त,स्थापत्य,कला,सांस्कृतिकी"
आदित्य रश्मि प्रकाशन, 206, सिन्धी कालॉनी,
लश्कर, ग्वालियर, 1990

20. Verma Amit — "Forts of India"
Ministry of Information & Boardcasting
Govt. of India.

21. राय सन्त बी0ए0 — "अल्ल बेरूनी का भारत"
पुरानी वस्ती, होशियारपुर

22. खण्डेलवाल के0एन0 — "मैकवैथ"
एक्ट–II, सीन–III

23. .... — "जिला विकास पुस्तिका, झाँसी–2002"
सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झाँसी

24. .... — "आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट"

25. त्रिपाठी वासुदेव — "वीरों का गढ़–कालिंजर"
भानु प्रिंटिंग प्रेस, दतिया, म0प्र0, 1996

26. मिश्र डा0 केशवचन्द्र — ''चन्देल और उनका राजत्वकाल''
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1954

27. रिछारिया रामसेवक — ''बुन्देलखण्ड के दुर्ग एवं गढ़ियां''
ऊषा प्रकाशन, 90 सनौरा– बरूआसागर, झाँसी

28. वर्मा डा0 महेन्द्र — ''बुन्देलखण्ड का इतिहास''
सुशील प्रकाशन, मेरठ

29. मदनी अब्दुल क्यूम — ''बुन्देलखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास''
किनी ऑफसेट, झाँसी, (दूरभाष– 440066)

30. त्रिवेदी डा0 एस0डी0 — ''बुन्देलखण्ड का पुरातत्व''
श्री रामसेवक खड़ग, सन्तोष प्रिंटिंग प्रेस, झाँसी

31. पुरवार डा0 हरीमोहन — ''गौरवशाली कालपी''
बुन्देलखण्ड संग्रहालय, भरतचौक, उरई

32. ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह — ''भारतीय सेना का इतिहास''

33. गुप्त श्री नाथूराम — ''वेद और जीवन''
सार्वदेसिक प्रेस, पटौदी हाउस,
दरियागंज, नई दिल्ली

33. मुखर्जी श्री राधा कुमुद — ''प्राचीन भारत''
राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

34. .... — ''अग्नि पुराण''
गीताप्रेस, गोरखपुर

35. .... — ''बाल्मीकि रामायण''
गीताप्रेस, गोरखपुर

36. .... — ''कौटिल्य अर्थशास्त्र''
साधना पॉकेट बुक्स, 39 यू0ए0, बैंग्लोरोड
दिल्ली – 110007

37. कैप्टन चार्ल्स एक्फोर्ड — "ग्वालियर स्टेट गजेटियर" 1907

38. सक्सेना श्री महावीर प्रसाद — "मध्य भारत मार्ग निर्देशिका"
नूतन प्रकाशन मन्दिर, ग्वालियर

39. श्रीवास्तव डा0 रामस्वरूप 'स्नेही' — "बुन्देली लोक साहित्य"
रंजना प्रकाशन, बांके विलास सिटी
स्टेशन मार्ग, आगरा – 282003

40 सिंह देवेन्द्र कुमार — "1857 का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम और जनपद जालौन"
कम्प्यूटर हाउस, कौशल मार्केट,उरई, 2000

41. श्रीवास्तव डा0 वीणा — "बुन्देली लोकगीत" भाग–2
(अप्रकाशित, निजी संग्रह)

42. त्रिपाठी श्री मोतीलाल 'अशान्त' — "खजुराहो दर्शन"
86, पुरानी नझाई, लक्ष्मीप्रकाशन, झाँसी

43. सिडनी टाय — "ए हिस्ट्री ऑफ फोर्टिफिकेशन"

44. गौगुली ओ0सी0 एवं गोस्वामी ए0 — "दि आर्ट ऑफ चन्देलराज"
कलकत्ता, 1957

45. .... — "गजेटियर झाँसी"

46. .... — "गजेटियर बांदा"

47. .... — "इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया"

48. .... — "ए स्टडी इन दि आर्ट ऑफ फोर्टिफिकेशन इन
मेडिवल इण्डिया"

49. गुप्ता डा0 भगवानदास — "मुगलों के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड का सामाजिक,आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास" (1531–1731)
हिन्दी बुक सेन्टर 4/5 बी, आसिफअली रोड,
नई दिल्ली – 110002, 1997

50. वर्जीनियाफास — "Forts of India"

51. Srivastava Ramesh Chandra — "Durg of Bundelkhand"
Pustak Bhandar Vaibhav, New Keshari Press, Banda

52. Tripathi Dr. R.P. (Keshari Prasad) — "Bundelkhand Ke Durg"
Bharat Bhawan, Purani Tehri, Tikamgarh

53. कुरेशी नईम — "बुन्देली विरासत" (प्रथम संस्करण)
उरई, 1991

54. देवी महा श्वेता — "हिन्दुस्तान के दुर्ग और गढ़ियां"
राधा कृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–2

55. त्रिपाठी मोतीलाल 'अशान्त' — "बुन्देली का इतिहास"
लक्ष्मी प्रकाशन, 86, पुरानी नझाई, झाँसी, 1991

56. त्रिपाठी मोतीलाल 'अशान्त' — "बुन्देलखण्ड दर्शन"
86, शारदा सहित्य कुटीर,पुरानी नझाई, झाँसी, 1980

57. पाण्डेय अयोध्या प्रसाद — "चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास"
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1968

58. हयारण मिश्र रामचरण — "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य"
राजकमल प्रकाशन, प्रा0लि0, दिल्ली–6, 1969

59. त्रिवेदी सी0 बी0 — "लेट प्रतिहार टेम्पिल्स फ्रोम बुन्देलखण्ड"

60. त्रिपाठी सोमदत्त 'पथिक' — "शक्तिपुत्र छत्रसाल"
सुरुचि साहित्य,, नई दिल्ली, 1980

61. त्रिवेदी एस0 डी0 — "दि जराही टेम्पिल ऐट बरूआसागर"
राजकीय संग्रहालय, झाँसी, 1985

62. श्रीवास्तव के0 सी0 — "प्राचीन भारत का इतिहास'
यूनाइटिड बुकडिपो, इलाहाबाद, 1988

63. .... — "श्री राम चरित मानस"
गीताप्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0

64. .... — "शिव पुराण"
गीताप्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0

65. .... — "देवी भागवत पुराण"
गीताप्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0

66. .... — "महाभारत"
गीताप्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0

67. .... — "शिवतत्व रत्नाकर"
गीताप्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0

68. .... — "ऋग्वेद"
गीताप्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0

69. .... — "मनु स्मृति"
गीताप्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0

70. खत्री देवकी नन्दन — "चन्द्रकान्ता संतति'

71. टण्डन रूप किशोर — "कालपी दिग्दर्शन"
सूटरगंज, कानपुर, 1954

72. डॉक मैन डी0 एल0 — "ए गजेटियर वोल्यूम XXV"
ए लूकर सुपरटेंडेंट गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद, 1909

73. गुप्त भगवान दास — "महाराजा छत्रसाल बुन्देला"
शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं0 प्रा0 लि0, आगरा, 1958

74. अग्निहोत्री गोपाल कृष्ण — "कन्नौज– पुरातत्व और कला"
पुरातत्व संग्रहालय, कन्नौज, 1978

75. उपाध्याय भगवत शरण — "बुर्जियों के पीछे"
पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस, प्रा0लि0, नई दिल्ली,1980

विभिन्न पत्र–पत्रिकायें

76. राजेन्द्र सिंह लेख — "तीर्थ क्षेत्र कालिंजर एक भागौलिक अध्ययन"
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय,झाँसी (वार्षिक पत्रिका 1983)

77. .... — "विश्व धरोहर सप्ताह (19–25 नव0 1997)" झाँसी दुर्ग
भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण,लखनऊ मण्डल, उ0प्र0

78. निगम वी0पी0 (सम्पादक) — "सहयोग" पत्रिका
बुन्देल खण्ड पर्यटन विशेषांक, लखनऊ 1990

79. सिंह महेन्द्र प्रताप (सम्पादक) — "छत्रप्रकाश"
श्री पटल प्रकाशन, कैलाश कॉलोनी
नई दिल्ली–48, 1973

80. खरे डा0 रामस्वरूप (सम्पादक) — "मधुस्यन्दी"
राठ रोड, उरई (1985–1987)

81. गुप्त डा0 नर्मदा प्रसाद (सम्पादक) — "मामुलिया"
बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी प्रकाशन
छतरपुर, 1987 से 1991

82. गुप्त कृष्णा नन्द — "लोकवार्ता"
लोकवार्ता कार्यालय, टीकमगढ़ 1943–1944

83. जैन डा0 के0 के0 — "ईसुरी"
बुन्देलीपीठ सागर वि0 वि0, सागर 1985–1990

84. पाण्डे राजाराम (सम्पादक) — "नव अंकुर"
भारती प्रेस, उरई (1985–86)

85. पाण्डे विनोद — "प्रगति दर्पण"
जिला सूचना एवं जनसम्पर्क कार्यालय,
उरई, 1987–88

86. वाजपेई प्रो0 के0डी0 — "युग युगों में कालपी"

87. मुंशी के0एम0 — "भाषण दि0 30 जनवरी 1953"
स्थान कालपी

88. विद्यार्थी चन्द्रभानु — "महर्षि वेद व्यास जी की जन्म कथा"
हिन्दी भवन, कालपी

89. गुप्त यशोवर्द्धन (सम्पादक) — "दैनिक जागरण"
झाँसी प्रकाशन

90. मोहन नरेन्द्र (सम्पादक) — "दैनिक जागरण"
कानपुर प्रकाशन

90. विक्रम शारदेन्दु (सम्पादक) — "अमर उजाला"
कानपुर प्रकाशन

91. 'कुमुद' अयोध्या प्रसाद (सम्पादक) — "सारस्वत" (वार्षिक पत्रिका)
सरस्वती वि0म0इं0 कालेज, उरई

92. शुक्ला रवीन्द्र (सम्पादक) — "दैनिक राष्ट्रवोध"
झाँसी एवं भोपाल प्रकाशन

93. विद्यालंकार जयचन्द — भारत भूमि और उसके निवासी